# कृषि-विज्ञान

## प्रथम भाग

# कृषि-विज्ञान

## प्रथम भाग

*with a Foreword by*

**H. N. BATHAM, M. A.**

Agricultural Chemist to Government
United Provinces.

लेखक

मेस्टन कृषि-पुस्तक तृतीय भाग के अनुवादक तथा
'किसानोपकारक' के भूतपूर्व स्थानापन्न सम्पादक
एवं हिन्दी-विद्यापीठ-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के
कृषि-अध्यापक

**पं० शीतलाप्रसाद तिवारी 'विशारद'**

*At present*

Assistant Farm superviser

*Allahabad Agricultural Institnte.*

थम संस्करण } १६२६ { मूल्य दो रुपया

प्रकाशक—
रामदयाल अग्रवाल
कटरा, इलाहाबाद

मुद्रक—
दीवान वंशधारी लाल
हिन्दी-साहित्य-प्रेस, इलाहाबाद

MOST RESPECTFULLY AND HUMBLY DEDICATED

To

**G. CLARKE, Esqr., F. I. C., F. S. C., C. I. E, M. L. C., I. A. S,**

**Director of Agriculture**

United Provinces

**Lucknow.**

To whose unbounded kindness, I am indebted for being admitted as a stipendiary student in the Agricultural College Cawnpore, and acquired some knowledge of the subject.

**S. P. Tiwari.**

उपहार

श्रीकरकमलेषुः—

श्रीमान्

विनीत

शीतलाप्रसाद तिवारी

# विषयानुक्रमणिका



—:०:—

## प्रथम अध्याय



## दूसरा अध्याय

## तीसरा अध्याय



## चौथा अध्याय



## पांचवां अध्याय



## छटवां अध्याय



## सातवां अध्याय



## आठवां अध्याय

# भूमिका

## FOREWORD

**By**

H. N BATHAM, M. A.

Agricultural Chemist to Government

United Provinces, Cawnpore.

कृषि व्यवसाय की वर्तमान शोचनीय अवस्था का सुधार करने के हेतु अत्यन्त आवश्यक है कि कृषि-सम्बन्धी पुस्तकें भाषा में भी तुलनात्मक दृष्टि से लिखी जाँय। पुस्तकों में केवल वैज्ञानिक कूटनीतियों का उल्लेख करने तथा कृषि-कर्म की आदर्श विधियों पर ज़ोर देने से विशेष लाभ नहीं हो सकता। समय की माँग है कि समस्त वैज्ञानिक आविष्कार और अनुसन्धान एवं उन्नतप्रद कृषि-कार्य-क्रम का वर्णन इस प्रकार किया जाय कि कृषक-समुदाय को उनके समझने तथा समझ कर उनके अनुसार प्रचलित प्रणाली में संशोधन करने में अधिक कठिनाइयों का अनुभव न हो और उन्हें दृढ़ विश्वास हो जाय कि अमुक बात का अनुसरण करने से अवश्य लाभ होगा। साथ ही साथ पाठक में सुधार-विषयक नवीन बातें सोचने और निकालने की प्रवृत्ति भी उत्पन्न हो जाय। लेखक ने इस

ग्रन्थ में उपरोक्त बातों की ओर विशेष ध्यान दिया है और स्पष्ट दर्शा दिया है कि प्रचलित प्रणाली में थोड़ा परिवर्तन कर देने से कृषि-व्यवसाय की सराहनीय उन्नति हो सकती है। पाठकों को स्वयं लेखक की यह नम्र भेंट अतिरोचक तथा उपयोगी प्रतीत होगी।

यह सर्वमाननीय है, लेखक ने भी स्पष्ट करने की भरसक चेष्टा की है कि किसी समय भारत में कृषि-व्यवसाय उन्नति के शिखर पर था, और भारतीय वैज्ञानिकों ने कृषि-सम्बन्धी गूढ़तम रहस्यों की खोज करके ऐसे सरल उपाय आविष्कृत किये थे, जिनके अनुसार कृषि-कार्य्य सम्पादित करने में कुछ भी कठिनता न होती थी। उस समय कृषक-समुदाय इन उपायों से इतने परिचित थे कि वे उनके लिये स्वाभाविक प्रतीत होते थे। किन्तु काल-चक्र ने पलटा खाया और आज वही भारतवासी पेट की रोटियों के लिये तरस रहे हैं। इस दुर्दशा का कारण यही है कि कृषि-कार्य्य अशिक्षित व्यक्तियों के सिपुर्द करके वैज्ञानिक तथा शिक्षित समाज इससे विमुख हो-गया। प्राकृतिक नियमानुसार प्रति क्षण परिवर्तन हुआ करता है, एक बात जो आज उपयुक्त तथा उपयोगी है—कल वही हानिकारक प्रतीत होने लगती है। एक तो प्राचीन आविष्कार समयानुकूल नहीं रहे, प्राकृतिक परिस्थितियों में पर्याप्त उलट-फेर हो चुका है और इतने काल तक फसलें उत्पन्न करते रहने के कारण भूमि की उपजाऊ-शक्ति निर्बल हो गई है, दूसरे व्यक्तिगत त्रुटियों

तथा न्यूनताओं के कारण प्राचीन आविष्कार तथा कृषि-कार्य-क्रम मौलिक अवस्था में नहीं रहे और जो कुछ है—उसका पूर्ण व्यवहार नहीं होता। जब प्राचीन मार्ग-प्रदर्शकों ने उदासीनता की शरण ही ले ली तो पथिकों का इस दुरावस्था को प्राप्त होना आश्चर्य जनक नहीं कहा जा सकता।

उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश-सरकार ने पथप्रदर्शक का कार्य्य अपने हाथ में लिया। वास्तव में कृषि-विभागों ने कृषि-कार्य-क्रम में सराहनीय उन्नति की और समयानुकूल तथा देशानुकूल विधियाँ ढूंढ़ निकाली हैं। कृषि-विभाग के आविष्कार तथा अनुसन्धान वर्तमान परिस्थितियों के भी अनुकूल हैं। किन्तु पथ-प्रदर्शक की चेष्टाएँ क्या कर सकती हैं? जब कि पथिक स्वयं उत्साहित न हों। बेचारे! कृषक अनन्त काल से बिना पथ-प्रदर्शक रहने के कारण स्वच्छन्द से हो गये हैं, उन्हें पथप्रदर्शकों की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती और न विश्वास होता है। निरन्तर दुःख की मार सहते-सहते वे कर्तव्य-शून्य हो गये हैं। वास्तव में वे विवश हैं। पिता द्वारा पुत्र को मिले हुए अनुभव की सहायता से जीवन-निर्वाह करते रहने के कारण, अब परम्परा उनके नस-नस में व्याप्त हो गई है, उसके प्रभाव का दूर करना सुगम नहीं रहा। इस प्रकार वे परम्परा से पीछा नहीं छुड़ा पाते, साथ-ही-साथ उनकी निर्धनता तथा पेट का कष्ट नवीन बातों को ग्रहण करने का साहस ही नहीं उत्पन्न होने देते। जभी वह अपनी दशा सुधारने की ओर आकर्षित होता है।

धन की कमी मुँह फाड़कर काटने दौड़ती है। अस्तु, उसे सोचना पड़ता है अथवा अमुक बात से इतनी उपज हो सकेगी? जो व्यय को पूरा कर दे? इसका उसे विश्वास नहीं होता और इसी कारण वह नवीन आविष्कारों से उदासीन हो जाता है। जो कुछ वह अपने खेतों से पैदा करता है, वह कदाचित ही इतना होता हो कि ज़मींदार का लगान देने के पश्चात् उसके लिये साल भर की रोटियों का प्रबन्ध कर दे! ऐसी अवस्था में कदापि सम्भव नहीं कि कृषक-गण परम्परा से चली आई विधियों को तिलाञ्जलि देकर नवीन आदर्श का निकटस्थ भविष्य में अनुसरण कर सकें। परन्तु यदि उन्हें रास्ते पर धीरे-धीरे मोड़ने की चेष्टा की जाय तो सुधार की सम्भावना हो सकती है। परिवर्तन अनिवार्य्य अवश्य है, किन्तु शनैः शनैः करने में सफलता की आशा है। परिवर्तन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उनका धन बहुत कम व्यय हो, साथ-ही-साथ उनको सफलता का विश्वास भी हो जाय।

पाश्चात्य रीतियों तथा आधुनिक विज्ञान के अनुसार भारत की प्रचलित प्रणाली में संशोधन की आवश्यकता का वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली है। पुस्तक का अध्ययन करने से पाठकों का ध्यान अवश्य सुधार की ओर आकर्षित होगा। वास्तव में इस समय अधिकांश भारतीय-कृषक कृषि-कर्म्म के अन्तर्गत साधारण किन्तु अति आवश्यक बातों का ज्ञान नहीं रखते। वे केवल अपने टूटे-फूटे अनुभव की सहायता से खेतों में साधारण

रीति से हल चलाकर बीज बिखेर आना तथा पक जाने पर काट कर रख लेना जानते हैं। यदि प्रकृति देवी ने कृपा कर दी तो ख़ैर, अन्यथा भाग का रोना रोकर सन्तोष की शरण ले लेते हैं, किन्तु अपनी त्रुटियों की खोज करने तथा उपयुक्त रीति से खेती करने की चेष्टा नहीं करते, मानों यह उनकी सामर्थ्य से परे है। यदि कृषकों को कृषि-कर्म के अन्तर्गत मुख्य बातों का उचित ज्ञान हो जाय तो वे थोड़े ख़र्च में ही अपनी दशा सुगमतापूर्वक सुधार सकते हैं।

लेखक ने इस ग्रन्थ में कृषि-कर्म्म के अति महत्वपूर्ण अङ्ग जुताई का उल्लेख किया है और क्रियात्मक रूप देते हुये वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर जुताई की क्रिया का स्पष्ट वर्णन किया है। कृषि-कर्म्म में जुताई का स्थान क्या है? और उसका महत्व कितना अधिक है यह सभी जानते हैं। यदि जुताई का कार्य्य सुचारुरूप से सम्पादित हो जाय तो अन्य बातों की सुव्यवस्था न होते हुये भी उपज में वृद्धि हो सकती है। अस्तु, लेखक ने जुताई के महत्व का दिग्दर्शन कराते हुये वर्तमान जुताई-विधि की त्रुटियों तथा उसके द्वारा होने वाली हानियों का उल्लेख करके उन सिद्धान्तों पर ज़ोर दिया है जिनके अनुसार वास्तव में जुताई की क्रिया सम्पादित होनी चाहिये। जुताई के कार्य्य में पाश्चात्य तथा देशी दोनों प्रकार के जो यंत्र व्यवहार में आ रहे हैं, उनकी हानि-लाभ की दृष्टि से तुलना करते हुये यह दिखलाया गया है कि कौन-कौन यंत्र भारतवर्ष की वर्तमान अवस्था में उपयुक्त हैं और किस ऋतु तथा

समय में कौन से यंत्र का प्रयोग करना चाहिए। भारतीय कृषकों को जुताई की विस्तृत उपयोगिता का उचित ज्ञान न होने से वे उसे पूर्णतया सम्पादित नहीं कर सकते; इसी कारण उन्हें निराने आदि की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और उपज भी इच्छानुसार नहीं होती।

इस ग्रन्थ के अध्ययन से पाठकों को जुताई के अन्तर्गत भिन्न भिन्न वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक सिद्धान्तों का ज्ञान हो जायगा साथ-ही साथ उपयुक्त विधियों को चुनने तथा खोजने की शक्ति भी उत्पन्न होगी। वर्तमान समय में जुताई की क्रिया धरातल के उलट-फेर तक ही परिमित रहती है, कृषक गर्भतल की ओर ध्यान नहीं देते। इस धरातल पर न जाने कब से खेती होती रही है। अस्तु, उसकी उपजाऊ-शक्ति का ह्रास हो चुका है। कृषकों के पास न तो इतना धन है और न इतनी सुगमता है कि धरातल की उपजाऊ शक्ति को पुनः सञ्चित कर सकें। शोक ! तो यही है कि कृषक अन्य विधियों द्वारा मिट्टी को उपजाऊ बनाने में असमर्थ होते हुये भी गर्भतल में प्रकृति द्वारा एकत्रित उपजाऊ-शक्ति का उपयोग करने की चेष्टा नहीं करते और न इस बात की ओर ध्यान देते हैं कि किस खेत में कौन सी फ़स्ल बोना उपयुक्त होगा ! वास्तव में उनका दोष नहीं है, उन्हें इन बातों का ज्ञान ही नहीं होता। यदि जुताई की क्रिया सुचारुरूप से होने लगे और गर्भतल की मिट्टी उलटकर धरातल तक लाई जाय तो खाद की कठिनाई इतनी दुखप्रद न रहे जितनी आजकल है। इस प्रकार गर्भतल में एकत्रित खाद्य-पदार्थ

पौदों के ग्रहण योग्य बन जायँगे और पौदों की जड़ें सुगमता पूर्वक नीचे फैलकर अपना खाना-पानी गर्भतल से खींचने लगेंगी। जुताई ठीक होने से सिंचाई और खाद का व्यय तो कम होगा ही साथ-ही-साथ निराई इत्यादि भी जुताई द्वारा थोड़े धन से सफलता पूर्वक सम्पादित होने लगेगी।

इतने महत्वपूर्ण विषय (जुताई) का वर्णन तथा हानि-लाभ की दृष्टि से भिन्न-भिन्न आविष्कारों की तुलना करते हुये भी इस ग्रन्थ में किसी क्लिष्ट वैज्ञानिक शैली का अनुसरण नहीं हुआ है, प्रत्युत इस बात का प्रयत्न किया गया है कि साधारण जन इतनी शिक्षा प्राप्त कर लें, जिसके द्वारा वे कृषि-कार्य की इस मुख्य तथा महत्व पूर्ण सीढ़ी पर पैर रखकर कृषोन्नति की ओर सन्मुख हो सकें। ग्रन्थकार ने व्यावहारिक कृषि के अन्तर्गत वैज्ञानिक सिद्धान्तों की ओर इसी कारण संकेत किया है कि सार्वजनिक मस्तिष्क में वैज्ञानिक नियमों के खोज करने की अभिरुचि उत्पन्न हो जाय। इस ग्रन्थ का मुख्य अभिप्राय यह है कि कृषि की वर्तमान दुरावस्था पर विचार किया जाय और उसके सुधार की साधारण तथा उपयुक्त प्रक्रियाओं की ओर ध्यान आकर्षित हो, साथ-ही-साथ पाठकों में वैज्ञानिक नियमानुसार निरीक्षण तथा तुलना करके उपयुक्त बातों का अनुसरण करने की प्रवृत्ति उन्नत हो जाय।

यह पुस्तक कृषि-विषयक महत्वपूर्ण प्रारम्भिक प्रक्रियाओं को वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक दृष्टि से सरल तथा सार्वजनिक भाषा में वर्णन करने का प्रयत्न मात्र है। इसका मूल्य इसी में है कि यह

वर्तमान सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति के अनुकूल कृषि-सम्बन्धी सस्ती विधियों का संग्रह है। आशा है कि कृषक-समुदाय तथा विद्यार्थी-गण इसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करके उल्लिखित विधियों का अनुसरण करने की चेष्टा करेंगे और कृषि-सुधार में तत्पर होकर लेखक का उत्साह बढ़ावेंगे।

कृषिविद्यालय, कानपूर
९ सितम्बर १९२६ ई०

हरनारायण बाथम, एम. ए.
ऐग्रीकलचरल केमिस्ट
श्री पालसिंह, बी. एस. सी.
लेक्चरार

ओ३म् शान्तिः

# वक्तव्य

कृषि-विज्ञान प्रथम भाग को इस समय सेवा में लेकर उपस्थित होते हुये, न मुझे हर्ष है, न विषाद। क्योंकि न तो मैं हिन्दी भाषा का कोई धुरन्धर लेखक ही हूँ; न उक्त विषय का प्रसिद्ध प्रकाण्ड वैज्ञानिक ही। किन्तु हाँ, एक भारतीय कृषक के नाते तथा प्रान्तीय कृषि-कालेज कानपूर के सफल छात्र की हैसियत से कभी-कभी अवकाशानुसार उपर्युक्त विषय पर एकाध लेख देश की सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में लिख दिया करता था, उन लेखों को लिखते समय स्वप्न में भी मुझे यह आशा नहीं थी कि इस समय इन लेखों की उपयोगिता और आवश्यकता की ओर जनता की अभिरुचि होगी? परन्तु मेरी यह आशा निराशा में परिणित हुई, क्योंकि उन लेखों के प्रकाशित होने के साथ-ही-साथ कुछ मित्रों ने जिसमें कि जमींदार, कृषक, विद्यार्थी सभी सम्मिलित हैं, इस बात की इच्छा प्रकट करते हुये अनुरोध किया कि हिन्दी-भाषा में व्यावहारिक कृषि-कर्म्म पर जिससे कि समस्त जनता भली प्रकार से लाभ उठा सके, कोई पुस्तक लिखूँ।

इस अनुरोध रूपिणी सम्मति का स्वागत करते हुये मैं ने अपने परिचित तथा अपरिचित दोनो वर्गों के मित्रों से पुस्तक-लेखन-कला में अपनी अयोग्यता का परिचय देते हुये क्षमा चाही।

किन्तु इतने पर भी कुछ सज्जनों ने व्यंग-पूर्ण अनुरोध का पुनः पत्र भेजा, जिसका भाव यह था; "कि क्या आप भी संसार के उन्हीं स्वार्थी पुरुषों में सम्मिलित हैं, कि जिन्होंने देश के धन से स्थापित तथा सञ्चालित वर्तमान कालोपयोगी बहुत सी कला-कौशल एवं विद्याओं का गवर्नमेन्ट-शिक्षणालयों में स्वयं अपना भी प्रचुर धन व्यय करते हुये ज्ञानोपार्जन, केवल अपने ही लिये किया है ? क्या आप का यह कर्तव्य नहीं है कि यदि आप ने वैज्ञानिक कृषि-कर्म्म को देश-कालोपयोगी जो नई-नई बातें सीखी हैं—उसका संदेश देश की उस जनता के कानों तक पहुँचा दें, जो कि आप की भांति सौभाग्यशाली होते हुये अथवा अन्यान्य कारणोवश ऐसी व्यय-साध्य मँहगी शिक्षा को गवर्नमेन्ट के शिक्षणालयों में जाकर नहीं ग्रहण कर सकते।"

सुहृदजनों के इन भावों ने ही मुझे इस बात पर विवश कर दिया कि कृषि-विज्ञान सम्बन्धी जो कुछ भी ज्ञान मैं ने आज तक उपार्जन किया है, वह पुस्तक रूप में सेवा में उपस्थित कर दूँ। यह 'कृषि-विज्ञान' नामक ग्रन्थ उसी विवशता का प्रत्यक्ष फल है; जो कि आज जनता के सम्मुख अपने गुण-दोषों की परवाह न करते हुये भी सेवा के लिये तत्पर है।

यहां पर इतना यह और भी कह देना आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि वे मित्रगण! मुझे क्षमा करें, जिनकी की यह अनुमति थी कि कृषि-विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें इतनी छोटी-छोटी हों जिनका कि मूल्य यथासम्भव बहुत ही कम हो; क्योंकि जिस समय मैं ने

कृषि-विज्ञान के प्रधान अंग 'जुताई' पर क़लम उठाई थी, उस समय मुझे अपने उक्त मित्रों की अनुमति शिरोधार्य्य थी, और मुझे भी पूरी आशा थी कि यह विषय सात-आठ फर्मों में समाप्त हो जायगा। किन्तु विषय के क्रमानुसार वर्णन करने में पुस्तक का कलेवर सत्ताइस फर्मों तक जा पहुंचा; इतने पर भी मेरा यह विश्वास है कि यह विषय अभी पूर्ण-रूपेण समाप्त नहीं किया जा सका है। यदि परमात्मा ने द्वितीय संस्करण के प्रकाशित करने का अवसर दिया तो यथाशक्ति विषय को पूर्ण कर देने का प्रयत्न करूंगा।

समझ में नहीं आता कि किन शब्दों तथा भावों से मैं प्रान्तीय सरकार के कृषि-रसायनाचार्य्य माननीय प्रो० लाला हरनारायण जी बाथम एम. ए. के प्रति कृतज्ञता प्रकट करूँ कि जिन्होंने समय समय पर पुस्तक का अवलोकन कर अपनी शुभ-सम्मतियों से अनुगृहीत करते हुये भी, पुस्तक की विशद-रूपेण अनुपम भूमिका लिखकर ग्रन्थ का वास्तविक तथ्य लोगों के समक्ष दर्शा दिया है।

इसके अतिरिक्त इलाहाबाद अग्रीकल्चरल इंस्टीट्यूट के कृषि रसायन-शास्त्रज्ञ मि० एडिन. पी. बुक्स एम. एस. सी तथा श्रद्धेय प्रो० डी. हालदार एवं 'विज्ञान' सम्पादक प्रो० व्रजराज एम. ए. बी. एस. सी. एल. एल. बी व प्रेमचन्दजी टण्डन तथा रामदयाल जी अग्रवाल को भी मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि जिन्होंने आवश्यकता पड़ने पर यथा शक्य सहायता

देकर पुस्तक- प्रकाशन में हाथ बँटाया है। इसी सम्बन्ध में मैं उन सामयिक पत्र, पत्रिकाओं के सम्पादकों, लेखकों तथा पुस्तक प्रणेताओं का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ कि जिनकी कुछ भी सहायता इस पुस्तक की सामग्री के संग्रह करने में ली गई है।

यहाँ पर इतना और भी कह देना आवश्यक समझता हूँ कि यद्यपि प्रूफ-संशोधन में बड़ी सावधानी रक्खी गई है, किन्तु तो भी प्रेस के कर्म्मचारियों की असावधानी से बहुत सी अशुद्धियाँ अवशेष रह गई हैं; इसलिये पाठकगण ! ऐसी अशुद्धियों के लिये अब की बार क्षमा करें।

अब मैं हिन्दी-साहित्य-संसार के दिग्गज विद्वानों के सम्मुख नम्र निवेदन करते हुये यह बतला देना चाहता हूं कि एक तो पुस्तक का विषय ही नूतन, गूढ़ तथा वैज्ञानिक है, दूसरे पुस्तक लेखन-कला में यह मेरा प्राथमिक प्रयास है। इस कारण भाषा सम्बन्धी अनेकों प्रकार की त्रुटियों का पुस्तक में पाया जाना कोई असंभव बात नहीं, इस से आशा है कि साहित्यिक-समालोचक मण्डली इस बार मुझ पर प्रहार न करके अपनी शुभ सम्मतियों से ही मुझे आगाह करेगी।

इलाहाबाद अग्रीकल्चरल<br>इंस्टीट्यूट, नैनी।<br>विजयादशमी, सं० १९८३

विनीत<br>शीतलाप्रसाद तिवारी।

# निवेदन

समय की प्रगति तथा देश की आवश्यकता का अनुभव करते हुये सभी विद्वानों ने सहर्ष इस बात को स्वीकार करते हुये अपनी शुभ सम्मति भी प्रकट की है कि भारत में आधुनिक वैज्ञानिक तथा साहित्यिक शिक्षा तभी पूर्ण-रूपेण प्रचार प्रकार, सर्वसाधारण के लिये उपादेय होती हुई, सफलीभूत हो सकती है, जब कि उसका माध्यम देश की भाषा—अर्थात् हिन्दी हो। जब-जब यह प्रश्न भारतीय सरकार के सम्मुख देश-हितैषी नेताओं द्वारा उपस्थित किया गया, तभी-तभी यह उत्तर मिला-कि भारत की हिन्दी ही क्या—किसी भी भाषा का साहित्य अभी तक इतनी उन्नतावस्था को प्राप्त नहीं हो पाया है, जिसके द्वारा प्रत्येक विषयों की शिक्षा शिक्षार्थियों को दी जा सके।

सरकार का यह उत्तर भी यथोचित था, इस उत्तर को पाकर देश के शिक्षक विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ, और उन लोगों ने अत्यन्त परिश्रम से हिन्दी-भाषा में ऐसे ऐसे ग्रन्थों का निर्माण किया, जिसके फलस्वरूप आज हिन्दी-भाषा के साहित्य का पौधा लहलहाता हुआ उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा

है। केवल पचास वर्षों के ही भीतर हिन्दी-भाषा में साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना करके येन-केन-प्रकारेण काम चलाने के निमित्त इस साहित्यिक अंग का कुछ कार्य्य तो पूरा कर लिया गया।

किन्तु तो भी हिन्दी-भाषा में वैज्ञानिक-साहित्य के ग्रन्थों के निर्माण का अभी श्रीगणेश भी नहीं हुआ। यद्यपि देश की हिन्दी-साहित्य-सम्बन्धी प्रतिष्ठित तथा सर्वमाननीय संस्था हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने वैज्ञानिक-विषयों की परीक्षा हिन्दी-भाषा में भी लेना आरम्भ कर दिया है, परन्तु विद्यार्थियों के अध्ययनार्थ पाठ्यक्रम में अँग्रेजी पुस्तकों को ही विवशता वश स्थान देना पड़ा है। इसी प्रधान कारण से अभी तक वैज्ञानिक-साहित्य के पठन-पाठन की ओर लोगों की प्रवृति अग्रसर होती हुई नहीं दिखाई पड़ रही है; जिससे वैज्ञानिक-शिक्षा से लाभ उठाने में हमारा देश अन्यान्य देशों की अपेक्षा दिनों-दिन पिछड़ता ही जा रहा है—क्या यह अवस्था देश के लिये शुभ कारक हो सकती है?

देश के सभी विश्वविद्यालयों ने एम॰ए॰ तक में हिन्दी-साहित्य को स्थान प्रदान करके उसके गौरव को संसार में यथेष्ठ ऊँचा कर दिया है। इतना ही नहीं संयुक्त-प्रान्त की सरकार ने हाई स्कूलों में मैट्रीकुलेशन तक अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त सभी विषयों को हिन्दी-भाषा में पढ़ाने की आज्ञा प्रदान करके शिक्षार्थियों के हित के लिये अत्यन्त ही सराहनीय काम किया है। किन्तु तो भी सामयिक

पत्र-पत्रिकाओं में बहुत से अध्यापकों ने भाषा में उक्त विषयों के ग्रन्थों का अभाव देख कर अपनी कठिनाई का वक्तव्य लोगों के सन्मुख रक्खा है।

देश-काल की इन्हीं सब आवश्यकताओं का अनुभव करते हुए मैं ने वैज्ञानिक-ग्रन्थों का प्रचुरता से प्रकाशन करने का निश्चय कर लिया है। उसी के फलस्वरूप आज मैं 'कृषि-विज्ञान' नामक ग्रन्थ को देश की सेवा में उपस्थित कर रहा हूँ। यदि देश के सरकारी अथवा ग़ैर-सरकारी शिक्षा-विभागों ने तथा अन्यान्य शिक्षणालयों ने ऐसे ग्रन्थों को अपने यहाँ के पाठ्यक्रम में नियत करके इस काम में हाथ बँटाते हुए मेरा उत्साह बढ़ाया तो शीघ्र ही मैं अन्यान्य वैज्ञानिक-ग्रन्थों द्वारा भी देश की सेवा कर सकूँगा।

| | निवेदक— |
|---|---|
| कटरा, इलाहाबाद | रामदयाल अग्रवाल |
| विजयादशमी, संवत् १९८३ | |

# प्रस्तावना

यह तो प्रायः सभी जानते हैं कि कृषि-व्यवसाय सांसारिक-जीवन व्यतीत करने के लिये सर्वोत्तम व्यवसाय है। इसके सिवाय जगत के अन्यान्य व्यवसाय इसके सम्मुख निम्न श्रेणी के व्यवसाय हैं। जैसा कि निम्न-लिखित कहावत के अर्थ से स्वयं चरितार्थ होता है।

**उत्तम खेती, मध्यम बान।**
**अधम चाकरी, भीख निदान॥**

प्राचीन भारतीय पूर्वजों ने अत्यन्त छान-बीन कर के जब भली भांति इस बात का अनुभव तथा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। तभी तो कृषि-व्यवसाय को सर्वोत्तम कहा। परन्तु वर्तमान काल में सामयिक परिवर्तनानुसार सांसारिक संघर्षणों के कारण भारत में कृषि-व्यवसाय नई रोशनी वालों के विचारानुसार अथवा गुलामी की बदबू से ठूंस-ठूंस कर भरे हुये गंदे मस्तिष्कों की राय में तुच्छ व्यवसाय समझा जाने लगा है। प्राथमिक शिक्षा के अधूरे विद्यार्थी भी इस कृषि-व्यवसाय को अशिक्षितों का व्यवसाय समझते हैं।

हे! पारिवार्तनिक युग तू धन्य है। तेरी महिमा अगाध है।

तेरी लीला अपरम्पार है। तेरे विषय में निम्न लिखित पंक्तियाँ वास्तव में ही अक्षरशः सत्य तथा माननीय हैं।

**पुरुष बली नहिं होत है, समय होत बलवान।**
**काबन लूटी गोपिका, वै अर्जुन वै बान॥**

यदि वर्तमान काल में आधुनिक पद्धति से शिक्षित भारतीय शिक्षितों द्वारा कृषि-व्यवसाय की यह दुर्गति न की गई होती—तथा इस सर्वोत्तम व्यवसाय के उच्चासन का पद "अधम-चाकरी" को न दे दिया गया होता। तो आज भारतीय कृषि का व्यवसाय अन्य सांसारिक कृषि-व्यावसायिक देशों का अधिपति होते हुये, अपने अधीनस्थ देश के वाणिज्य को भी—अन्य देशों के वाणिज्य की अपेक्षा उच्चासन पर अवश्यमेव बिठा देता, और "अधम-चाकरी" के चक्कर में पड़े हुये भारतीय युवकों की रोटी का भी सहारा कर देता। साथ ही देश के भिखमंगे, लूले, लँगड़े, अपहिजों का जीवन भी दुःखयय प्रतीत न होने पाता।

परन्तु यह सब महिमा है, काल के प्रताप और आधिपत्य की। इतना होते हुये भी हमारे पूर्वजों ने हमें यह शिक्षा दी है कि "काल से कटाना नहीं चाहिये।" वरन् काल को काट डालना चाहिये। अतएव, हे भारतीयो आपने अपनी अटल सहिष्णुता और धैर्य्य से काल को काट डाला है, काल से कटाया नहीं। इस कारण आप इस जगत में धन्यवाद के पात्र हैं, और संसार अपनी अन्तरात्मा से आप के चरित्र-बल को देख कर चकित हो

गया है, और आप के साथ सहानुभूति प्रकट कर रहा है, इस कारण इस अपूर्व शुभौसर को हाथ से न जाने दीजिये। वरन् कर्म्मक्षेत्र में पदार्पण कर अपने कृषि-क्षेत्रों का समयानुसार उचित परिवर्तन तथा संशोधन कर डालिये। साथ ही उन तमाम रीति-रिवाजों और पद्धतियों का ज्ञान प्राप्त कर लीजिये। जो कि इस वैज्ञानिक-युग के लिये आवश्यक ही नहीं अनिवार्य्य हैं।

अधिकतर हमारे देशवासी किसान जो कि शिक्षा—तथा वैज्ञानिक-शिक्षा—अर्थात् दोनों ही से अनभिज्ञ हैं, और इन्हीं के हाथों में भारतीय कृषि-व्यवसाय की बागडोर है। जिसका परिणाम यह हुआ है, और हो रहा है। कि हमारी कृषि के व्यवसाय में समयानुसार अभी तक कोई उचित तथा लाभदायक रद्दोबदल नहीं हो पाया है, और न अभी तक वह रीति-रिवाजें बरती ही जाने लगी हैं। जो कि वैज्ञानिकों ने कृषि-व्यवसाय के लिये खोज निकाली हैं। यह रीति-रिवाजें और वैज्ञानिक पद्धतियां इस कारण से भी अभी तक भारतीय कृषक-समाज में नहीं प्रचलित हो पाई हैं। कि इनका समुचित ज्ञान और व्यावहारिक-प्रदर्शन तथा क्रियात्मक प्रणालियां अभी तक किसानों की समझ में आयी ही नहीं। क्योंकि वह शिक्षा के अभाव से कृषि-विज्ञान साहित्य का अध्ययन तो कर ही नहीं सकते। दूसरे देश में इस व्यवसाय को वैज्ञानिक पद्धतियों द्वारा उन्नति के शिखर पर पहुँचा देने के लिये प्रचार करने वाली कोई भी सुसंगठित संस्था ने आज तक सिर-तोड़ परिश्रम करते हुये वास्तविक प्रयत्न भी नहीं किया। न देश के शिक्षितों

और हितैषियों का ध्यान अभी तक समुचित रूप से इस व्यवसाय की ओर आकृष्ट ही हुआ है। इसमें संदेह नहीं है कि राजकीय तथा प्रान्तीय कृषि-विभागों ने अपने अपने कर्तव्यों का पालन किया है। जिसके फल स्वरूप यत्र-तत्र कुछ न कुछ कृषि-व्यवसाय की उन्नति प्राप्त बातें कार्य्यरूप में परिणित हो गई हैं। परन्तु इतने पर भी हम यह कहने में संकोच नहीं कर सकते। कि कृषि-विभाग के अधिकारियों ने पूर्ण रूप से अपने कर्तव्यों का पालन नहीं किया। इस विषय में इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि यदि वे कृषि-प्रदर्शन में सिर-तोड़ अथक परिश्रम किया होता। तो क्या उनके सरकारी फार्मों के आस-पास के भी कृषक इन उन्नति-प्राप्त वैज्ञानिक रीति-रिवाजों के अभी तक क़ायल न हो जाते? हमारा यह निजी अनुभव है, और हमने इस बात का प्रत्यक्ष रूप में भ्रमण करके ज्ञान भी प्राप्त किया है। कि सरकारी फार्मों के अधिकांश कर्म्मचारी अपना कर्तव्य उसी प्रकार से पालन किया करते हैं। कि जिस प्रकार से अन्य सरकारी विभागों के कर्म्मचारी प्रजा के प्रति किया करते हैं। इन्हीं कारणों के प्रभाव से भारतीय कृषकों की अशिक्षित जनता भी इन कृषक-हितैषी सरकारी संस्थाओं को भी स्वार्थ-पूर्ण सरकारी-संस्थायें समझती चली आ रही है। इससे उनका दृढ़ विश्वास हो गया है। कि यह सरकारी संस्थायें सरकार के ही लाभ के लिये स्थापित की गई हैं। प्रजा को इन संस्थाओं से लाभ के सिवाय हानि की ही संभावना है। इसी कारण वे इन संस्थाओं से पर्य्याप्त सहायता लेने से उदासीन रहते

हैं। यदि कृषि-विभाग के कर्म्मचारी गण योरोपीय तथा अमेरिकन प्रचारकों की भाँति किसानों के बीच जोरों से कृषि-कर्म्म की नवीन वैज्ञानिक रीति-रिवाजों का प्रचार करना आरंभ करदें और उन आराम-तलब तरीक़ों को कुछ दिन के लिये त्याग दें। जिनका कि व्यवहार ये अभी तक करते चले आ रहे हैं। तो देख लीजियेगा, भारतीय कृषकों के बीच नूतन तहलका मच जायेगा। साथ ही कृषक-समाज सचेत तथा सजग होकर कार्य्य में भी लग जायगा। जिससे इस आन्दोलन का यह परिणाम होगा। कि सरकारी कर्म्मचारियों को फिर कृषकों के पास जाने की आवश्यकता ही न रहेगी। वह स्वयं ही सरकारी कर्म्मचारियों के पास अपने कर्तव्य को समझ कर दौड़े जाँयगे।

व्यावहारिक कृषि-कर्म्म के कई एक प्रधान अंग हैं, और इन प्रधान-प्रधान अंगों के अन्तर्गत कई एक उपांग भी हैं। इसके अतिरिक्त व्यावहारिक कृषि-कर्म्म के कुछ कर्म्म गौण भी हैं। इन सब कर्म्मों का समुचित ज्ञान जब तक किसानों को नहीं हो जता अथवा नहीं रहता है। तब तक वे पूर्ण रूप से कृषि-व्यवसाय द्वारा लाभ भी नहीं प्राप्त कर सकते। यही कारण है कि वर्तमान काल में हमारे देश में इस व्यवसाय कि यह दुर्दशा हो रही है। इसी दुर्दशा के फल-स्वरूप हमारे देश में कृषि-व्यवसाय अधोगति को प्राप्त हो गया है। जिससे किसानों को हम ऐसी हीनावस्था में देख रहे हैं। कि उन्हें पेट भर अन्न और तन भर वस्त्र भी दुर्लभ हो रहा है। जब कि विदेशी कृषक इसी व्यवसाय द्वारा मालामाल

हो रहे हैं; और सांसारिक सुखों को भोगते हुये अपना जीवन भी सफल कर रहे हैं। एक किसान हम हैं कि दिन-रात अपने भाग्य को कोसा करते हैं, और कहा करते हैं कि—

बाढ़ैं पुत्र पिता के धर्म्मा।
खेती उपजै अपने कर्म्मा।

यहाँ पर कृषक-समुदाय 'कर्म्म' का अर्थ भाग्य लगाया करते हैं। परन्तु वास्तव में यह अर्थ ठीक नहीं है। 'कर्म्म' का अर्थ यहां पर "कर्तव्य" है। इसलिये इसका सरल अर्थ यही है कि खेती करने में हम जैसा 'कर्तव्य' करेंगे। वैसा ही फल भी पावेंगे। जैसा कि प्रति दिन संसार में हम अपनी आँखों से देख रहे हैं। कि यदि कोई किसान सपरिश्रम अपने खेतों की ठीक समय पर और उचित रीति से बुवाई, सिंचाई, निकाई, गुड़ाई आदि कर्म्म कर रहा है. और रात-दिन उसी काम में तथा देख-भाल में अपना पसीना और खून एक कर दे रहा है। न जाड़े को जाड़ा, न गर्मी और बरसात को गर्मी और बरसात समझ रहा है। तो उसे अपने 'कर्तव्य' का जो फल उपज के रूप में प्राप्त हो सकता है, क्या वही फल भला उस किसान को भी प्राप्त हो सकता है? जो कि आनन्द पूर्वक घर में बैठे हुये अपनी कृषि का भाग्य-विधाता मजदूरों को बना देता है। जो कि अपनी इच्छानुसार मालिक की भाँति आराम सहित उसके कृषि सम्बन्धी कामों को किया करते हैं।

अरे ! भारतीय किसानों अब—

**कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभावजम् ।**
**परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।**

[ गीता अ० १८ श्लो० ४४ ]

वाला प्राचीन भारतीय दार्शनिक तथा याज्ञिक एवं पौराणिक काल नहीं रहा । कि कृषि-व्यवसाय का सारा भार वैश्यों के सर मढ़ कर और शूद्रों से सेवा करा कर के आप सुख की नींद सो सकेंगे । वर्तमान काल को 'वैज्ञानिक-युग' की उपाधि से विभूषित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, और वह अपने प्रचण्ड आतंक के प्रताप से संसार को आश्चर्य्य के गर्त में डाल कर चकित कर दिया है । सारी सृष्टि परिवर्तित होकर नूतन रूप धारण करती जा रही है । नित्यशः संसार में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं । जिससे चारों ओर उथला पुथल मची हुई है । प्रकृति प्रति क्षण भयंकर वीभत्सकारी-नग्न रूप धारण करके संसार को निगल जाने के लिये लालायित बैठी हुई है । किसी को कुछ सूझ नहीं रहा है । कि आत्म-रक्षा तथा देश-रक्षा के लिये कौन से उपाय सोचे-विचारे तथा कार्य्य रूप में परिणित किये जांय । देश वासियों तथा कृषकों की दशा सुधारने के हेतु कोई तो वर्तमान काल की राजनीतिकावस्था का परदा ही फांस कर देना चाहता है । तो कोई शिक्षा-प्रणाली के सुधार हेतु भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक खलबली मचा कर रंग-भूमि पर दूसरा ही दृश्य का अवलोकन

करा कर के देश तथा कृषकों के सुधार का दम भरता है। कोई कोई इन दोनों पद्धतियों को अपने विचारानुसार गौण समझ कर सामाजिकावस्था का संशोधन कर सारी कुरीतियों का प्रायश्चित करा कर के ही उपर्युक्त समस्याओं को सुलझाने का स्वप्न देख रहे हैं; और अपनी अपनी खझड़ी और राग लेकर अलगही अलग अलाप रहे हैं। होता-हवाता कुछ भी नहीं दिखलाई पड़ रहा है। देश सुधारकों, शिक्षकों, नेताओं तथा हितैषियों की सुरीली तानों को सुनकर हम भी मुग्ध हो रहे हैं।

परन्तु, विज्ञान-संसार का आचार्य्य गला फाड़ कर जोरों से पुकार पुकार कर कह रहा है कि अरे! भ्रामक विचार वाले देश-हितैषियो—तथा नवीन-युग के प्रभात-प्रकाश के चकाचौंध से चौकन्ने मनुष्यो एवं वैद्युतिक-सृष्टि के सत्य मार्ग से भूले-भटके हुये राष्ट्र तथा जातियां: अब भी सँभल जाओ। सोचो, विचारो, समझो, मनन तथा अध्ययन करके देखो कि बिना मेरी शरण लिये ही आधुनिक-काल में आप अपनी सत्ता को संसार में स्थायी रख सकते हैं?

यदि पश्चिमी संसार की भाँति अथवा उसकी प्रतिद्वन्दिता के कारण आप भी संसार में अपनी धाक तथा सत्ता को स्थायी रखने के लिये उद्विग्न हैं, और अपने व्यावहारिक जीवन संग्राम सम्बन्धी आवश्यकताओं को सरल सुविधा पूर्ण रीतियों से जुटाने के लिये तुले बैठे हैं। संसार में अन्य देशों की भाँति आप भी अन्न-वस्त्र के पूर्णरूप से पाने की इच्छा रखते हैं। वर्तमान कालीन सांसा-

रिक सुख-सामग्रियों को देख कर आप की भी लार टपकने लगती है, और इनके प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा आप के मस्तिष्क को सदा बेचैन रखती है। आप वैज्ञानिक धोखे-बाजों की चालों से अनभिज्ञ रहने के कारण सदा धोखा खाते हैं। बाज़ारों में खड़े-खड़े पिटते हैं, दुतकारे जाते हैं। अपना सर्वस्व देकर भी उन्हीं के हाथों की कठपुतलियाँ बने रहते हैं। परन्तु कुछ भी सिद्धि-फल प्राप्त नहीं होता है, और बार-बार उन्हीं धोखेबाजों के चंगुल में आपको फँसना पड़ता है।

तो आइये वैज्ञानिक-संसार से नाता जोड़िये, 'विज्ञान' के द्वारा सारी वस्तुओं के विषय में निरीक्षण-परीक्षण कीजिये। उसकी सहायता से सारी वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करके उनसे लाभ उठाइये। जो अपने लिये हानिकारी हों, उन्हें लाभकारी बनाइये। इसी प्रकार 'कृषि' आदि सारे व्यवसायों को वैज्ञानिक पद्धतियों के अनुसार अपने लिये उपादेय बनाकर आप भी पाश्चात्य देशों की भाँति सुख की नींद सोइये।

किसानों! विश्व-मञ्च की रंग-भूमि के अभिनय की यवनिका गिर चुकी है, परदा बदल गया है। पात्र—गण वैज्ञानिक लिबासों के साथ, वैज्ञानिक-सामग्रियों से सुसज्जित 'स्टेज' पर बिजुली के प्रकाश में अपना खेल, खेल रहे हैं। प्रत्येक श्रेणी के दर्शकगण इस खेल को देख कर मुग्ध हो गये हैं। अब इसी खेल को साधारणतया सभी सभ्यता वाले देशवासी पसन्द करने लगे हैं। इतने ही

में नाटक का एक खण्ड समाप्त हो गया। लोगों के दिल-बहलाव और हँसाने के लिये परदा बदल दिया जाता है। परदे के बदलते ही, दर्शकों को कई देशों के कृषक अपने-अपने देशों में कृषि-कार्य्य को करते हुये दिखलाई पड़ते हैं। सब से पहिले एक भारतीय किसान का 'हलवाहा' दो कमज़ोर बैलों को लिये हुये, फटी पगड़ी और धोती के साथ, नंगे (हड्डियाँ दिखलाती हुई) बदन देशी हल को लेकर आता है; और अपने खेत को जोतना आरम्भ कर देता है। इतने ही में एक अमेरिकन किसान का 'ड्राइवर' 'मोटर-ट्रैकर' लिये हुये घहराता हुआ अपने कृषि-क्षेत्र में पहुंचता है। लगभग आठ-नव बीघे दिन भर* में जोत कर चला जाता है और १०) व १२) जुताई लेकर आराम से कुर्सी पर बैठ कर बिजली के पंखे के नीचे "टाइम्स" समाचार पत्र पढ़ने लगता है; और भारत के किसान का हलवाहा १०, १२ बिस्वा खेत जोतकर ६, ७ पैसे मज़दूरी लेकर घर आता है। झोपड़े में पहुँचते ही बच्चे दादा दादा करके घेर लेते हैं। अन्न पास में न देख कर स्त्री भी कोसने लगती है। हलवाहा स्त्री के हाथ पैसे सौंप करके दुःख के साथ लेट जाता है; और स्त्री की फटकार सुनने लगता है। इतने ही में विदेशी दर्शक गण भारतीय हलवाहे पर कहकहा मार कर हँसने लगते हैं। भारतीय ऐसी लीला देख कर शोक-सन्तप्त होकर सुधार की प्रतिज्ञा करते हैं। परदा गिरता है। लोग बाहर चले जाते हैं।

इसी प्रकार प्रसव-धर्मिणी (प्रकृति) नटी के नाट्य-परिषद्

*जब कि दिन ८ या ९ घण्टे का माना जाता है।

में प्रत्येक मनोरंजक खेलों में भारतीय किसानों के उन सारे कृषि-यंत्रों और कृषि-कार्य्यों की तुलना, पश्चिमी कृषि-यंत्रों और कार्य्यों से करके हमेशा हमारी हँसी उड़ाई जा रही है। हम वर्तमान-कालीन सभ्यता की चमक-दमक के सम्मुख असभ्य ठहराये जा रहे हैं। संसार से हमारे अस्तित्व के मिटा देने की सामग्रियाँ संघटित की जा रही हैं।

अब, भाग्य तथा ईश्वर के ही भरोसे अथवा आश्रय पर रहने का ज़माना नहीं रहा। इस स्वार्थी संसार में मशीनों, अथवा अन्य उन्नति-प्राप्त वैज्ञानिक-यंत्रों की तूती बोल रही है। इनके मुक़ाबिले में प्राचीन संसार के यन्त्र तथा रीति-रिवाजें अनुपयोगी सिद्धि हो गई हैं। वर्षों का काम महीनों में, महीनों का दिनों में दिनों का मिनटों में पूरा किया जा रहा है। 'दूरी' का प्रश्न ही इस 'वैज्ञानिक युग' में मस्तिष्क से दूर कर दिया गया है। सहस्रों मील दूरी पर स्थित देशों के समग्र-कार्य्य इतनी तेज़ी और तत्परता के साथ संपादित किये जा रहे हैं। मानों उनकी दूरी में 'मुंह' और 'डाढ़ी' का अन्तर है।

जिन देशों में वैज्ञानिक-शिक्षा के प्रचार से देश ही, विज्ञान-भवन बन गया है। यदि उन देशों में ही वैज्ञानिक मशीनों, और यन्त्रों का प्रचुरता से प्रचार और व्यवहार एवं प्रयोग हो रहा हो। तो वह तो उचित ही है। परन्तु जो देश अभी वैज्ञानिक-शिक्षा से शून्य हैं। एक प्रकार से उससे विलग हैं। यह कहना भी असंगत न होगा कि कुछ दृष्टियों से उससे घृणा भी करते हैं। उससे

सम्बन्ध रखने वाली सारी वस्तुओं से देशकालानुसार अपने देश की हानि भी समझते हैं। परन्तु तो भी उसकी सभ्यता और वस्तुओं से दिनों-दिन घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़कर उससे लोहे और चुम्बक की भाँति चिपकते जाते हैं। यह बड़े आश्चर्य और विचारने की बात है। कि यह कैसी प्राकृतिक-लीला है ? कैसा ईश्वरीय रहस्यों का भेद है ? कि सारा पांसा उलटा ही पड़ता जाता है कुछ समझ में नहीं आता। बुद्धि भी काम नहीं करती। मस्तिष्क भी वेकार है

ठीक यही दशा इस समय भारतवर्ष की भी है। हम अभी वैज्ञानिक-शिक्षा से अनभिज्ञ हैं। वैज्ञानिक-युग के आदेश से लाखों कोस दूर हैं। वैज्ञानिक-सभ्यता से बिलग हैं। तो भी वैज्ञानिक प्रभुता के प्रभाव से प्रभावित हैं। उसकी धाक तथा सत्ता के अन्तर्गत वास कर रहे हैं। उसके संघर्षण में पड़कर कठपुतलियों की तरह नाच रहे हैं। उसकी सारी सामग्रियों को उपयोग तथा व्यवहार में लाकर उनका उपभोग कर रहे हैं, और दिनों-दिन लिपटते तथा घनिष्ट सम्बन्ध जोड़ते जा रहे हैं। जो वस्तुएँ अभी प्राप्त नहीं हुई हैं। उनकी प्राप्ति के लिये चिन्तित और व्याकुल हैं; और भगवान् से प्रार्थना करते हैं। कि हे परमात्मन् ! सांसारिक सुखोपभोग के लिये मुझे भी इन सामग्रियों को शीघ्र प्रदान कीजिये। मुझे भी वैज्ञानिक-सभ्यता का अभिमानी बनाइये।

हम वैज्ञानिक युक्तियों द्वारा प्रचलित रेलगाड़ियों से यात्रा करने में नहीं हिचकते। बिजली के प्रकाश और पंखे को जब तक

अपने बैठक में स्थान-प्रदान नहीं कर देते—तब तक चैन नहीं लेते 'मोटरों' के बिना मस्तिष्क बेचैन रहता है। 'प्रेसों' द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के ही बल पर हमारी भावी उन्नति निर्भर है। साहित्यिक उन्नति का उन्हीं के ऊपर दारोमदार है। उनमें छपी हुई पुस्तकों को हस्तलिखित पुस्तकों की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं। चाव से पढ़ते हैं—वर्तमान-कालीन सभ्यतानुसार उपयोगी समझते हैं। मशीनगनों, गोला, गोलियों, वायुयानों द्वारा युद्ध करने को पैशाचिक अथवा पशु-बल का युद्ध करार देते हैं। जहाजों द्वारा समुद्र यात्रा करने को अब धार्मिक विधानों में एक और विधान जोड़ देने के लिये तय्यार हैं। मिलों और फैक्टरियों में बने हुए सूत से 'खद्दर' बिनवा कर पहिनने में, तथा उनके द्वारा गर्म एवं अन्य सूती कपड़ों के भी पहिनने में हर्ज नहीं समझते। इसी प्रकार अन्य सारे व्यवसायों को जो कि वैज्ञानिक-पद्धतियों की सहायता से चल रहे हैं, और दिनों-दिन उन्नति भी प्राप्त करते जा रहे हैं। उनमें तो हम सहयोग दे रहे हैं।

परन्तु, भारत के प्रधान व्यवसाय "कृषि" में हम अभी वैज्ञानिक-यन्त्रों और रीति-रिवाजों को व्यवहार में नहीं ला रहे हैं। या तो इनसे उदासीन हैं। या इनको प्रयोग तथा व्यवहार में लाने से डरते तथा हिचकते हैं। तो हम आप से पूछना चाहते हैं। कि जब आप अपने ही देश में उल्लिखित वैज्ञानिक-वस्तुओं को व्यवहार में लाने से नहीं हिचक रहे हैं। निडर होकर पानी की भांति रुपया बहा कर उनके आराम और मज़े का उपभोग कर

रहे हैं। उनसे आप उदासीनता नहीं प्रकट कर रहे हैं। तो भला वैज्ञानिक-कृषि-यन्त्रों के सम्बन्ध में यह कैसी उदासीनता और डर ? वैज्ञानिक रीति-रिवाजों के सम्बन्ध में कैसी हिचकिचाहट ? यदि आप को सृष्टि में अपना अस्तित्व स्थायी रखना है। अपने अन्य व्यवसायों के साथ साथ 'कृषि' व्यवसाय को भी उन्नति शील बना कर देश और काल के अनुसार उपयोगी बनाना है। पश्चात्य दैशिक 'कृषि' व्यवसाय के रणक्षेत्र में विजयी होने के लिये आप की इच्छा प्रबल है। भारतीय कृषि-वाणिज्य की धाक तथा सत्ता को संसार में पुनः जमाना है। देशवासियों को परिपूर्ण अन्न-वस्त्र से सुखी करना है। नौनिहाल बच्चों को "डेरीइङ्ग" व्यापार द्वारा शुद्ध, उत्तम, घी, दूध, मक्खन सस्ते भावों पर पहुँचा करके उन्हें जीवन देना है; और कॉलिज तथा स्कूल के विद्यार्थियों को इन चिन्ताओं से मुक्त करना है। नागरिकों अथवा शहरवासियों को हलवाइयों, घोसियों, के हथकड़ों से छुड़ाना है, और उन समग्र-बीमारियों और कुरीतियों से आगाह करना है। जो कि इनके द्वारा उत्पन्न होती हैं। तो आइये कृषि-व्यवसाय के सारे अंगों, उपाङ्गों की उन्नति के हेतु उनमें वैज्ञानिक-कृषि-यन्त्रों का प्रयोग करिये। प्रचुरता से व्यवहार में लाइये। उनकी पद्धतियों-प्रणालियों के अनुसरण से कृषि-उपज को बढ़ाइये। मालामाल हूजिये, चैन-से खाइये, पीइये, सोइये और देश को भी सम्पशिाली बनाइये।

क्या आप को विश्वास है ! कि विदेशी वैज्ञानिक कृषि-व्यव-साय की होड़ में, 'मोटरट्रैक्टर' 'मानसूनप्लाऊ'' 'टर्नरैस्ट प्लाऊ'

'पंजाब प्लाऊ' 'डिस्कप्लाऊ' 'सैबूलप्लाऊ' आदि हलों की जुताइयों के सम्मुख अपने देशी-हलों से आप उत्तम तथा प्रथम श्रेणी की जुताई कर सकेंगे ?

'हैरो' तथा 'कल्टीवेटर' की अपेक्षा अन्य किसी और यन्त्रों से हम अपने खेतों को भुराभुर करके उनके घास-फूस सम्बन्धी सारे खर-पतवारों को साफ़ कर सकते हैं ? 'रिजमेकर' के द्वारा उत्तम क्यारी बना सकते हैं ? या 'फरुही' तथा अन्य देशी यन्त्रों से ? 'सीड-ड्रिल' के मुक़ाबिले में बराबर गहराई तथा दूरी पर उचित रीति से पूर्ण मात्रा में खेतों में बीजों की बुवाई हमारे देश की अशिक्षित शूद्र वर्ग की स्त्रियां कर सकती हैं ? अनेकों प्रकार के 'हैन्ड हो' से हम खेतों की निकाई गुड़ाई जिस प्रकार कर सकते हैं क्या उसी प्रकार 'खुर्पी' इत्यादि देशी निकाई-गुड़ाई के औज़ारों से कर सकते हैं ? पुरों के द्वारा उत्तम और शीघ्र से शीघ्र सिंचाई कर सकते हैं। या कि कुओं में से इंजन की सहायता से पानी निकाल करके सस्ते दामों सिंचाई कर सकते हैं ? हँसिये से आदमियों द्वारा जल्दी कटाई करा के समय बचा सकते हैं, या कि काटने वाली मशीन से। इसी प्रकार "थ्रेशर" तथा विनोअर, आदि यन्त्रों (मशीनों) की सहायता के जितना शीघ्र और उत्तम सस्ते भावों अपनी फ़सलों को मांड़-दांय कर के अन्न साफ़ कर सकते हैं ? उसी प्रकार बैलों से मांड़ कर हवा में 'ओसा' करके भी ? यदि इन सब के बारे में तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हुये आप का जवाब 'नहीं' है। तो आप 'होड़' में बाज़ी कैसे

मारेंगे। यदि आप को बाजी मार कर अपने प्राचीन कृषि-व्यवसाय के गौरव को बढ़ाना है। उसके जीवन से आप के जीवन से घना सम्बन्ध है। उसके ही ऊपर आप की उन्नति निर्भर है।

तो, जिस प्रकार से आपने ईख पेरने के लिए लोहिया कोल्हुओं पर विश्वास कर के उसे व्यवहार में लाया है, और लाभ उठा कर 'पथरिया' कोल्हुओं को परित्याग कर दिया है, और अपने 'शक्कर' और 'गुड़' के वाणिज्य को अभी आप संभाले हुये हैं, और लोहिआ कोल्हुओं का अब अधिकाधिक प्रचार करते जा रहे हैं। तो उसी प्रकार आप वैज्ञानिक कृषि-यन्त्रों को व्यवहार में लाइये लाभ उठाये, कृषि व्यवसाय का उद्धार कीजिये।

क्योंकि विदेशी कृषि-व्यवसाय पर वैज्ञानिक यन्त्रों और रीति रिवाजों का गहिरा रंग जम चुका है। उन्हें उसका चसका लग गया है। जिसकी सहायता से वे दिन दूना रात चौगुना लाभ प्राप्त कर रहे हैं, और संसार को आश्चर्य्य के गर्त में डाल कर धोखा दे रहे हैं। इनका प्रयोग और व्यवहार कुछ विशेष कठिन नहीं है। थोड़े ही परिश्रम द्वारा जाना जा सकता है, और दो ही तीन महीने के व्यवहार करने से सब कठिनाइयाँ दूर हो जांयगी।

आप, कभी भी ऐसे विचार मस्तिष्क में न लाइये कि ये विदेशी वैज्ञानिक कृषि-यन्त्र तथा रीति-रिवाजें पश्चिमी देशों की पैतृक सम्पत्ति हैं। इस पर हमारा कुछ अधिकार नहीं है। इनको व्यवहार में लाने से हमारी हँसी होगी कि इनके पूर्वज ऐसे अयोग्य

और अ-वैज्ञानिक मनुष्य थे। कि उन्होंने इन सब बातों का ज्ञान ही नहीं प्राप्त किया था। अब उनकी संतान हमारी नक़ल कर रही है। इसी से उसकी रोटी चल रही है। ऐसे विचार भ्रामक और अ-ज्ञानियों के हैं। विज्ञान सांसारिक संपत्ति है। उस पर सभी देश, और जातियों का बराबर हक़ है। वह किसी अकेले देश अथवा जाति की पैतृक सम्पति नहीं। संसार परिवर्तन शील है। जब सृष्टि के समग्र व्यवहारों, रीति-रिवाजों में परिवर्तन हो गया है, और समग्र देशवासी उसके क़ायल हो गये हैं, उसके आधीन हैं। तो इसमें किसी को हँसी करने का मौक़ा नहीं प्राप्त हो सकता। क्योंकि हमारे पूर्वजों की कीर्ति तथा उनके कृषि-वैज्ञानिकता की धाक का पता संसार को लग चुका है। जैसा कि 'भारतीय कृषि विज्ञान की झलक' शीर्षक लेख से स्वयं प्रकट हो रहा है।

भारतीय कृषि-विज्ञान की झलक—यद्यपि आधुनिक वैज्ञानिक कृषि-कर्म्म ने, प्राचीन भारतीय कृषि-कर्म्म पर अपना प्रचण्ड आतङ्क जमा रक्खा है, तथापि कई अंशों में अभी भी प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक कृषि कर्म्म के सम्मुख उसे अपना सिर झुकाना ही पड़ता है।

अर्वाचीन काल के योरोपीय कृषि-वैज्ञानिकों को यह पक्का विश्वास हो गया है कि भारतीय कृषि-कर्म आधुनिक काल की भाँति सदैव से ही भारतीय अशिक्षित जनता के ही हाथों में रही है और उस अशिक्षित जनता ने अपनी आवश्यकतानुसार कृषि-कर्म को जैसा चाहा वैसा ही करना आरम्भ किया। आज तक उसी का

अनुकरण होता चला आ रहा है। भारतीय कृषकों के पास वही पुराने कृषि-यन्त्र हैं, जो सहस्रों वर्ष पहिले उनके 'पुरखों' ने बना रक्खे थे, और भारतीय कृषकों में कृषि-कर्म की वही रीति अभी तक प्रचलित है, जिसे उनके पूर्वज प्राचीन-काल में अपने देश और काल की आवश्यकतानुसार अपने उपयोग में लाए थे। पाश्चात्यों का यह विचार, भारतीय कृषि-यन्त्रों को देख कर और भी दृढ़ होता चला जा रहा है। क्योंकि आज कल भारतवर्ष में जो कृषि यन्त्र प्रचलित हैं, वह प्राचीन प्रथा का परिचय तो दिलाते ही हैं, उसके साथ ही साथ ऐतिहासिक दृष्टि से भी वे कृषि-कर्म के उत्पत्ति काल का दिग्दर्शन कराते हैं।

आज कल भारत में दो प्रकार से कृषि की जा रही हैं, एक तो भारतीय सरकार की ओर से वैज्ञानिक ढंग पर स्थापित किये हुये कृषि-क्षेत्र अपना कार्य्य कर रहे हैं, जिनके भाग्य-विधाता प्रायः विदेशी सज्जन हैं। उनमें जो कुछ सज्जन स्वदेशी भी हैं। वह भी उसी प्रथा का अन्धाधुन्ध अनुकरण करते चले जा रहे हैं जिस प्रथा की उन्होंने शिक्षा पाई है। उन लोगों की ओर से यह निरन्तर प्रयत्न किया जा रहा है। कि भारत में भी पाश्चात्य देशों की भाँति वैज्ञानिक कृषि-कर्म सफलता प्राप्त कर ले। परन्तु इस बात का तभी विश्वास हो सकता है, और यह प्रयत्न भी तभी सफलता प्राप्त कर सकता है। जब कि भारत में भी वैज्ञानिक शिक्षा का पूरा प्रचार हो जाय, और सारी जनता अपनी मातृ भाषा द्वारा पाश्चत्य देशों की भाँति वैज्ञानिक-शिक्षा से शिक्षित हो जाय।

दूसरे प्रकार की कृषि हमारे भारतीय कृषक अपनी प्राचीन प्रथा के अनुसार करते चले जा रहे हैं, और उसी से अपनी आवश्यकताओं को भी पूरा करने में समर्थ हैं।

यद्यपि मैं भी वैज्ञानिक कृषि-कर्म का पक्षपाती तथा समर्थक हूँ फिर भी मेरा यह दृढ़ विश्वास है। कि वैज्ञानिक कृषि-कर्म भारत में तभी सफलता प्राप्त कर सकता है। जब कि वह प्राचीन प्रथा में मिल कर दूध और पानी की भाँति एक हो जाय। क्योंकि जब तक दोनों प्रथाओं की अच्छी अच्छी बातें आपस मिल कर एक न हो जायँगी, तब तक पूरी सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। वैज्ञानिक कृषि-कर्म की बहुत सी प्रथाएँ अभी हमारे देश तथा काल के अनुकूल नहीं हैं। उन प्रथाओं का हमें कुछ दिनों के लिए तो अवश्य ही त्याग करना पड़ेगा, और बहुत सी भारतीय प्रथाएँ अब भी हमारे देश-काल के अनुकूल हैं। जिनका ग्रहण वैज्ञानिक-कृषि-विशारदों को करना ही पड़ेगा। जिन सज्जनों ने इस बात का निर्णय कर लिया है कि भारतीय प्रचलित प्रथा भारतीय कृषि-विज्ञान की उन्नति में सहायक नहीं हो सकती। उन्हीं के विचारार्थ भारतीय कृषि-विज्ञान की झलक निम्न लिखित पंक्तियों में दिखलाई जाती है। कृषि-विज्ञान सम्बन्धी ये बातें कृषक-समाज की प्रचलित कथाओं में पाई जाती हैं—तथा कहावतों के रूप में प्रचलित हैं। यद्यपि ये पंक्तियाँ प्राचीन भारतीय कृषि-विज्ञान की झलक दिखाने में परिपूर्ण नहीं होंगी—तथापि हमें इन पंक्तियों से प्राचीनता की झलक अवश्य प्राप्त हो जायगी।

अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारतीयों ने कृषि-कर्म में अच्छा ज्ञान लाभ कर रखा था। हमारे धार्मिक ग्रन्थों से इस बात का पता चलता है कि याज्ञिक-काल में जिन अन्नों का हवन किया जाता था। वे अन्न पवित्र, पूज्यनीय समझे जाते थे। अधिकतर हवनार्थ जौ, चावल, तिल इत्यादि अन्न उपयोग में लाये जाते थे। इनके हवन करने की प्रथा आज तक भी भारत में उसी प्रकार से प्रचलित है, जैसे कि प्राचीनकाल में थी।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है:—

**अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न संभवः।**
**यज्ञाद्भवति पर्जन्योयज्ञः कर्म समुद्भवः॥**

[ गीता अ० ३ श्लो० १४ ]

जब कृषि-कर्म्म के द्वारा ही अन्न उत्पन्न किया जा सकता है और अन्न ही की उन्नति तथा श्रेष्ठता पर, सारे प्राणियों की उन्नति और श्रेष्ठता निर्भर है, तो क्या भारतीय पूर्वजों ने इस कृषि-कर्म्म को और कर्म्मों की भाँति शास्त्रीय ढंग पर, बिना उच्च शिखर पर पहुँचाये ही, छोड़ दिया था ?

इसी प्रकार से मनुस्मृति में [ मनु ३. ७६ ] मनुष्य की और उस के धारण के लिए आवश्यक अन्न की उत्पत्ति के विषय में कुछ श्लोको में चर्चा की गई है। मनु के श्लोकों का भाव निम्न-लिखित है।

यज्ञ की आग में दी हुई आहुति सूर्य्य को मिलती है, और फिर सूर्य्य से पर्जन्य उत्पन्न होता है, पर्जन्य से अन्न, और अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है; और यही श्लोक महाभारत (महा० शाँ० २६२-११ ) में भा है। तैत्तिरीय उपनिषद में ( तै० उ० २-१ ) यह पूर्व परम्परा इससे भी पीछे हटा दी गई है, और ऐसा क्रम दिया गया है :—

"प्रथम परमात्मा से आकाश हुआ, और फिर क्रम से वायु अग्नि, जल, और पृथ्वी की उत्पत्ति हुई, पृथ्वी से औषधि (वनस्पति ), औषधि ( वनस्पति ) से अन्न और अन्न से पुरुष उत्पन्न हुआ।"

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि प्रजा अथवा पुरुष की उत्पत्ति अन्न से ही होती है। अन्न की उत्पत्ति के सारे कारण लोगों को विदित थे। तभी तो लोग प्राचीन काल में कृषि-विज्ञान की सहायता से अपने देश में इतता अन्न पैदा कर लिया करते थे, जो कि वह सारे प्राणियों के जीवन-निर्वाह के लिए पूर्ण ही नहीं इतना अधिक होता था। कि लाखों मन अन्न यज्ञों में होम दिया जाता था। जो अन्न यज्ञ में हवन किया जाता था, उसका विश्लेषण और उसकी प्रयोग-क्रिया तथा उसका प्रभाव भारतीय पूर्वजों को ज्ञात था। जिससे उनके रासायनिक ज्ञान का भी पता चलता है, और यह भी ज्ञात होता है कि वे किन किन रीतियों द्वारा जल-वायु विज्ञान को अपने आधीन करने की चेष्टा करते थे।

भगवान श्री कृष्ण कहते हैं :—

**अहँ क्रतुरहं यज्ञ स्वधाहमहमौषधम् ।**
**मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहंहुतम् ॥**

[ गी० अ० ९ श्लोक १६ ]

**तपाम्यहमहं वर्ष निगृह्णाम्युत्सृजामिच ।**
**अमृतं चैवमृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥**

[ गी० अ० ९ श्लोक १९ ]

क्रतु ( श्रौत ) यज्ञ मैं हूँ, यज्ञ अर्थात् स्मार्त यज्ञ मैं हूं, स्वधा अर्थात् श्राद्ध में पितरों को अर्पण किया हुआ अन्न मैं हूं; औषधि ( वनस्पति ) से ( यज्ञार्थ ) उत्पन्न हुआ अन्न मैं हूँ। मंत्र, घृत, अग्नि आहुति मैं हूं।

हे अर्जुन—मैं उष्णता देता हूँ, पानी को रोकता तथा बरसाता हूँ, अमृत और मृत्यु, सत् और असत् भी मैं ही हूँ।

उपर्युक्त सोलहवें श्लोक में भगवान ने कहा है कि औषधि ( वनस्पति ) से उत्पन्न हुआ अन्न मैं हूँ। इससे अन्न में भी ईश्वरीय सत्ता की झलक दीखती है। यद्यपि आधुनिक वनस्पति वैज्ञानिक वनस्पतियों को जीवधारी पदार्थ ही मानते हैं। तथापि हमारे पूर्वज अन्न में भी ईश्वर का अंश होना उसी प्रकार से मानते हैं जैसा कि मनुष्यों में मानते हैं, और उन्होंने वनस्पति राजा का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया था—अर्थात् इस बात का भी ज्ञान उन्हें हो गया था। कि वनस्पति-संसार का पालन-पोषण करने वाला

वनस्पति-राजा कौन है। यह बात निम्न-लिखित श्लोक से स्पष्ट ज्ञात होती है :—

**गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।**
**पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमोभूत्वा रसात्मकः ॥**

[ गी० अ० १५ श्लो० १३ ]

भगवान कहते हैं:—पृथ्वी में प्रवेश करके मैं ही भूतों को अपने तेज से धारण करता हूँ, और रसात्मक सोम होकर सब औपधियों ( वनस्पतियों ) का पोषण करता हूँ।

सोम शब्द के दो अर्थ हैं. ( १ ) 'सोमवल्ली' ( २ ) 'चन्द्र' और वेदों में चन्द्र के विषय में यह वर्णन किया गया है कि चन्द्रमा जैसे जलात्मक, अंशुमान तथा शुभ्र है। उसी प्रकार सोमवल्ली भी है, और दोनों ही को 'वनस्पतियों का राजा' कहा है।

भगवान ने कहा है:—कि चन्द्र का तेज मैं ही हूँ, और फिर यह भी कहा है कि वनस्पति को पोषण करने वाला चन्द्र का गुण भी मैं ही हूँ, और भी कई स्थानों में ऐसा वर्णन है कि जलमय होने के कारण चन्द्र में वनस्पतियों को पोषण करने का गुण पाया जाता है।

उपर्युक्त श्लोक से हम भारतीयों के वनस्पति-विज्ञान के ज्ञान का परिचय पाते हैं, और ज्ञात होता है कि जिस प्रकार से चन्द्र के गुण को उन्होंने वनस्पतियों के उपयोगी तथा अनुकूल जान लिया था, उसी प्रकार वनस्पति सम्बन्धी सारी भौतिक अनुकूलताओं का उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया था।

इसी प्रकार अनेकों ऐतिहासिक प्रमाण हमारे धार्मिक ग्रन्थों में कहीं २ पाये जाते हैं। उनसे प्राचीन कृषि-विज्ञान की झलक दिखाई देती है। इन बातों से हम भारतीय कृषि की प्राचीन दशा का बहुत कुछ अनुमान कर सकते हैं। इसके सिवा और भी ऐसी ऐतिहासिक बातों का पता चलता है, जिससे ज्ञात होता है, कि प्राचीन काल में ऋषियों के आश्रमों के पास जो भूमि थी उनमें छात्रों को शास्त्रीय ढंग पर कृषि कर्म सिखलाया जाता था। उदाहरणार्थ गौतम ऋषि के आश्रम के चारों ओर कृषि की जाती थी, उसमें नहर का भी प्रबन्ध था, और छात्रों को उस काल के वैज्ञानिक ढँग पर कृषि करने की शिक्षा भी दी जाती थी। इसी प्रकार तक्षशिला में भी अनेकों शास्त्रों की शिक्षा दी जाती थी, जिसमें वनस्पति-विज्ञान की शिक्षा का अद्वितीय प्रबन्ध था, क्योंकि वनस्पति-विज्ञान, वैद्यक शास्त्र का एक आवश्यक अङ्ग था।

किरातार्जुनीय के अध्ययन से भी उस काल की कृषि की दशा का परिचय मिलता है, कि कौरवपति ने पाँडवों को वनबास देकर किसानों को प्रसन्न रखने के लिए कृषि-विज्ञान में कैसी सुविधा जनक उन्नति की थी, और भारवी ने जिस भाँति के धानों का चुभता वर्णन अपनी कविता में किया है। वह रह रह कर याद आ जाता है।

इसके सिवा महाभारत के एक श्लोक से कौरव-पांड़वों के पूर्वजों की कृषि परिचय का प्रमाण मिलता है। कुरुक्षेत्र कौरव पांडवों के पूर्वज राजा कुरु का "कृषि-क्षेत्र" था। इस

कृषि-क्षेत्र में महाराजा 'कुरु' बड़े परिश्रम से हल चला कर कृषि किया करते थे। कुरुक्षेत्र की भूमि इस प्रकार की थी कि राजा कुरु को इस भूमि में हल जोतने में बड़ा कष्ट तथा परिश्रम सहन करना पड़ता था। इसी से इसका नाम क्षेत्र (खेत) पड़ा। परन्तु जब इन्द्र ने कुरु को यह बरदान दिया कि जो इस खेत में तप करते करते या लड़ कर मृत हो जायगा, उसे स्वर्ग मिलेगा। तभी से राजा कुरु ने कुरुक्षेत्र में हल चलाना छोड़ दिया, और तभी से कुरुक्षेत्र का नाम पुण्य या धर्म-क्षेत्र पड़ा।

(म० भा० शल्य ५३)

उपर्युक्त लिखित कुछ पंक्तियों में, अपने प्राचीन ग्रन्थों की सहायता से प्राचीन कृषि-विज्ञान की झलक का कुछ परिचय दिया गया है। अब निम्न-लिखित कुछ प्राचीन कहावतों द्वारा प्राचीन कृषि-विज्ञान की झलक दिखलाई जाती है। इन कहावतों का कृषक-समाज में आदरणीय स्थान है, और इनके ही सहारे उनका कार्य्य भी चलता है, और इन कहावतों की जानकारी के निमित्त बहुत से कृषि-विज्ञान विशारद कहावतों का संकलन करके उसके सारांश को जानने की धुन में भी मस्त हैं।

कृषक-समाज में दो पुरुषों की कहावतें अधिक प्रचलित हैं। एक तो कवि 'घाघ' की कहावतें, जिन्हें साहित्यिक-स्थान भी प्राप्त हो गया है, दूसरे भड्डरी' की। इनमें से कुछ ही कहावतों का दिग्दर्शन कराया जायगा, जिससे उनकी कृषि सम्बन्धी व्यावहारिक बातों का पता चले।

**सौ कै जोत पचासै जोतै, ऊँचै बाँधे क्यारी।**
**याहू में जौ घाटा आवै, दिहे 'घाघ' का गारी॥**

उपर्युक्त कहावत का सराँश यह है। कि व्यावहारिक-कृषि करने के लिये उतनी ही भूमि में कृषि करना उचित है, जितनी का भली प्रकार से प्रबन्ध कर सके, यदि कृषि-क्षेत्र बढ़ा लिया जायगा और प्रबन्ध ठीक न होगा, तो अवश्य हानि की संभावना है।

**माघ क ऊखम जेठ क जाड़,**
**पहिलै बरखा भरिगै गाड़।**
**'घाघ' कहैं हम होंय वियोगी,**
**कुआं खोदि कै धोइ हैं धोबी॥**

उपर्युक्त कहावत से सूखा पड़ने के भय का ज्ञान होता है और इसमें जल-वायु विज्ञान पर अच्छी तरह विचार किया गया गया है। क्योंकि भारतीय पूर्वजों के विचारों से माघ मास की उष्णता और ज्येष्ठ मास का जाड़ा सूखा पड़ने के चिन्ह हैं। इसी प्रकार नीचे को और बहुत सी कहावतों में ज्योतिष से सम्बन्ध रखने वाली बातों का वर्णन है।

**सावन पछिवाँ भादों पुरवा, आसिन बहै इसान।**
**कातिक कंता सींक न डोले, गाजै सबै किसान॥**

इस कहावत के दोहे से कृषक-पूर्वजों का वायु-ज्ञान प्रदर्शित होता है।

**सावन कृष्ण एकादशी, जेतो रोहिणि होय ।**
**तेतो समया जानियो, खरी घसै जनि कोय ॥**
**सावन शुक्ला सप्तमी, चंदा उँगे तुरंत ।**
**की जल मिले समुद्र में, कि नागरि कूप भरंत ।**

इसी प्रकार 'घाघ' की अनेकों कहावतें प्रचलित हैं, जिनमें ज्योतिष-विश्वासों का समावेश है ।

**गया राज जहँ राजा लोभी ।**
**गया खेत जहँ, जामी गोभी ॥**

जिस खेत में गोभी नामी खर-पतवार उगता है. वह खेत भू-गर्भ-विज्ञान की दृष्टि से निम्न-श्रेणी का कहा जाता है, और कृषि के योग्य नहीं समझा जाता ।

**पुष्प पुनर्वसु बोवे धान, अश्लेषा जुन्हरी प्रमान ।**
**मघा महीना बोवे रेल, तब दीजै पर हल में ढेल ।**

इस दोहे में 'तापक्रम' का दिग्दर्शन कराया गया है । क्योंकि ज्योतिष के निर्णय से नक्षत्रों और राशियों के अनुसार सूर्य का 'तापक्रम' घटता और बढ़ता रहता है ।

**सन के डंठल खेत छिटावे, तिनते लाभ चौगुनो पावे**
**जो तुम देव नील की जूठी, सब खादन में रहे अनूठी**

इन कहावतों से हरी खाद के उपयोग का भली प्रकार से पता चलता है ।

इन उल्लेखों से पाठकों ने यह धारणा अवश्य कर ली होगी। कि भारत की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु अत्यन्त प्राचीन काल से ही भरतीय कृषि-वैज्ञानिकों ने 'कृषि-व्यवसाय' को अत्यन्त महत्व दे रेक्खा था, और इसी व्यवसाय द्वारा भारत समृद्धिशाली था। क्योंकि किसी भी देश की आथिकावस्था को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने के हेतु वहाँ की 'जमीन' से सम्बन्ध रखने वाले व्यवसायों की उन्नति की पराकाष्ठा करना पड़ता है। इसका मुख्य कारण यह है कि 'जमीन' से सम्बन्ध रखने वाले व्यवसाय दो श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं। पहिली श्रेणी में तो वे व्यवसाय आ जाते हैं, जो कि भूमि के धरातल और गर्भतल से ही धन-धान्य पैदा करके देश को सम्पतिशाली बनाते हैं। इस श्रेणी में 'कृषि' ही एक ऐसा व्यवसाय है, जो कि सदैव भूमि से समयानुसार नई-नई रीतियों द्वारा भूमि के ऊपरी भाग से धन-धन्य का संचय कर के देश को आर्थिक कठिनाइयों से मुक्त करने का एक प्रधान साधन है।

दूसरी श्रेणी में पृथ्वी के गर्भ से प्राप्त होने वाले—अर्थात् खनिज-पदार्थों का व्यवसाय है। जिसका प्रत्यक्ष लाभ आजकल के ज़माने में पश्चिमी देशवासी भली प्रकार से उठा रहे हैं।

भारत के प्राचीन काल में इस व्यवसाय द्वारा देश को सम्पत्ति-शाली बनाने की चेष्टा में उस काल के मनुष्य इतने संलग्न और उत्कंठित नहीं थे। जितना कि आजकल के विदेशी संसार के लोग इस उक्त द्वितीत श्रेणी के व्यवसाय द्वारा अपने-अपने देशों को

सम्पत्तिशाली बनाने में लीन हैं। इसका भी यही मुख्य कारण था कि भारत को कृषि ही द्वारा पर्याप्त मात्रा में जीवनोपयोगी समान मिल जाया करता था। परन्तु अब जमाना बदल गया है। लोगों की जरूरतें बढ़ गई हैं। इसलिये लोगों को इस व्यवसाय द्वारा भी देश को सम्पत्ति शाली बनाना चाहिये। एक प्रकार से अर्थ विज्ञान की दृष्टि से यदि इस द्वितीय श्रेणी के व्यवसाय पर ध्यान दिया जाय, तो यही कहना पड़ेगा कि अभी भारत में तो इस व्यवसाय द्वारा देश को समृद्धिशाली बनाने के हेतु श्री गणेश तक का भी कार्य नहीं हुआ है। क्योंकि अर्थ—वैज्ञानिकों के सिद्धान्तानुसार 'जमीन' शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक है। उनकी दृष्टि में 'जमीन' शब्द का प्रयोगक्षेत्र साधारण बोलचाल के प्रयोगक्षेत्र से अधिक विस्तृत है। अर्थ—वैज्ञानिकों के मतानुसार 'जमीन' कहने से 'जमीन' के ऊपर, जमीन के भीतर, नदी समुद्र-गर्भ इत्यादि धनोत्पत्ति के प्राकृतिक साधनों का ज्ञान है।

'जमीन' कहने से जमीन के ऊपर और उसके भीतर अर्थात् भूगर्भ दोनों से सम्बन्ध है। उद्भिज्जों से खाने-पीने और मनुष्य-समाज के व्यवहार की आवश्यकता के हेतु जो वस्तुयें प्राप्त होती हैं। वे भूमि के ऊपर ही हमें मिल जाती हैं। परन्तु खनिज-पदार्थ भूमि के भूगर्भ से ही प्राप्त किये जा सकते हैं। इतना ही नहीं उन्हें खोदकर बाहर निकाल कर तब हम उन्हें अपने व्यवहार में लाकर अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकते हैं। तिस पर भी दोनों के प्राप्त होने का आश्रय 'जमीन' ही है। नदी और

समुद्र से प्राप्त होने वाली व्यावहारिक वस्तुओं की उत्पत्ति का आश्रय भी जमीन ही है। क्योंकि नदियां और समुद्र भी पृथ्वी पर ही हैं।

अर्थ-वैज्ञानिकों के इस निर्णय से यही फल निकलता है कि 'कृषि' सभी देशों का एक आवश्यक व्यवसाय है। इस व्यवसाय की ही उन्नति और अवनति पर समग्र देशों की उन्नति और अवनति निर्भर है। जो देश इस व्यवसाय को समयानुसार संसार के अन्य देशों के मुक़ाबिले में शक्तिशाली बनाये रहेंगे। वही संसार में अपना अस्तित्व रख सकेंगे।

भारत कृषि-प्रधान देश है। यहां का वायुमण्डल तथा प्राकृतिक अनुकूलतायें अन्यान्य विदेशी देशों की भांति न अत्यन्त सर्द हैं, न अत्यन्त गर्म। इस देश के भूमि की बनावट भी एक विचित्र ढङ्ग की है। कहीं तो बड़ी-बड़ी नदियां अपने जल से आस-पास की धरती को सींच सींच कर और प्रति वर्ष वहां पर नई नई मिट्टी ला कर के भूमि को उर्वरा बनाती हैं; और कहीं-कहीं पर नदियों का नामोनिशान तक नहीं पाया जाता। इसके अतिरिक्त देश का कोई-कोई भाग अत्यन्त उर्वरा है। तो कोई-कोई भाग उसरीला है। जिसमें कुछ पैदा हो ही नहीं सकता। इसी भांति वर्षा की भी दशा है। चेरापूँजी आदि पहाड़ी प्रदेशों में इतनी वर्षा होती है कि सृष्टि के किसी भी देश में इतनी वर्षा नहीं होती। परन्तु सिन्ध आदि प्रान्तों में दो इञ्च भी वर्षा का हो जाना

सौभाग्य समझा जाता है। देश के किसी २ हिस्से में इतनी अधिक वर्षा होती है कि वहां उपज में निरन्तर वृद्धि ही होती रहती है। किसी भाग में वर्षा के पर्याप्त रूप में न होने से वहां के लोगों को दुर्भिक्ष के ही चंगुल में फंसा पड़ा रहना पड़ता है।

इतना ही नहीं इस देश की सर्दी-गर्मी की भी विलक्षण दशा है। कहीं तो रेगिस्तान का नज्जारा नज़र आता है। जिसके फल-स्वरूप वनस्पतियों का ऐसे स्थानों में नामोनिशान तक नहीं पाया जाता। इसके प्रतिकूल किसी किसी स्थान में इतनी ठंढक पड़ती है कि बर्फ़ के पिघलने तक की नौबत नहीं आती। इस प्रकार से भारत वर्ष में अनेकों प्रकार के प्राकृतिक दृश्य प्रकृति देवि ने अपने विहार स्थली के हेतु रचे हैं। प्रकृति की इसी अनुकूलता के कारण भारत कृषि-व्यवसाय के लिये एक महत्वशाली देश प्रकृति के वक्षःस्थल में माना जाता है। इसी कारण प्राचीन काल से ही आज तक भारत कृषि-प्रधान देश है। वर्तमान काल में वैज्ञानिक पद्धतियों से सचालित वाणिज्य व्यवसाय तथा कल-पुतलीघरों के ज़माने में भी प्रति शत ७२ आदमी इस कृषि-व्यवसाय द्वारा वृटिश भारतवर्ष में अपनी जीविका उपार्जन करने में लगे हुये हैं। वृटिश-भारत की 'कृषि' का वार्षिक मूल्य लगभग १५०० करोड़ मुद्रा कूता जाता है। जिससे सहज में ही यह परिणाम निकाला जा सकता है। कि कृषि-व्यवसाय भारतवासियों को समृद्धिशाली बनाने के लिये कितना महत्वशाली व्यापार है।

वर्तमान काल में भारतवर्ष का अन्यान्य सारा वाणिज्य-व्यवं-

साय लोप हो गया है। केवल कृषि ही एक ऐसा सुगम और सस्ता व्यवसाय समझा जाता है। कि इस व्यवसाय के व्यवसायियों की संख्या दिनों-दिन भारत में बढ़ती ही जा रही है। इसका मुख्य कारण वही है, जो कि अभी-अभी हमने ऊपर कहा है, कि भारत के सारे अन्यान्य व्यवसाय राजनीतिक उथल-पुथल के कारण लोप हो गये हैं—और उन व्यवसायों की ओर से वर्तमान काल में भारत सरकार तथा जनता दोनों ही उदासीन हैं। यदि यही उदासीनता कुछ दिनों तक और बनी रही, तो देख लीजियेगा इसका यही परिणाम होगा कि कृषि-व्यवसाय में लगे हुये लोगों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली जायगी।

सन् १८९१ ई० की मनुष्य-गणना ( मर्दुमशुमारी ) से पता चलता है कि उस समय में कृषि-व्यवसाय द्वारा जीविका उपार्जन करने वालों—अर्थात कृषकों की संख्या प्रति-शत ६२ थी। परन्तु १९०१ ई० की मनुष्य गणना के अनुसार भारतीय कृषि व्यवसाइयों की संख्या ६२ प्रति शतक से बढ़ कर ६८ प्रति शतक हो गई। इतना ही नहीं १९११ में वह बढ़ कर ७२ प्रति शतक तक पहुँच गई। अब तो परोक्ष तथा अपरोक्ष रीति से इस व्यवसाय द्वारा जीवन-निर्वाह करने वालों की संख्या ८५ से ९५ प्रति-शतक तक कूती जा रही है।

भारत के कृषि वैज्ञानिकों का अनुमान है कि आज कल जितने आदमी भारत में परोक्ष अथवा अपरोक्ष रीति से इस कृषि व्यवसाय द्वारा जीविका उपार्जन करके जीवन-यापन कर रहे हैं।

उनमें से प्रत्येक आदमी के हिस्से में खेती के योग्य लगभग डेढ़ बीघे से अधिक भूमि नहीं पड़ती है। इससे उन लोगों को यह पक्का विश्वास हो गया है। कि यदि भारत में इसी प्रकार निरन्तर आबादी बढ़ती चली गई और बढ़े हुये लोगों के लिये जीविका उपार्जन के हेतु अन्यान्य नये-नये धन्धे न खुले—अथवा पुराने व्यापार को पुनः से जीवित न किया गया। तो सब कोई—अर्थात् बढ़ी हुई संख्या भी, कृषि व्यवसाय द्वारा ही जीविका उपार्जन करके अपना जीवन व्यतीत करने के लिये वाध्य हो जावेगी। ऐसी दशा में यहां के बसे हुये लोगों के हिस्से में एक बीघा भी भूमि का पड़ना कठिन तथा असंभव हो जावेगा। जिससे देश की तथा इस व्यवसाय की दशा दिनो-दिन क्षीण होती चली जायगी।

१९११ ई० की मनुष्य-गणना के समय हिसाब लगाने से ज्ञात हुआ था। कि भारत का (अण्डमन, निकोबार और अदन को छोड़कर) क्षेत्रफल प्रायः अठारह लाख वर्ग मील-अर्थात् ११५.१४ करोड़ एकड़ है, और मनुष्यों की संख्या ३१.५ करोड़ से कुछ अधिक है। इतने पर भी यदि इसमें से देशी राज्यों का क्षेत्रफल पृथक कर दिया जाय, तो वृटिश भारत का क्षेत्रफल ६१.६४ करोड़ एकड़ के ही लगभग रह जायगा, और मनुष्य संख्या २४.४ करोड़ से कुछ अधिक शेष बचेगी। वृटिश-भारत की भूमि के समग्र क्षेत्रफल का १५ प्रतिशतक तो जङ्गल ही जङ्गल है। क्षेत्रफल का २३ प्रतिशतक भाग ऐसा है। जिसमें कोई चीज उत्पन्न की ही नहीं जा सकती—अर्थात् ऐसी भूमियों में आबादी नदी—नाले—सड़कों

इत्यादि आवश्यक चीज़ों की रचना की गई है। समग्र क्षेत्रफल का ६३ प्रतिशतक भाग ऐसा है, जिसके अधिकांश भाग में तो खेती हो रही है, कुछ भाग जो कि पड़ती पड़ा हुआ है, उसमें सुधार तथा परिश्रम करने पर खेती की जा सकती है। ऐसी भूमि का क्षेत्रफल लगभग ३९ करोड़ एकड़ के है। इसमें से जितने क्षेत्रफल में सन् १९१६ और १७ ई० में 'कृषि-कर्म्म' द्वारा धन-धान्य उत्पन्न किया गया था। वह ६३ करोड़ एकड़ के लगभग थी। यहां पर इसी सम्बन्ध में यह जान लेना भी जरूरी है कि इस क्षेत्रफल की खेतों में लगे हुये लोगों की संख्या भी लगभग १८ करोड़ है।

जंगलाती भूमि का क्षेत्रफल बर्म्मा में सब प्रान्तों से अधिक है। इसके बाद मध्यप्रदेश तथा बरार का दूसरा नम्बर है। तीसरे नम्बर में मद्रास और बम्बई के इलाकों की गणना की जा सकती है। इसी सम्बन्ध में यह जान लेना भी पर्य्याप्त होगा कि अन्यान्य प्रान्तों की अपेक्षा बर्म्मा की भूमि में ऊसर भूमि की भी अधिकता है। उसके पश्चात् मद्रास, सिन्ध, पञ्जाब का नम्बर आता। नई भूमि जो कि बसने के योग्य पाई जाती है उसका भी अधिकांश बर्म्मा में ही पाया जाता है। तत्पश्चात् पञ्जाब, आसाम, मध्यप्रदेश और मद्रास का क्रमशः नम्बर आता है।

पाठकों! की जानकारी के हेतु अगले पृष्ठ पर एक सारिणी दी जाती है। जिससे लोगों को पता चल जायगा कि भारत के किन किन प्रान्तों में कितनी कितनी भूमि कृषि-कर्म के उपयोग में इस

समय आ रही है—और प्रत्येक प्रान्तों की जन संख्या के अनुसार हर एक आदमी के हिस्से में कितनी भूमि पड़ती है। सारिणी के ये सारे अङ्क १९१६-१७ ई० की रिपोर्ट से लिये गये हैं।

| नाम देश | कुल जमीन का कितना हिस्सा आबाद होता है | प्रत्येक प्रतिशतक आबादी की भूमि पर कितने आदमी पड़ते हैं। |
|---|---|---|
| दिल्ली | ६० प्रति शतक | १८६ |
| बम्बई | ५६ " | ५५ |
| संयुक्त-प्रान्त | ५४ " | १२८ |
| बङ्गाल | ४६ " | १८० |
| बिहार-उड़ीसा | ४९ " | १३२ |
| पञ्जाब | ६४ " | ७३ |
| बर्म्मा | १३ " | ७३ |
| कुर्ग | १४ " | १२३ |
| सिन्ध | १५ " | ७६ |
| आसाम | १९ " | ११५ |
| मानपूर | २३ | ६२ |
| अजमेर मरवार | २४ " | ११९ |

| नाम देश | कुल ज़मीन का कितना हिस्सा आबाद होता है | प्रत्येक प्रति शतक आबादी की भूमि पर कितने आदमी पड़ते हैं। |
|---|---|---|
| पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त | २९ " | ५२ |
| मद्रास | ३८ " | १२१ |
| मध्य प्रदेश बरार | ४० " | ५५ |
| कुल बृटिश भारत का औसत | ३७ " | १०५ |

इस सारिणी से साफ़ साफ़ प्रकट हो रहा है कि भारतवर्ष की भूमि से भरसक—अर्थात जितना हो सकता है, उतना काम लिया जा रहा है। इतने पर भी हरेक आदमी के हिस्से में एक एकड़ भी आबाद भूमि नहीं पड़ती है, और भारत का बहुत सा भोज्य-पदार्थ विदेशों में भेज दिया जाता है। इसी दशा का अवलोकन करने के बाद सर टी० डब्ल्यु 'होल्डरनेस' ने अपनी पुस्तक (peoples and problems of India) में भारतीय मनुष्यों की जीविका के ऊपर विचार करते हुये लिखा था। कि भारत को छोड़कर संसार में अन्य कोई भी ऐसा दूसरा देश नहीं है।

जहां की भूमि से इतना अधिक काम लिया जाता हो, जितना कि भारत की भूमि से। यदि उन लोगों की संख्या अलग भी कर दी जावे जो कि अ-प्रत्यक्ष रूप से कृषि द्वारा जीवन निर्वाह करते हैं। तो भी औसतन २.६ एकड़ से अधिक भूमि भारत में प्रति कृषक के हिस्से में बमुश्किल तमाम आती है। इसी के मुक़ाबिले में यदि तुलना करके देखा जाय तो पता चलेगा। कि योरोपीय महायुद्ध के पहिले ग्रेट-ब्रिटेन में प्रत्येक किसान के हिस्से में १७.३ तथा जर्मनी में ५.४ एकड़ भूमि आती थी। समझ में नहीं आता कि इतनी कम भूमि पर भारतवासी कृषक कैसे संसार के अन्यान्य देशों के मुक़ाबिले में स्वतन्त्रता पूर्वक इसी व्यवसाय द्वारा सुख से जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

इधर भारत की मौजूदा जन संख्या पर मौजूदा भूमि के बँटवारे की यह दशा है। उधर भारत की जन संख्या भी उत्तरोत्तर बढ़ती चली जा रही है। इस बढ़ोत्तरी से साथ ही साथ समय की प्रगति के कारण लोगों की ज़रूरतें भी दिनों दिन बढ़ती ही चली जा रही हैं। जिसके परिणाम स्वरूप देश से बाहर जाने वाले माल के परिणाम में भी बढ़ती होती जा रही है। जो माल विदेशों में भेजा जा रहा है, वह खेती द्वारा उत्पन्न किया हुआ कच्चा माल है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि अभी तक भारत में अन्यान्य उन्नतिशील देशों की भांति उन मालों को कल कारखानों के द्वारा व्यवहारोपयोगी बनाने के साधन अभी पर्याप्त रूप से प्राप्त नहीं है। विदेशों में जाने वाले कच्चे समान के कुछ अंश तो ऐसे हैं जो कि

खाने के काम में नहीं आते। जैसे जूट कपास इत्यादि—और कुछ अंश ऐसे हैं, जो कि देश वासियों के भोज्य-पदार्थ हैं। जैसे चावल, गेहूँ, तेलहन इत्यादि।

पिछले उल्लेखों से तो यह पता हम लोगों को चल ही गया है कि भूमि की अवस्था भारत के किसानों के लिये कैसी है। क्योंकि जितनी भूमि कृषि कर्म्मोपयोगी थी। वह तो इस समय कृषि-कर्म्म के व्यवहार में आ रही है। दूसरे जो कुछ भूमि अब शेष है वह नवीन वैज्ञानिक उपायों द्वारा सुधार कर के ही कृषि उपयोगिनी बनाई जा सकती है। इस सम्बन्ध में भी अभी यह झगड़ा दरपेश है कि बहुत से भू-भाग ऐसे हैं कि जिनके सुधारने में अधिक रुपया लगाने पर भी पर्याप्त रूप से सफलता की आशा नहीं की जा सकती। इस कारण ऐसे व्यय-साध्य भू-भागों को तो पहिले सुधारना ही भारतीय किसानों के लिये असंभव है। जो कुछ भूमि थोड़े व्यय द्वारा सुधार कर काम में लाई जा सकती है। संभव है इस भूमि को कुछ लोग जिनके पास धन है, सुधार करके कृषि के व्यवहार में लावें।

ऐसी दशा में यदि उत्तरोत्तर कृषि-व्यवसाइयों की संख्या दिनों दिन बढ़ती ही चली गई, तो अन्त में यही करना पड़ेगा। कि जिस भूमि में खेती की जा रही है, उसी भूमि में वैज्ञानिक साधनों द्वारा अधिक से अधिक उपज प्राप्त करके काम चलाया जावे, और पड़ती भूमियों को भी विदेशों की भांति खुले दिल रुपया खर्च करके देश का धनी-समुदाय वैज्ञानिक साधनों से उसे कृषि के

योग्य बना ले। इन उपायों और साधनों से वर्तमान काल में तो निःसन्देह एक बार भारत कृषि-व्यवसाय द्वारा लहलहा उठेगा। परन्तु आगे चलकर इस रीति से भी धोखा खाने का सन्देह अभी से वैज्ञानिकों के मस्तिष्क को बेचैन कर रहा है। क्योंकि कृषि-व्यवसाय के साधनों द्वारा किसी भी भूमि से कुछ ही दिनों तक निरतन्र उपज बढ़ती जायगी, और जब उपज की सीमा हद पर पहुंच जायगी, तो लाख वैज्ञानिक उपाय कीजिये, फिर उपज कभी न बढ़ेगी। वरन् वहीं पर रुक जायगी—और जब तक पर्याप्त रूप में भूमि को वैज्ञानिक साधनों के द्वारा सहायता मिलती रहेगी। तब तक उपज भी पूर्ण परिणाम में प्राप्त होती रहेगी। परन्तु जहां साधनों की कमी हुई, वहीं से उपज भी घटने लगेगी। ऐसी दशा में परिणाम यह होगा कि लाभ की अपेक्षा व्यय अधिक होगा। ऐसी अवस्था में लोग अधिक खर्च करने में साहस हीन हो जावेंगे। इसी प्रकार की उपज की घटती अर्थ-वैज्ञानिकों के नियमानुसार "क्रमागत ह्रास' है। भारत के कृषि-व्यवसाय में बढ़ते हुये लोगों की जन संख्या और भूमि के क्षेत्रफल की ओर निहारने से—तथा कच्चे माल की विदेशों में रफ़तानी देखने से एवं इस मसले पर ग़ौर करने से, दिनों-दिन अवस्था भयानक ही मालूम हो रही है।

# विषय-प्रवेश
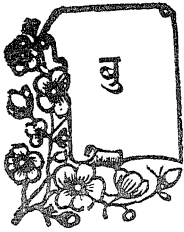
भुक्षितः किं न करोति ॥:— के सिद्धान्तानुसार मानव-जाति की रोटी के प्रश्न ने अर्वाचीन काल में ऐसा भयंकर रूप धारण कर लिया है। जो कि विश्व-मञ्च की रङ्ग-भूमि पर नित्यशः नये नये अभिनय दिखलाया करता है। अभिनय के इस वीभत्स रस पूर्ण रोमाँचकारी दृश्य का अवलोकन कर, सृष्टि के समग्र राष्ट्र सत्ताधिकारियों-तथा देश हितैषियों का मस्तिष्क चिंता रूपी अगाध सागर में गोते लगा रहा है।

उपर्युक्त समस्या को सुलझाने के लिये कोई तो देश की शिक्षा प्रणाली, कोई राजनीतिकावस्था एवं कोई कोई सामाजिकावस्था का संशोधन करना चाहते हैं। परन्तु सर्व प्रथम "म्याऊँ के ठौर" की भाँति यह प्रश्न नेत्रों के सम्मुख डटा खड़ा है और पूछता है ? कि जिस देश के निवासियों के उदर खाली हैं, और वे भूख की चिन्ता से ग्रसित हैं, तो क्या वे शिक्षा प्रणाली तथा नीतिकावस्था एवं सामाजिकावस्था के संशोधन में पूर्ण रूपेण तन, मन, धन से सहायता कर सकते हैं ? और क्या इन संशोधनों से ही उनकी

अनुकूल आवश्यकता के अनुसार निकट भविष्य में उनकी उदर भरण-पोषण सम्बन्धी समस्यायें सुलझ सकती हैं ? यदि नहीं, तो क्या क्षुधा पीड़ित देश वासियों की सहायता के विना ही उपर्युक्त संशोधन पूर्ण रूप से सफलीभूत हो सकता है ?

इन राष्ट्र-विध्वंसिनी आपत्तियों से बचने की हेतु पाश्चात्य दैशिक वैज्ञानिकों ने अनेकों अनुसन्धान तथा आविष्कार कर, मानव जाति को रोटी प्रदान करने वाले 'कृषि कर्म्म' की प्रचलित प्रणाली में अगणित परिवर्तन कर उसे वर्तमान काल के लिये उपयुक्त तथा उपादेय बना दिया है।

परन्तु उपर्युक्त उपादेय प्रणलियों के संशोधन तथा पर्याप्त परिवर्तन से ही कृषि-कर्म्म सम्बन्धी सारी कठिनाइयों तथा आवश्यकताओं एवं हानिकारक अनेकों बातों में अभी वैज्ञानिकों को पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हुई है। क्योंकि कृषि विज्ञान का कोष प्रकृति-देवि के वृक्षःस्थल में ऐसे ऐसे गूढ़ रहस्यों से भरा पड़ा है। जिसका पूर्णतः यथोचित ज्ञान प्राप्त कर लेना निकट भविष्य में वास्तव में ही स्वप्न-सदृश है।

वैसे तो कृषि-कर्म्म सम्बन्धी भौतिक, रासायनिक, वानस्पतिक आदि सारी अनुकूलताओं का समयानुसार पर्याप्त ज्ञान वैज्ञानिकों ने प्राप्त कर लिया है। जिससे इस कृषि-कर्म्म का कार्य्य सुचारू रूप से सम्पादित होता चला जा रहा है। परन्तु कृषि व्यवसाय का मित्र-शत्रु जलवायु विज्ञान अभी पूर्ण रूप से अपने सारे भेदों को कृषि-वैज्ञानिकों से प्रकट नहीं किया है। जिससे कृषि-कर्म्म का

सर्वांश नहीं तो अधिकांश भाग तो अवश्य ही इसके चंगुल में फँसा पड़ा है। यह जल-वायु नामी कृषि विज्ञान का बलिष्ट भाग समग्र देशों के कृषि-वाणिज्य की 'नकेल' जिस समय जिधर चाहता है, उसी तरफ़ को घुमाकर उसे हानि-लाभ के गर्त में गिरा कर उस देश के राजा, रंक, फ़क़ीर तक को क्षुधा से पीड़ित करके अनेकों प्रकार की यन्त्रणायें भोगने के लिये विवश कर देता है।

कृषि-कर्म्म के इसी जल-वायु नामक अंग ने सन् १८६६ ई० में भारत के बङ्गाल तथा उड़ीसा प्रान्त पर 'अकाल' नामक अपने अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग कर के, उक्त प्रान्तों की कृषि-अवस्था को अत्यन्त शोचनीय बना दिया। जिससे लोग क्षुधा की चिन्ता से अत्यन्त चिन्तित हुये। ऐसी दुःखमयी तथा करुणाजनक अवस्था का अवलोकन करने के बाद भारत सरकार का ध्यान भारत में कृषि-विभाग स्थापित करने तथा उसके द्वारा भारतीय कृषि-वाणिज्य के व्यवसाय में सुधार तथा उन्नति करने की ओर आकृष्ट हुआ।

परन्तु कोई वास्तविक फल प्राप्त न हो सका। क्योंकि उस काल के अधिकारियों ने यही निर्णय किया, कि भारत में नहरों की संख्या की वृद्धि की जाने से 'अकाल' द्वारा जो हानियाँ हुआ करती हैं, वह असंभव हो जाँयगी। जिससे कृषि की उन्नति में बहुत कुछ सहायता मिल सकेगी।

अधिकारियों के ऐसे विचारों और प्रस्तावों के थोड़े ही दिन पश्चात् अर्थात् सन् १८६९ ई० में लॉर्ड मेयो की सरकार ने पुनः भारतवर्ष में कृषि-विभाग के स्थापना की बात छेड़ी। ऐसे सुऔसर

के समय में 'मैंचेस्टर' की "कपास समिति" ने भी कृषि-विभाग की स्थापना के हेतु प्राण पन से चेष्टा की। कि भारत में अवश्य कृषि-विभाग की स्थापना होनी चाहिये। क्योंकि उक्त संस्था को भारत में अपने व्यवसाय को बढ़ाने के हेतु पर्याप्त मात्रा में कपास नहीं मिलती थी, और उसे आशा और विश्वास था। कि कृषि-विभाग की स्थापना से मेरी संस्था को अवश्य पर्याप्त मात्रा में रूई मिलने लगेगी।

उक्त प्रयत्न से उस समय में कृषि-विभाग की स्थापना तो भारत में कर दी गई। परन्तु दस ही वर्ष के पश्चात् अर्थात् सन् १८७९ ई० में द्रव्याभाव के कारण वह नव-जात कृषि-विभाग स्वराष्ट्र-विभाग में मिला दिया गया। परन्तु साल भर भी नहीं गुज़रने पाया था कि अकाल देव ने पुनः भारत के गालों पर अपना दाँत धर दबोचा; और सन् १८८० ई० के अकाल के समय कमिश्नरों ने कृषि-विभाग के सुचारुरूप से संचालित होने की ज़ोरदार आवाज़ उठाई। जिसके फल-स्वरूप प्रान्तीय कृषि-डायरेक्टरों की स्थापना हुई। इन डायरेक्टरों ने अपने अधीन प्रान्तों की कृषि-सम्बन्धी बातों की खोज करना आरम्भ कर दी; और भविष्य के कार्य्य की चिन्ता में निमग्न हो गये; और उसके लिये प्रचुरता से सामग्री एकत्रित करने लगे। इसी समय सन् १८८१ ई० में भारत सरकार ने इस कृषि-विभाग के सम्बन्ध में अपना वक्तव्य प्रकाशित करते हुये कहा कि अभी यही उचित है। कि कृषि-कार्य्य सम्बन्धी सारी बातों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जाय; और इस व्यवसाय

सम्बन्धी तमाम आवश्यक बातों में पर्याप्त रूप से छान-बीन की जाय। तत्पश्चात् कृषि के सुधार तथा उन्नति पर ध्यान दिया जायगा। सन् १८८१ से १८८६ ई० तक—अर्थात् ८ वर्ष तक केवल इसी बात के निर्णय में समाप्त हो गये, कि भारत में कृषि-विभाग के लिये किस किस प्रकार के अधिकारी नियुक्त किये जांय। इसी अवसर पर भारत सचिव ने अपनी इच्छा से डा० वालकर नामक एक प्रसिद्ध कृषि-विज्ञान वेत्ता को सन् १८८९ ई० में भारतवर्ष में इसलिये भेजा, कि वह भारतीय कृषि-अवस्था की जांच तथा छान-बीन करके भारत सचिव को इस विषय में अपनी सम्मति और रिपोर्ट दें।

उक्त महोदय ने भारत के प्रत्येक प्रान्तों में यथासम्भव भ्रमण करके हरेक स्थानों की कृषि के विषय में पूर्ण रूप से छान-बीन करके अपने अनुभव के आधार पर एक पुस्तक लिखी। जिसमें उन्होंने इस बात को साफ़ शब्दों में स्वीकार किया। कि भारतीय कृषक व्यावहारिक कृषि-कर्म्म में निपुण होते हुये भी पर्याप्त ज्ञान रखते हैं। जिन लोगों को यह ख़्याल है कि भारतवासी कृषि विद्या से अनभिज्ञ हैं; उनका ख़्याल भ्रामक है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपनी रिपोर्ट में यह भी दर्शाया। कि भारत में बहुत से स्थान ऐसे हैं; जहाँ पर कृषि की दशा अत्यन्त संतोष-जनक है। जिन स्थानों की कृषि-दशा संतोष-जनक नहीं है, वहाँ के कृषक भी कृषि-कर्म्म में पूर्ण रूप से अनुभव तथा ज्ञान रखते हैं। केवल साधनों की अपूर्णता के कारण वे अपनी कृषि की दशा में पर्य्याप्त सुधार तथा उन्नति नहीं

कर सकते। इसलिये ऐसी दशा में भारत सरकार का यह प्रथम कर्तव्य है, कि वह भारतीय कृषि तथा कृषकों की दशा में पूर्ण रूपेण पर्य्याप्त रूप से अनुसन्धान तथा खोज करावे। जब समग्र बातों की पूर्ण पूरी जानकारी प्राप्त हो जावे, तब आवश्यकतानुसार सुधार तथा उन्नति का प्रयत्न करे।

उक्त सज्जन की रिपोर्ट तथा सम्मति के प्रकाशित हो जाने के पश्चात् भारतीय कृषि के सुधार तथा उन्नति के प्रश्न पर बहुत वाद विवाद उठा, और अन्तिम निर्णय यह ठहरा कि भारत के कृषि-विभाग में दो भाँति के कार्य्यकर्त्ता नियुक्ति किये जाँय एक तो इस प्रकार के कर्म्मचारियों की नियुक्ति की जाय, जो कि कृषि-विज्ञान विषयक शिक्षा-सम्बन्धी विद्यालयों (Schcols and bolleges) में अध्यापक का कार्य्य किया करें. दूसरे प्रकार के वे कर्म्मचारी नियुक्त किये जाँय, जो कि कृषि-कर्म्म सम्बन्धी सारी बातों के विषय में अनुसन्धान, आविष्कार तथा निरीक्षण परीक्षण किया करें। इस बात के निश्चय हो जाने पर सामने यह उलझन उपस्थित हो गई कि उक्त कार्य्यों को करने के लिये कहाँ से इस विषय के योग्य वैज्ञानिक मिलेंगे? क्योंकि उस काल में पाश्चात्य देशों में भी ऐसे विषयों के वैज्ञानिकों की बहुत ही कमी थी। परन्तु बीसवीं सदी को आरम्भ से जब से कि वैज्ञानिक शिक्षा का विस्तार किया गया; उक्त विषयों के योग्य विद्वान धीरे धीरे मिलने लगे और अन्त में भारत सरकार ने भी इस कृषि वैज्ञानिक अनुसन्धान तथा आविष्कार एवं प्रचार और सुधार के महत्व

को भारत के लिये आवश्यक समझ कर स्वीकार भी कर लिया।

इधर सन् १८८० ई० में स्थापित किये हुये प्रान्तीय डायरेक्टरों ने आरम्भ में बड़ी बड़ी भूलें की। क्योंकि इन डायरेक्टरों को न तो कृषि-विज्ञान का ही पर्य्याप्त ज्ञान था। न भारतीय कृषि-कर्म्म की रीति रिवाजों तथा प्रणालियों से इन्होंने पूर्ण परिचय प्राप्त कर के देश के कृषि व्यवसाय से ही अभिज्ञ हुये। इसका परिणाम यह निकला कि उन्होंने ने यह कल्पना करली कि भारतीय कृषक कृषि करना जानते ही नहीं। इन्हें आरम्भ से ही कृषि-कर्म्म के ककहरा का पाठ पढ़ाना पड़ेगा, और साथ ही उन्होंने यह भी निर्णय कर लिया था। कि पश्चिमी देशों की कृषि सम्बन्धी जितनी प्रचलित रीति-रिवाजें हैं। वह सब जिस प्रकार से पाश्चात्य देशों के लिये लाभदायक हैं। उसी प्रकार से वह भारत के लिये भी लाभकारी होंगी।

इसी विश्वास तथा आत्म-निर्णय के कारण प्रान्तीय डायरेक्टरों ने तमाम विदेशी कृषि-सम्बन्धी मशीनों तथा फ़सलों के बीज एवं रासायनिक खादों को विदेशों से मँगाकर उनका प्रयोग और व्यवहार भारत में आरम्भ कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय कृषि-यन्त्रों में न तो समयानुसार कुछ सुधार ही किये गये। न भारत की फ़सलों के बीजों में ही कोई सुधार और चुनाव हुआ। प्रत्युत इसके उन फ़सलों के बीजों की बुवाई घटकर थोड़े क्षेत्रफल में होने लगी।

उक्त प्रान्तीय अधिकारियों को इस पारिवार्तनिक उलट-फेर का अन्तिम परिणाम नहीं मालूम था। जिसके कारण उन्हें बहुत धोखा खाने तथा हानि उठाने के पश्चात् अपनी भूलों का स्मरण आया। जिसके फल स्वरूप उन लोगों ने भी इस बात का विश्वास तथा निर्णय किया। कि भारत के अशिक्षित किसानों से भी भारतीय कृषि के सम्बन्ध में अधिकांश बातें सीखी जा सकती हैं। भारत की कृषि में भी अनेकों जानने योग्य बातें हैं। जिनके जानने से हमारा बहुत सा कार्य्य सुगमता से लाभ के साथ सफल हो सकता है।

इन तमाम उथल-पुथल के बाद यही निर्णय हुआ कि भारतीय किसानों को विदेशी किसानों की हू-बहू नकल करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। क्योंकि भारत के किसन अपने देश की अवस्था के अनुसार किसानी के पेशे में पर्याप्त ज्ञान और जानकारी रखते हैं। केवल आवश्यकता इस बात की है, कि भारत की कृषि सम्बन्धी कौन सी रीति रिवाजें वर्तमानकाल के लिये लाभदायक हैं, कौन सी हानिकारक—तथा कौन कौन से कृषि-यन्त्र समयानुसार कृषि-कर्म्म के लिये उपयुक्त हैं। कौन कौन से अनुपयुक्त। इन सारी बातों की छान-बीन करके अलग अलग की जाँय देश की चीज़ों में सुधार तथा परिवर्तन करके उनको उपयोगी। बनाया जाय। जो त्याग देने के योग्य हों उन्हें त्याग दिया जाय। जो ग्रहण करने के योग्य हों उन्हें ग्रहण किया जाय। इस प्रकार से भारत के किसानों में नवीन वैज्ञानिक यन्त्रों, बीजों रीति-रिवाज़ों,

का जो कि भारत के लिये उपयुक्त तथा ठीक हों। उनका प्रचार किसानों में किया जाय। साथ ही जो वैज्ञानिक बातें और भारत की प्राचीन बातें त्याग देने योग्य हों उन्हें त्याग दिया जाय। इतने दिनों के अनुभव से अन्त में बीसवीं सदी के आरम्भ में सब बातों का निश्चय हो सका।

भारत में राजकीय कृषि विभाग की स्थापना—लॉर्ड कर्ज़न के राज्य-काल में शिकागो के दानी मि० हेनरी फिलप्स ने तीस हज़ार पाउण्ड भारत की भलाई के किसी कार्य्य में व्यय करने के लिये लॉर्ड कर्ज़न को दिया। लॉर्ड कर्ज़न ने उस रूपये से "पूसा के राजकीय कृषि विभाग" की स्थापना की। जहाँ पर आज कल कृषि-विज्ञान के प्रत्येक अंगों पर अपने अपने विषय के प्रकाण्ड वैज्ञानिक अनुसन्धान और आविष्कार करते हैं, और कुछ भारतीय कृषि-विज्ञान के विद्यार्थी इन वैज्ञानिकों की देख-रेख में अपने अपने विषयों में अध्यवसाय द्वारा अध्ययन करते हैं, और वे भी नवीन बातों की खोज में दत्त चित्त रहते हैं। वर्त्तमान काल में भारत में 'पूसा' ही भारत सरकार का सब से बड़ा 'कृषि-विज्ञान" विषयक समग्र बातों की खोज करने का मुख्य स्थान है। जहाँ पर प्रत्येक विषयों के प्रयोग क्षेत्र प्रयोग शालायें और पुस्तकालय प्रस्तुत कर दिये गये हैं। पूसा के कार्य्य कर्ताओं का विशेष लक्ष्य वैज्ञानिक अनुसंधान करना और उसे व्यावहारिक रूप देना है।

इस कार्य्य को सुचारू रूप से योग्यता पूर्वक सम्पादित करने के लिये १९०५-६ ई० से भारतीय कोष द्वारा २० लाख-अब तो

२४ लाख रूपया प्रति वर्ष कृषि-शिक्षा में व्यय करने के हेतु स्वीकृत किया गया है। इसी रूपये से प्रान्तीय कृषि-कॉलेज तथा स्कूल खोले गये हैं। जिनके लिये आवश्यकतानुसार भूमि क्रय करके भिन्न भिन्न प्रकार के कृषि-फार्म प्रयोग-शालायें और पुस्तकालय स्थापित किये गये हैं। इन प्रान्तीय कृषि-कॉलिजों में प्रान्तीय कृषि-विज्ञान के विद्यार्थियों की शिक्षा के साथ साथ प्रान्तीय कृषि-कर्म्म सम्बन्धी अनेकों बातों में अध्यापक-वर्ग प्रयोग, अनुसंधान और आविष्कार करके प्रान्तीय कृषि-डिमॉन्स्ट्रेटरों द्वारा उनका प्रचार भी कराते हैं।

निःसन्देह यह बात निर्विवाद है कि वर्तमान काल में भारत में कृषि-विज्ञान विषयक शिक्षा के प्रचार की अत्यन्त ही आवश्यकता है। परन्तु यह भी ध्यान में रखने योग्य बात है कि भारतीय कृषि की लाभदायक प्रथाओं की खोज तथा प्रचार में भी योग्य तथा अनुभवी स्वदेशी तथा विदेशी विद्वान् पर्याप्त संख्या में नियुक्त किये जांय। इस नियम का अवलम्बन करने से भारतीय कृषकों में प्रचलित अनेकों हानिकारक प्रथाओं और रीति-रिवाजों का धीरे-धीरे अन्त हो जावेगा। इस बात पर सदैव ध्यान रखना पड़ेगा। कि विद्यालयों में पढ़ाना तथा खोज करना—अर्थात् दोनों ही कार्य्य एक ही व्यक्ति द्वारा पूर्णतः सफलीभूत होना सर्वथा असंभव है। यदि मान भी लिया जाय कि कोई नई बात खोज करके निकाली भी गई। तो उसके विषय में इस बात के जानने की तथा कार्य्य रूप में परिणित करने की परमावश्यकता है। कि वह नई बात भार-

तीय किसानों के लिये व्यावहारिक दृष्टि से वहां तक लाभदायक है। तत्पश्चात् इतने ही कार्य्य से कृषि-विभाग के कर्म्मचारियों का कर्तव्य पूर्ण न हो जावेगा। प्रत्युत इसके उस नई बात को कृषक-समाज के कोने कोने में प्रचार करके इस बात के जानने की आवश्यकता होगी। कि कृषक-वर्ग इस नवीन बात से पर्याप्त मात्रा में ठीक रीति से लाभ प्राप्त कर रहे हैं, अथवा नहीं।

उक्त हरेक कामों के लिये बहुत से कृषि-विज्ञान विशारदों की आवश्यकता समझ कर इस बात का प्रबन्ध किया गया है। कि प्रत्येक स्थानों के कृषि-विभाग में कुछ लोग तो शिक्षा का कार्य्य करें, कुछ लोग खोज का, और कुछ लोग कृषि-व्यवसाय सम्बन्धी उपादेय प्रथाओं, नियमों के प्रचार का। इस कार्य्य को भली प्रकार से पूर्ण करने के हेतु मुख्य स्थान पूसा को छोड़ कर प्रत्येक प्रान्तों में कृषि-विभागों की स्थापना की गई है, और उक्त सारे कार्य्य अधिकारियों के सुपुर्द कर दिये गये हैं।

भारत के राजकीय तथा प्रान्तीय कृषि-विभागों का मुख्य उद्देश्य भारत के कृषि-व्यवसाय में सुधार और उन्नति करना है। जिसका मूल-मन्त्र कृषि-विषयक बातों का अनुसंधान करना है। यह सारे अनुसंधान प्रयोग-शालाओं के ही द्वारा पूर्ण रूप से किये जा सकते हैं। नयी बातों की खोज तथा आविष्कार के बाद इस बात पर विचार करने की आवश्ययकता है। कि इन नई खोजों आविष्कारों, रीति, रिवाजों को व्यवहार रूप में प्रयोग करने से लाभ है, अथवा हानि। इस बात का निर्णय हो जाने पर कृषक-समाज में उसके

गये। इतना ही करके कृषि-विभाग ने चैन नहीं लिया, वरन् एक ही जाति के बीजों में से लाल गेहूँ के बीज अलग सफ़ेद गेहूँ के अलग सींकुरदार अलग—बिना सींकुरदार अलग। इस प्रकार से बड़ी छान-बीन के साथ बीजों का चुनाव कर के अच्छा जाति के बीजों का प्रचार प्रचुरता से करके उनकी खेती अधिक क्षेत्रफल में की जाने लगी। जिससे भारतीय बाज़ारों में तो इन फ़सलों द्वारा अधिक से अधिक मूल्य मिलने लगा। परन्तु विदेशी फ़सलों के बीजों के सम्मुख जैसी सफलता की आशा की गई थी, नहीं हुई। तब वैज्ञानिकों ने इस बात की खोज करना आरंभ कर दी। कि किन गुणों की कमी के कारण हमारी फ़सलों द्वारा उत्पन्न वस्तुओं की खपत विदेशी बाज़ारों में नहीं हैं। धीरे धीरे इस कमी को उन्होंने पूरा करके विदेशी बाज़ारों के उपयुक्त भी भारत की कृषि से उत्पन्न हुई वस्तुओं को बना दिया। जिससे जैसा दाम चाहिये, वैसा दाम विदेशी बाज़ारों में भी, देश भारत की कृषि से उत्पन्न हुई वस्तुओं का मिलने लगा।

इस सफल-प्रयत्न की इति श्री यहीं पर नहीं करदी गई। वरन् जिन जिन फ़सलो के बीजों तथा रेशों में सुधार किया गया था उनका प्रचार भी नुमाइशी-फार्मों और कृषि-प्रदर्शिनियों द्वारा प्रचुरता से किया गया। जिसके फल स्वरूप वे सारे बीज और रेशे की फ़सलों का प्रसार अर्थात् अधिक क्षेत्रफल में उनकी खेती भी कृषकों द्वारा होने लगी।

बीजों की मांग दिन प्रति दिन किसानों में बढ़ने लगी। जिसके फल स्वरूप कृषि-विभाग ने 'बीज-भंडारों' की स्थापना

किया । जिसके द्वारा भारतीय किसानों को प्रत्येक फ़सलों के उत्तम बीज मिल रहे हैं । जिससे उत्तम फल प्राप्त किया जा रहा है ।

विदेशों में चुने हुये बीज विश्वासी कम्पनियों या किसानों के यहां से मिला करते हैं। क्योंकि विदेशों में ऐसी व्यापारिक बहुत सी संस्थायें हैं। परन्तु भारत में विदेशी श्रेणी के रोज़गारी नहीं हैं। क्योंकि अधिकतर भारतवासी किसान बोने के लिये स्वयं बीज सिरज कर के रखते हैं। इनके रखने के ढंग में इस बात की कमी अवश्य है। कि यह बीजों के बीनने और चुनने में सदैव उदासीन रहते हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि अकाल के कारण किसानों को अपने घर का बीज मिलना दुर्लभ हो जाता है। इस कारण वश भारतीय प्रचलित रीति के अनुसार किसानों को महाजनों तथा बड़े किसानों अथवा इसी प्रकार के अन्य बीज देने वालों के यहाँ से ड्यौढ़े या सवाये पर निम्न श्रेणी का बीज लेकर बोना पड़ता है। जो कि अधिकतर सड़ा,गला, घुना, होता है। क्योंकि ये बीज के व्यवसायी अधिकतर विदेशी बीज के व्यवसाइयों की भांति कर्तव्य परायण नहीं होते; यह पूरे स्वार्थी और कृषक-भक्षक होते हैं।

इन्हीं तकलीफ़ों से बचाने के हेतु, प्रान्तीय कृषि-विभाग के द्वारा प्रान्त के प्रत्येक ज़िलों में डिमांस्ट्रेटरों द्वारा फ़सलों के बीज का प्रचार कृषकों में किया जा रहा है, और उन्हें हर प्रकार की सहूलतें प्रदान की जा रही हैं, और महाजनों के हथकंड़ों से कृषकों को मुक्त किया जा रहा है। ऐसे बीजों का प्रचार कषि-विभाग के

अतिरिक्त सहयोग-समितियां तथा प्रतिष्ठित ज़मींदार वा ताल्लुक़ेदार तथा कुछ कृषक व्यवसायी भी अब करने लगे हैं।

परन्तु वर्तमान काल में कृषि-सहायक पशुओं की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई हैं। एक तो इनकी 'नसलों' का ही अब ठीक प्रकार से कुछ ज्ञान लोगों को नहीं रह गया है। दूसरे इनके पालन पोषण की रीतियां भी ऐसे भद्दे तरीक़े से भारतीय कृषकों द्वारा बरती जा रही हैं। जो कि वर्तमान काल के अनुकूल नहीं हैं। दूसरे चारे की कमी भी दिनों-दिन भारत में एक भयंकर रूप धारण करती जा रही है। जिससे पशुओं को भर पेट चारा-दाना मिलना कठिन हो गया है। इससे उनके स्वास्थ पर भी धक्का पहुँच रहा है।

पशुओं की इस दशा का अवलोकन कर इस बात पर विचार करके कि बिना पशुओं कि उन्नति भये भारतीय कृषि की उन्नति हो ही नहीं सकती। इस हेतु पशुओं की उन्नति के लिये भारत में दो विभाग स्थापित किये गये हैं। एक तो 'सिविल वेटनरी" दूसरा "आर्मीरीमाउण्ट" आर्मी अर्थात् फौज वाले उन पशुओं के पालने और नस्ल सुधारने का कार्य्य करते हैं। जो कि फौज़ी रिसाले के काम आते हैं। 'सिविल वेटनरी' डिपार्टमेण्ट अधिकतर बैल, गाय, भैंस, भेंड, बकरी, घोड़ा, खच्चर इत्यादि पशुओं की उन्नति तथा नस्ल सुधार एवं चिकित्सा का प्रबन्ध करता है। कलकत्ता, रंगून, लाहौर, बम्बई, मद्रास में ऐसे डाक्टरों और कर्म्मचारियों की शिक्षा के हेतु कॉलिज खोले गये हैं। मुक्तेश्वर (नैनीताल) और बरेली में सरकारी प्रयोग-शालायें हैं। जहां पशुओं के रोगों का

अनुसंधान और उनकी चिकित्सा का प्रबंध किया जाता है। यहां पर पशुओं की बीमारियों और संक्रामक रोगों की दवायें तैयार हुई हैं। जो कि भारत भर में इस्तेमाल की जाती हैं। और इनकी मांग, मिश्र रोडेशिया आदि विदेशों में भी बढ़ गई है।

उल्लिखित बातों के अतिरिक्त-वैज्ञानिक कृषि-यंत्रों तथा रासायनिक खादों का प्रचार करने में सरकारी कृषि-विभाग दत्तचित है। इसमें सन्देह नहीं है कि इस अंग के प्रचार में सफलता की जैसी आशा की जाती थी। वैसी सफलता कृषि-विभाग के कर्म्मचारियों को अभी तक नहीं हुई है। यद्यपि इन विषयों के सम्बन्ध में भारतीय किसानों को बहुत कुछ सलाह-मशविरा दिया गया। परन्तु वास्तविक सफलता प्राप्त न हो सकी। इस कारण बहुत से कृषि वैज्ञानिकों को यह पूर्ण विश्वास हो गया। है कि भारतवष में वैज्ञानिक कृषि-यन्त्रों का प्रचार हो ही नहीं सकता। हम इस सम्बन्ध में अभी इतना ही कह देना पर्याप्त समझते हैं। कि जिस प्रकार से प्राकृतिक सिद्धान्तानुसार जो क्रान्तिकारी परिवर्तन संसार के किसी कोने से आरंभ होता है। उसका प्रभाव संसार के समग्र-देशों पर बिना पड़े नहीं रहता। जैसा कि नित्य हमारे देखने में आ रहा है। संभव है कि उस परिवर्तन का प्रभाव प्रत्येक देश पर उसकी स्थित के अनुसार ही पड़े। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उसका प्रभाव पड़ेगा ही नहीं।

कुछ सामयिक बाधाओं तथा अपूर्णताओं एवं सामाजिक बन्धनों के कारण अभी हमारे देश में वैज्ञानिक कृषि-यन्त्रों का

प्रचार जैसा कि होना चाहिये था, नहीं हुआ है। परन्तु तो भी यहां पर इस बात का विचार करते हुये हम विना यह कहे नहीं रह सकते। कि जिस प्रकार से भारतवासी वर्तमान काल में अनेकों वैज्ञानिक वस्तुओं से दिनों दिन चिपटते चले जा रहे हैं। उसी प्रकार से समय के प्राप्त होते ही कृषि-यन्त्रों को काम में लाने के लिये वे बाध्य हो जावेंगे, और अन्य देशों की भांति केवल वैज्ञानिक कृषि-यन्त्रों को अपने काम ही में नहीं लावेंगे। वरन् वे स्वयं नये नये अपने देश के अनुकूल कृषि-यन्त्रों का आविष्कार भी करेंगे। कृषि-विभाग को इस समय इन यन्त्रों का प्रचार करते समय किसानों को उनके लाभदायक सलाह देते हुये, इस बात पर भी ध्यान देना पड़ेगा। कि किसानों की आर्थिक दशा तथा उनकी पूँजी एवं यन्त्रों में चलने वाले बैलों और भैंसों की शक्ति कैसी है। इसके अतिरिक्त उन्हें सामाजिक बन्धनों और प्रबन्धों का भी ध्यान रखना पड़ेगा।

इन कृषि-यन्त्रों के प्रचार के अतिरिक्त रासायनिक खादों का भी व्यवहार विदेशों की भांति अब भारत में प्रचुरता से होने लगा है। यद्यपि कृषि-विभाग भी इसी बात की कोशिश में है कि भारतीय कृषक जानवरों के मल-मूत्रों द्वारा खाद के संचय का ढंग सीखें और साथ ही साथ कूड़ा-कर्कट, राख, तालाब अथवा पोखरे की सड़ी-गली मिट्टियों का तथा हरेक प्रकार की खलियों एवं सड़ी मछलियों को खाद के काम में लाने के प्रयोग को सीखें

और उन्हें प्रचुरता से व्यवहार में लावें, परन्तु अभी इस विषय में भी पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई।

इन तमाम बातों के अतिरिक्त पाठकों को इस विषय को भी भली भांति समझ लेना चाहिये। कि जिस प्रकार से विदेशों में पहिले पहिले कृषि की सहायता के लिये घोड़ों की शक्ति को व्यवहार में लाया गया, और अब धीरे धीरे मशीनों पर ही विदेशी कृषि का सारा कार्य्य अवलम्बित हो गया है। उसी प्रकार से भारतीय कृषि में भी अत्यन्त प्राचीनकाल से ही भारतीय पशुओं के सहायता की अत्यन्त आवश्यकता रही है। जिसे प्राचीन काल के लोगों ने बड़े प्रयत्न से निबाहा है।

परन्तु सरकार के इतने उद्योग पर भी देश के किसानों का ध्यान पशुओं की चिकित्सा करने की ओर जितना आकृष्ट होना चाहिये था नहीं हुआ। बड़ी कठिनता से देश के किसानों में पशुओं की चिकित्सा कराने की आदत डालने का प्रयत्न किया जा रहा है। धीरे धीरे पशु चिकित्सकों की संख्या भी बढ़ रही है। प्रत्येक ज़िलों और म्युनिसिपैलिटियों में भी पशुओं की चिकित्सा के हेतु डाक्टर रक्खे गये हैं। जब हरेक स्थानों में पशु-चिकित्सक सरलता से मिलने लगेंगे। तभी पशुओं की रक्षा का कुछ न कुछ अंश अवश्य सिद्ध हो जायगा। भारत सरकार द्वारा यह सब साधन प्राप्त होते हुये भी देश में पशुओं की अत्यन्त शोचनीय दशा है। निःसन्देह अन्यान्य देशों की अपेक्षा भारत में माँसाहारी लोगों की संख्या कम है। तिस पर भी पशुओं की रक्षा का तथा उनके

पालने पोषने की नवीन वैज्ञानिक पद्धतियों का अनुसरण अभी तक भारत वासियों ने यथोचितरूप में नहीं किया है। कुछ ही दिन व्यतीत हुये हैं कि बम्बई के गवर्नर लॉर्ड बिलिंगडन ने कृषि-बोर्ड के सदस्यों का ध्यान आकर्षित करते हुये वैज्ञानिक प्रणालियों द्वारा पशुओं की उन्नति करने के विषय में बहुत सी उपादेय बातें कहते हुये 'गणेशखिंड' की अपनी खास गोशाला में उक्त लॉर्ड महोदय ने वैज्ञानिक रीति से पशुओं के पालने का लाभ प्रत्यक्ष रूप में दर्शाया था।

जिससे कृषि बोर्ड ने यह निश्चय किया था। कि यहाँ पर ऐसी नस्ल की गाय का प्रचार किया जाय, जिसके बछड़े कृषि-कार्य्य करने के हेतु बलिष्ट और साहसी हों और बछियायें दुधार अर्थात् अधिक दूध देने वाली हों। विदेशी पशुओं की नस्ल और उनकी "क्रास-ब्रीड" भारतमें सफलता नहीं प्राप्त कर सकी है। इसके अनेकों कारण है। इसी से तो यह सिद्धान्त निश्चय हुआ है कि भारतीय पशुओं के नस्ल में सुधार किया जाय।

इसी सिद्धान्त को लेकर हिसार ( पंजाब ) और छरोढ़ी (अहमदाबाद) के सरकारी फार्मों में सांडों के पालने और वहाँ से दूर भेजने का कार्य्य जारीहै देश के कुछ भागों में कहींकहीं पर अच्छी नस्ल की गायें पाई जाती हैं। परन्तु बङ्गाल,विहार, युक्त—प्रदेश के बैल-गाय कृषि-कर्म्म की दृष्टि से उतने अच्छे नहीं होते जितने अच्छे कि उन्हें होना चाहिये। पंजाब, सिंध, मालवा, गुजरात, मैसूर और मद्रास के कई इलाकों में गायों की बहुत अच्छी अच्छी नस्लें मिला

करती हैं। इन प्रान्तों में उत्तम श्रेणी के गाय—बैल पालने और उनका व्यवसाय करने की प्रथा भी है। मैसूर-अमृत महाल के पशु भी उत्तम श्रेणी के होते हैं—उनका मूल्य लगभग चार सौ रुपये तक कूता जाता है। मद्रास-नेल्लौर की भी नस्ल अच्छी होती है। मालवा तथा खेरी की नस्ल समग्र मध्य-भारत में फैली हुई है। यहां के बैल हृष्ट-पुष्ट तथा तेज़ मिज़ाज़ के होते हैं। जो कि कृषि के उपयोग के लिये बड़े लाभदायक हैं। कठियावाड़—गिरनार की गायें अधिक दुधार होती हैं—तथा बैलै भी यहां के शक्ति-शाली होते हैं। यहाँ के सरकारी फार्मों में साड़ों के पाले जाने का और बाहर भेजने का उत्तम प्रबन्ध किया जाता है। जिसके फल स्वरूप यहां के बैलों को फौजी विभाग अपने यहां रसद के ढोने के काम में लाता है। सिन्ध प्रान्त के मुसलमानों में भी उत्तम श्रेणी के गौओं के पालने की रीति का प्रचार है। पञ्जाब मांट्गोमरी की भी गायें हांसी हिसार की भांति भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं।

जिस प्रकार से बैल हल के खींचने तथा गाड़ी खींचने के काम में लाये जाते हैं। उसी प्रकार से भैंसे भी कृषि के काम तथा बोझ ढोने के काम में लाये जाते हैं। परन्तु भैंसे बैलों की भाँति खेती के तथा अन्यान्य कामों में उतने लाभदायक नहीं सिद्ध हुये। जितने कि बैल। दक्षिण भारत के भैंसे कमज़ोर होते हैं। जाफराबादी या काठियावाड़ की भैंसे—तथा दिल्ली रोहतक की भैंसे अधिक दूध देती हैं।

पशु-उन्नति का बहुत कुछ दारोमदार पशुओं के चारे पर निर्भर है। चारे की मांग दिनों-दिन भारतवर्ष में इस कारण से बढ़ती जा रही है कि पहिले भारतवर्ष में चारागाहों की अधिकता थी। परन्तु अब वे सारे चारगाह जोत लिये गये हैं। चारे की सुगमता उत्पन्न करने के लिये कृषि विभाग द्वारा कई एक क़िस्म की घासों जैसे रिज़्का, गिनीग्रास इत्यादि के बोने का प्रचार भी देश में किया जा रहा है। जिससे बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई है। इतना ही नहीं चारे के संचय की भी नई रीतियों का दिग्दर्शन तथा उनकी प्रयोगात्मक और व्यावहारिक प्रणालियों का प्रचार भी देश में किया जा रहा है। जिससे हरे चारे के संचय की रीति ज्ञात हो जाने से चारे के प्रश्न का सुलझ जाना बहुत कुछ संभव हैं।

दूध, दही, घी, मक्खन का व्यवसाय भी कृषि-व्यवसाय के ही अन्तर्गत है। अमेरिका, स्वीडन, डेनमार्क में दूध देने वाले पशुओं का वैज्ञानिक रीति-रिवाजों से पाला-पोसा जाता है। उनसे अधिक से अधिक मात्रा में दूध उत्पन्न करके उनसे अनेकों प्रकार की वस्तुयें प्राप्त की जाती हैं। इस देश में इस विषय की शिक्षा प्रत्येक प्रान्तीय कृषि-विद्यालयों में दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त 'बंगलौर' में राजकीय ओर से तथा इलाहाबाद अग्रीकल्चरल इंस्टीट्युट में इस विषय को उच्च शिक्षा दी जाती है। यदि इस व्यवसाय को भारतवासी संभाल लें, तो धन और धर्म्म दोनों ही की रक्षा हो जाय।

मछलियों का व्यवसाय भी कृषि-व्यवसाय का सहायक व्यवसाय है, बंगाल आसाम बिहार, बर्म्मा इत्यादि प्रान्तों में मछली का बहुत व्यवहार होता है। परन्तु प्राचीन ढंग से मछलियों के पकड़ने से बहुत सी मछलियाँ नष्ट हो जाती हैं। बहुतेरों का वंश नाश हो जाता है। वर्षा में बाढ़ के समय बहुत सी मछलियाँ बह जाती हैं, और गर्मी के दिनों में पानी के सूख जाने से बहुतों की जान चली जाती है। बङ्गाल में मछली पालने की जो चाल प्रचलित है, उसमें सुधार करने की अतीव आवश्यकता है। सन् १९०७ ई०में मद्रास में सर फ्रेडरिकनिकल सन ने मछलियों के सम्बन्ध में खोज आरंभ किया था। जिसके फल स्वरूप धीरे धीरे वहाँ मछलियोंके विषय की खोज करके लाभ उठाने के हेतु एक विभाग ही स्थापित हो गया है। समुद्र में मछली पकड़ने और मोती निकालने का काम शुरू कर दिया गया है। मीठे पानी में भी नयी नयी जाति की मछलियाँ पाली जाने लगी हैं। मछलियों से तेल तैयार करके उसके व्यापार का भी काम आरम्भ हो गया है।

बंगाल-बिहार में मछली का एक विभाग स्थापित करके इसके द्वारा समुद्र की मछलियाँ पकड़ करके कलकत्ते की बाजारों में इनका व्यापार किया जाता है। इसके अतिरिक्त नदियों और तालाबों की मछलियों की आदतों का पता लगाकर उनके पालने का प्रबन्ध तालाबों में किया जा रहा है। दूर दूर के तालाबों में पालने के हेतु मछुओं और जमींदारों को बाँटी जा रही हैं। पञ्जाब की

नदियों और नहरों में मछली पालने तथा उनके वंश का नाश होने से बचाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त कृषि-विज्ञान के अन्तर्गत और भी अनेकों विषय हैं। जिनके विषय में प्रवेश करना और उनके द्वारा लाभ उठाना भारतीय कृषकों का कर्म्म है। जिस प्रकार जंगल लगाना तथा बाग़-बग़ीचों को लगाकर फलदार पौधों से आमदनी करना भी कृषि-व्यवसाय का एक अंग है। बाग़बानी की शिक्षा के लिये तथा इस काम के लिये सहारनपुर में 'बोटैनिकलगार्डन' है जिसमें बड़े बड़े वृक्षों के फल-फूलों में सुधार किया जा रहा है। लोगों को इन विषयों की ओर रुझान पैदा कर के इनसे लाभ उठाना चाहिये। वर्तमान काल में मुर्ग़ियों और सुअरों का पालना भी विदेशी कृषक अपने व्यवहार में लाकर लाभ उठा रहे हैं। अब इस विषय को हम यहीं पर समाप्त कर के अन्यान्य कुछ आवश्यक बातों का ज़िक्र करके इस विषय प्रवेश नामक अध्याय को समाप्त कर देना चाहता हूँ।

इस पुस्तक को देखकर संभव है, कृषक पाठक वर्ग! आश्चर्य्य-सागर में गोते लगाने लगें कि एं! जिस 'जुताई' को करते करते हम बुड्ढे हो गये। हमारी आँखों में अब ज्योति नहीं रह गई। बाल सफ़ेद हो गये और 'जुताई' की ही जानकारी से मैं ने अपना "कृषक जीवन" व्यतीत कर दिया। उसी मामूली बात पर इतनी मोटी पुस्तक कैसी? ऐसे ही विचारों के पाठकों के आश्चर्य्य के हेतु मैं यह पहिले ही से बतला देना चाहता हूँ। कि इस पुस्तक में

केवल भारतीय किसानों की 'जुताई' के ही विषय में जानी हुई बातों तथा गुण —दोषों का ही वर्णन न किया जायगा। वरन् इस पुस्तक में व्यावहारिक कृषि-कर्म्म के प्रधान अङ्ग 'जुताई' पर तथा इसके उपाङ्गों पर पूर्ण रीति से विवेचना करते हुये, और संसार के समग्र देशों की 'जुताइयों' और विशेषतः वैज्ञानिक रीतियों द्वारा उन्नति प्राप्त कृषि-यंत्रों द्वारा की गई पश्चिमी देशों की जुताइयों को और भारतीय प्रचलित यन्त्रों से की गई जुताइयों पर तुलानात्मक दृष्टि से आलोचना करते हुये, उनके समग्र गुण-दोषों का वर्णन किया जायगा। तथा साथ ही इनकी उपयोगिता को देश कालानुसार बताते हुये, इस बात पर ज़ोर देकर सिद्ध कर दिया जायगा कि संसार की परिवर्तनशीलता —प्राकृतिक है। उस पर किसी का अधिकार नहीं। कि इसकी गति को कोई रोक सके। इसलिये "कृषि-व्यवसाय की उन्नति तथा अस्तित्व पर दृष्टि रखते हुये और समस्त देशों के व्यावसायिक सम्पर्क के कारण हमें यही उचित है। कि हम भी यदि संसार के अन्य देशों से एक क़दम आगे न रह सकें, तो क़दम से क़दम मिलाकर तो चलनेकी कोशिश करें। जिससे सांसारिक जीवन-संग्राम में कोई भी अन्य देश हम पर हमला करने का विचार तक भी अपने मस्तिष्क में न ला सकें। यदि कोई व्यावसायिक-जीवन-संग्राम में हमें पछाड़ने की कपोल-कल्पना के अनुसार भ्रामक विचार भी करे तो बराबर की शक्ति देख कर चुपचाप अपना सा मुंह लेकर बैठ जाय—अथवा यदि मैदाने-जंग में उतर ही पड़े, तो हम अपनी सु-संगठित रीतियों और

शक्तियों के बल पर उसे ऐसी पेंच-दाँव लगाकर पछाड़ दें। कि वह फिर लड़ने के लिये उठ ही न सके; यदि साहस कर के उठे भी तो ऐसा चपत लगावें, कि फिर कभी सामना करने का नाम भी न ले।

'जुताई' ही कृषि-कर्म्म का पहिला कर्म्म है। जिसे किसानों तथा हलवाहों को अपने खेतों में करना पड़ता है, और जिसके ऊपर वहुत कुछ हमारी खेती की उपज निर्भर है। यदि इस स्थान पर इस बात को साफ़ साफ़ खुले शब्दों में बतला दिया जाय कि बिना जुताई के उद्देश्यों के अनुसार उचित तथा पूर्ण रीति से जुताई किये हुये, चाहे हम खेत में खाद-पांस का ढेर ही क्यों न लगा दें, और उस खेतमें उत्तम शुद्ध हृष्ट-पुष्ट बीज को बीज-भंडारों से लाकर और उस की उत्तमता को जांच कर भले ही बो दें तथा समयानुसार उसकी सिंचाई, निकाई गुड़ाई भी क्यों न कर दें। परन्तु तो भी हमें वास्तविक (असली) उपज उस खेत से नहीं प्राप्त हो सकेगी। क्योंकि हमने उस खेत के मुख्य कर्म्म जुताई को उचित तथा ठीक रीति से तथा नियमों के अनुसार नहीं किया था। तो मेरी समझ में कुछ अतिशयोक्ति न होगी। क्योंकि 'जुताई' का विषय एक ऐसा गहन विषय है, जिसका समुचित ज्ञान प्राप्त कर लेना कोई हंसी-ठट्ठा की वात नहीं। खेतों की 'जुताई' का सारा रहस्यमय भेद प्रकृति-देवि के वक्षःस्थल में छिपा हुआ पड़ा है। उसके रहस्यों को हम साधारण बुद्धि वाले भारतीय किसान नहीं जानते हैं। कि केवल दो-चार बार खेतों की जुताई कर देने से

और बीजों के बो देने से, यह कैसे एक ही खेत में अनेकों प्रकार के पौधों से भिन्न-भिन्न क़िस्म का नाज पैदा होजाता है ? जिसमें से कुछ क़िस्म के नाज तो हमारे भोजन के समय खाने में आते हैं। कुछ से हम चिकनाई ( तेल ) निकालते हैं—अथवा किसी किसी पौधों के फूल ही फल, किसी की जड़ें, किसी के पत्ते अथवा डंठल को ही हम व्यवहार में ला कर अपना अर्थ निकालते हैं। इनमें से जो कुछ भाग शेष रह जाता है—अथवा जो मनुष्योपयोगी नहीं होता है। वह पशु-पक्षियों और कीड़े-मकोड़ों को जीवन प्रदान करने के काम आता है। ऐसे ऐसे रहस्यमय भेदों को जो कि जुताई ही के द्वारा खेतों में हुआ करते हैं, और जिनकी लीला नित्य हम अपनी आंखों से देखा करते हैं। परन्तु इन प्राकृतिक-आधिभौतिक लीलाओं के रहस्यमय भेदों पर कभी क्षण मात्र भी विचार नहीं करते। इनकी असलियत को जानने के लिये मस्तिष्क को काम में नहीं लाते। केवल अपने ही पेट की चिन्ता से चिन्तित रहते हैं। कि किसी तरह पेट भर जाय, दिन कट जाय, सबेरा हो खेतों की जुताई आरंभ कर दें।

हमारे देशवासी किसान, वर्ष की तमाम ऋतुओं और महीनों में सदैव किसी न किसी फ़सल की तय्यारी के हेतु खेतों की 'जुताई' करते हुये देखे जाते हैं। जिन लोगों के खेतों की जुताई यदि उनकी इच्छा और विचार के अनुकूल नहीं होती रहती है अथवा नहीं हो पाती है। तो वह रात-दिन विह्वल रहते हैं, चिंता में इधर-उधर मारे मारे फिरा करते हैं। परिवार में इसी हेतु कलह

मची रहती है। कि मौक़ा हाथ से निकला जा रहा है, हम चूक गये, हमारे खेत की जुताई नहीं हो सकी, फ़सल के बोने का समय आ गया, वे लोग जिन्होंने अपने खेत की जुताई भली प्रकार से कर ली थी। बुवाई आरंभ कर दी, भला उनकी फ़सल अच्छी पैदावार देगी कि हमारी? क्योंकि 'घाघ' ने कहा है कि:—

**अगसरि खेती अगसरि मारु।**
**'घाघ' कहैं यह कबहुँ न हारु॥**

हम तो पिछड़ गये, सारा मामला चौपट हो गया, अब क्या करना चाहिये? ऐसे विचारों से जब बेचारा किसान निरासा और उदासी के जाल में फँस जाता है, और उसे कुछ नहीं सूझता, तो उसके घर के प्राणी तथा उसके मित्र-बन्धु उसे होश में लाते हैं। दौड़-धूप कर के हल-बैल मँगनी मांग कर के इकट्ठा करते हैं। रात-दिन बराबर जुताई करते रहने से येन-केन-प्रकारेण खेत जोत कर तय्यार कर लिया जाता है, और बुवाई करके कृषक छुट्टी पाता है। इस प्रकार जब किसी किसान के खेतों की जुताई के क्रम में व्यतिक्रम हो जाता है। तो उसके सारे कृषि-कार्य्य व्यतिक्रम होते जाते हैं। जिससे उसके सब कृषि-सम्बन्धी कार्य्यों में निरन्तर विघ्न-बाधायें उपस्थित होती चली जाती हैं, और सिंचाई, गुड़ाई, निकाई उचित समय पर ठीक रीति से नियमानुसार नहीं हो पाती। जिससे सारा खेल बिगड़ जाता है। कटाई करके दाँय-मांड़ कर के जब उपज का फल प्राप्त होता है। तो उसकी ओर निहारकर और फिर

अपने खर्च और परिवार की ओर देखता है। तो होश फाखता हो जाती है, खैर। किसी न किसी तरह 'रास' घर आती है। ज़मीदार के कारिन्दे, तथा बीज और 'खौहीं' देने वाले महाजन चिपट लगते हैं। तब अन्न को बेच कर अपनी जान छुड़ाता है। कर्ज़ के द्वारा परिवार-भार सँभालता है। इस प्रकार दिनों-दिन ऋण बोझ से दबता जाता है ?

# कृषि-विज्ञान

## धरातल तथा गर्भतल

( soil and subsoil )

ब तक तो प्रस्तावना, वक्तव्य, विषय-प्रवेष के ही विषय में उल्लेख किया गया है, क्योंकि किसी विषय के पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के हेतु उल्लिखित विषय प्रधान विषय की मुख्य मुख्य बातें हैं, जिनका जानना भी परमावश्यक है। अब हम जुताई की उन बातों के विषय में चर्चा करेंगे कि, जिन विषयों का घना-सम्बन्ध हमारी जुताई से है; और सब बातों के पूर्ण रूप से प्राप्त कर लेने के पश्चात् सब से ही पहिले हमें इस विषय से मुक़ाबिला करने की आवश्यकता पड़ती है।

जब हम अपने हल-बैल सहित खेत पर पहुँचते हैं, और हल-वाहा हलमें बैलों को नाध करके खेत को जोतना आरम्भ कर देता है, तो हम देखते हैं कि, हमारा हलवाहा हमारे खेत की पपड़ी अर्थात् ऊपरी सतह को हल से जोत रहा है। केवल यही उसका

काम है कि, हल-बैल की सहायता से खेतों को जोते, और कुछ नहीं।

परन्तु, इस बात को कोई नहीं सोचता है कि, हमारे खेत की पपड़ी क्या है? हम इसे क्यों जोतते हैं? जोतने ही से इसमें क्या नई बात पैदा हो जाती है? कि, जिसके कारण हम इसमें फ़स्लें पैदा करके अपनी भिन्न भिन्न आवश्यकताओं को पूरा करते हैं; और इसके विरुद्ध जो ज़मीनें नहीं जोती-बोई जातीं उसमें केवल कुछ घासें अपने हो आप जंगली दशा में उगा करती हैं, और नष्ट-बर्बाद हो जाया करती हैं; किन्तु जिन खेतों की जुताई भली भाँति की जाती है, अर्थात् उनकी पपड़ी जितना ही उलट-पुलट कर बार बार जोती जाती है, उसमें उन खेतों की अपेक्षा फ़सल अच्छी दशा में दृष्टि-गोचर होती है, तथा पैदावार भी अधिक देती है; जो कि मामूली अर्थात् दो ही तीन बार जोत कर बो दिये जाते हैं।

जब ऐसा विचार उत्पन्न हो जाता है, और हम खेत की पपड़ी पर विचार करने लगते हैं कि, जिस पर हमारे हलवाहे का हल काम कर रहा है; अर्थात् जहाँ तक हमारा हल ज़मीन में घुस कर उसकी मिट्टी को चीर-फाड़ करके अलग अलग कर दे रहा है, और इस चीर फाड़ में हमारे खेत की पपड़ी की मिट्टी में हल से 'कूढ़' बनता जा रहा है, और इस कूढ़ के दोनों तरफ़, कूढ़ के ज़मीन की मिट्टी कुछ तो छोटे छोटे अथवा बड़े बड़े ढेलों की दशा में उखड़ती जा रही है, कुछ भुरभुरी दशा में उखड़ कर फिर उसी 'कूढ़' में गिरती जा रही है। तो हमें ज़मीन की पपड़ी के नाम के जानने की

आवश्यकता पड़ती है कि, जमीन की पपड़ी का क्या नाम है? जिसमें कि हमारा हल चल रहा है, और जिस मिट्टी की यह दशा हो रही है।

हमारे खेत की उस मिट्टी का नाम जिसमें हमारा हल चलता है, और जितनी गहराई तक मिट्टी हलके फार द्वारा चिर-फड़ कर उखड़-पुखड़ जाती है, उसे ही कृषि-विज्ञान-विशारदों ने 'धरातल' (soil) नाम दे रक्खा है, इस 'धरातल' के नीचे जो भाग पाया जाता है, और जिसमें हमारे हलों द्वारा जुताई नहीं हो सक्ती, स्पष्टतया ऐसा समझ लेना चाहिये, कि भूमि के 'धरातल' के निम्न भाग में जहाँ कि हमारे देशीय-कृषि-यंत्र कार्य नहीं कर सक्ते, उसे 'गर्भतल' ( Subsoil ) कहते हैं। इसी धरातल पर ही हमारे हल चला करते हैं, यह धरातल पृथ्वी की पपड़ी है। इस पपड़ी अर्थात् धरातल को ही जोत कर हम फ़सलें बो दिया करते हैं; परन्तु न जाने इस धरातल में क्या ईश्वरीय-प्राकृतिक रहस्य छिपा हुआ है, जिसे हम नहीं जानते; न जानने का प्रयत्न ही करते हैं, उसी रहस्य के मूल से हमें अपने खेत के धरातल द्वारा अनेकों प्रकार के अन्न, तेल, फल, फूल, जड़ शकर इत्यादि वस्तुयें प्राप्त होती रहती हैं, जो कि हमारी जीवन-सम्बन्धी सारी आवश्यकताओं को पूरा किया करती हैं; और हम आनन्द से इनको व्यवहार में लाकर के सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत किया करते हैं।

परन्तु, पृथ्वी के धरातल के रहस्यों को जानने का प्रयत्न नहीं करते कि वह कौन सी वस्तुयें हैं, जो कि हमें गेहूं, चावल, उर्द,

सरसों इत्यादि फ़सलें देकर हमारा परिवार पालन करती हैं, और जब कभी धोखा दे जाती हैं, तो इतनी उपज भी नहीं हो पाती है, कि और वर्षों की भाँति हम इन वस्तुओं की दी हुई अन्न-रूपी चीज़ों से अपना गुज़ारा भी कर सकें।

यदि, हम धरातल की इन रहस्यमय-बातों के जानने का प्रयत्न करें कि, इनमें क्या चीज़ है; जिसके कारण हमारे एक ही खेत में एक ही समय में कई एक फ़सले मिलवाँ रूप में उत्पन्न हुआ करती हैं, और उन फ़सलों से हम अन्य अन्य प्रकार की वस्तुयें प्राप्त किया करते हैं, और जो हम अपने काम की नहीं समझते उसे फेंक दिया करते हैं। तो हम बहुत कुछ बातें जान सकते हैं; क्योंकि यह सिद्धान्त दुनियाँ में मान्य है कि, "मिहनत के आगे कोई चीज़ मुश्किल नहीं।" स्यात् सम्भव है कि, भारत के कुछ विचार तथा अवस्था के किसान मेरी इस बात को सुन करके हँस दें, और कुछ चुप्पी साध करके मौन धारण कर लें, कि हमारे खेत की ऊपरी सतह की मिट्टी को जिसे यह "धरातल" कह रहे हैं, और धरातल की मिट्टी में कहते हैं कई चीज़ें हैं; और इन्हीं वस्तुओं से हमारी खेती की अनेकों प्रकार की फ़सले पैदा होकर के हमें अनेकों क़िस्म की चीज़ें दिया करती हैं, भला यह बात कभी भी ठीक हो सकती है? क्योंकि हम भी लड़कपन से ही जुताई करते करते बुड्ढे हो गये; हज़ारों खेतों में जुताई की, और हम अपने खेत के धरातल की मिट्टी में कुछ वस्तुयें भी आज तक न देख सके; जब देखा तो यही देखा कि यह "माटी" है,

किसी खेत में काली है, किसी में सफ़ेद, किसी में चिकनी मिट्टी है, किसी में बलुहरा। यही सब बातें तो हम हमेशा से देखते चले आये हैं, और आज भी हम यही देख रहे हैं, और इनको भी दिखा सकते हैं; भला क्या इन्होंने जो थोड़ा बहुत पढ़ लिया है, उसीसे इनके सचमुच चार आँखें होगई हैं, क्या! जो कहते हैं कि यदि "धरातल" की मिट्टी की वस्तुओं के जानने का प्रयत्न किया जाय, तो हम लोग भी इन वस्तुओं को जान सकते हैं, यह ठीक बात है ? यह हमें कैसे इन चीज़ों को दिखलायेंगे, हमें तो विश्वास नहीं होता, इतने में एक किसान कहता है, कि चलिये! ज़रा इनकी बातें सुन ही देख लें! क्या यह हमारा कुछ ले लेंगे ? देखें, यह कैसे मिट्टी से बहुत सी चीज़ें निकाल करके हमको दिखायेंगे!

उल्लिखित शंका जो कि एक किसान के दिली-रूपक के रूप में व्यक्त करके दिखलाई गई है; बहुत से किसानों तथा उन पुरुषों के मस्तिष्क में उठ सकती है, तथा साधारणतया उठा भी करती है, जो कि विज्ञान के ज्ञान से अपरिचित तथा अनभिज्ञ हैं; परन्तु ऐसे मनुष्यों के मस्तिष्क में कभी भी ऐसी शंका नहीं उत्पन्न हो सकती है, जो कि विज्ञान से परिचित हैं, अथवा कृषि-विज्ञान के विद्यार्थी हैं और उसके रहस्यों को जानने के लिये इच्छुक हैं। सम्भव है बहुत से विज्ञान-विशारद मेरी इस छोटी सी बात की चर्चा पर नाँक-भौं सिकोड़ें कि, भला इस मामूली बात की चर्चा से क्या लाभ ?

परन्तु, मैं धरातल सम्बन्धी उन बातों का अवश्य ही यहां पर दिग्दर्शन कराऊँगा। जो कि वैज्ञानिकों द्वारा वैज्ञानिक पद्धतियों से प्रयोग करके देखी जा सकती हैं, तथा देखने के पश्चात् उसकी सत्ता तथा असलियत पर विश्वास भी किया जा सकता है।

यद्यपि धरातल सम्बन्धी सारा ज्ञान, विज्ञान के उस प्रधान अंग से सम्बन्ध रखता है, जिसे 'भूगर्भ-विज्ञान' ( geology ) कहते हैं, और धरातल का ज्ञान भूगर्भ-विज्ञान का एक प्रधान विषय है; जिसका सविस्तार वैज्ञानिक-ज्ञान का यहां पर वर्णन करना असंभव तथा अनावश्यक प्रतीत हो रहा है। जिसका कि ऐसा विस्तारिक वर्णन हमारी जुताई से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रखता; परन्तु तो भी मैं धरातल सम्बन्धी उन समग्र छोटी-मोटी बातों का वर्णन यहां पर अवश्य ही करूंगा, जिनका कि जानना, किसानों को तथा इस पुस्तक के पढ़ने वालों के लिये मुझे आवश्यक प्रतीत हो रहा है; और बिना जिसके जाने हमारी 'जुताई' के ज्ञान का सम्पूर्ण विषय समुचित रूप से संपादित नहीं किया जा सकता।

धरातल की जानकारी के लिये जब हम, धरातल पर विचार करने लगते हैं; तो हम एक ऐसी उलझन में पड़ जाते हैं, जिसका सुलझाना मुश्किल पड़ जाता है, प्रश्न हो सकता है कि वह कौन सी उलझन है ? वह उलझन यह है, कि हम धरातल के बारे में एक ही प्रकार की बात सब लोगों से कर रहे हैं; परन्तु सृष्टि के सब

देशों तथा सब देश के हर एक स्थानों में यहां तक कि एक ही खेत के एक जगह के धरातल में तथा दूसरे जगह के धरातल में हम बहुत ही अन्तर पाते हैं, क्योंकि एकही खेत में हम देखते हैं, कि सब जगह फ़सल के पौधे ठीक से उगे हुये हैं, फिर भी कुछ जगहें हम कभी कभी ऐसी भी देखा करते हैं कि, ऐसी हैं जिसमें फ़सल के पौधे ठीक से नहीं उगे हुये हैं, और ये जगहें भी खेत की धरातल हैं, तो एक ही बात खेत के समग्र धरातलों के विषय में कैसे ठीक उतर सकती है। यह उलझन-प्रश्न ठीक है; और इसका जानना भी ज़रूरी है।

जब हम धरातल का निरीक्षण-परीक्षण करेंगे तो देखेंगे, कि पृथ्वी के यदि समग्र स्थानों के धरातलों की मिट्टियों का वैज्ञानिक रीत्यानसार परीक्षण किया जाय , तो बहुत सी चीज़ें सब जगह की मिट्टियों में एक ही पाई जाँयगी; केवल अन्तर होगा तो इन चीज़ों की मात्रा में, किसी जगह के धरातल की मिट्टी में तो वही चीज़ थोड़ी मात्रा में पायी जायगी और कहीं के धरातल की मिट्टी में अधिक मात्रा में पाई जायगी, जैसे यदि किसी ऐसे खेत के धरातल की मिट्टी ली जाय जिसमें खाद ख़ूब पड़ चुकी है; और किसी ऐसे खेत की मिट्टी ली जाय जिसमें खाद कम पड़ी हुई है, और दोनों मिट्टियों का परीक्षण किया जाय, तो पता चलेगा कि खाद वाले खेत के धरातल की मिट्टी में खाद वाली चीज़ों की मात्रा उस खेत की अपेक्षा अधिक है, जिसमें कि खाद कम या नहीं पड़ी हुई है।

उपर्युक्त बातों से जान पड़ता है कि, धरातल के विषय का ज्ञान-संपादन करना भी कितना पेचीदा है; क्योंकि 'धरातल" की बनावट को जानने के लिए जब हम परीक्षण करने के लिये कटिबद्ध होते हैं, कि लाओ कुछ वैज्ञानिक पद्धतियों द्वारा धरातल की बनावट को भला जान तो लें; क्योंकि बिना कुछ चीज़ ख़राब किये हुये कोई चीज़ हासिल भी तो नहीं होती, जब ऐसे विचारों की महत्ता के कारण हम अपने काम में जुटते हैं, और 'धरातल' के परीक्षण के लिये, प्रत्येक स्थानों, ऋतुओं, समयों पर विचार करने लगते हैं, तो पता चलता है, कि 'धरातल' सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करना वास्तव में ही कोई मज़ाक की बात नहीं है, क्योंकि एक ही खेत के धरातल की मिट्टी का यदि परीक्षण किया जाय, तो उस मिट्टी में जो बातें जाड़े में पाई जाँयगी, वही बातें गर्मी और बर्सात में नहीं पाई जाँयगी, क्योंकि बरसात के समय बहुत से खेतों की मिट्टी बह करके दूसरे खेत में चली जाती हैं, इसी प्रकार बहुत से खेतों में दूसरे खेतों से नई मिट्टी आकर के नये तह के रूप में जम जाती है; इसी प्रकार हरेक मौसिमों में हमारे खेत के धरातल की मिट्टी में सदैव बहुत से परिवर्तन हुआ करते हैं, तो भला सब धरातलों की मिट्टी कैसे जाँची जा सकती है, और एक ही जगह के धरातल की मिट्टी को जाँच करके कैसे अन्य अनेकों स्थानों की मिट्टी का हाल जान सक्ते हैं।

इन सब शंकाओं के समाधान हेतु मैं यहाँ पर यह बात अभी से बतला देना भी ठीक समझता हूँ कि, पृथ्वी के समग्र स्थानों में

धरातल की मिट्टी हमेशा, हर समय में, हर ऋतुओं में अनेकों प्राकृतिक-शक्तियों के संघर्षण तथा परिवर्तन के कारण बना-बिगड़ा करती रहती है, और परिवर्तन हुआ करता है, यह सब बातें, 'भूगर्भविज्ञान' की तथा 'जल-वायु-शास्त्र' की गूढ़गूढ़ बातें है; समयानुसार कभी हम लोग इन बातों को भी जानने की कोशिश करेंगे, और जान भी लेंगे। यहां पर हम लोगों को केवल इतना ही जान लेना आवश्यक है; कि हमारी कृषि का सारा दारोमदार इसी धरातल और जलवायु पर निर्भर हैं, जिसमें से धरातल सम्बन्धी बहुत सा ज्ञान वैज्ञानिकों द्वारा हमें प्राप्त हो गया है, जिससे हम लोग धरातल को जैसा चाहें बना बिगाड़ सक्ते हैं—अर्थात उसे जुताई इत्यादि कर्म्म करके अपने लिये उपयोगी बना सकते हैं, और यही सब कार्य्य उचित तथा ठीक रीति से न करके उसे अपने लिये हानिकारी बना लेते हैं। सारांश यह कि, धरातल को "कृषि" के अनुकूल बनाना कृषकों के बायें हाथ का खेल है।

परन्तु, जल-वायु को अनुकूल कर लेना तो भारतीय कृषकों के लिये अभी स्वप्न की बात है; कि जब ज़रूरत हो तो कुछ कृत्रिम उपायों द्वारा वैज्ञानिक सहायता से पानी बरसा लें, अथवा हवा को अपने अनुकूल बना लें, इसी प्रकार 'ताप' इत्यादि की अनुकूलतायें "कृषि" के लिये उत्पन्न कर सकें। परन्तु हम लोगों को ऐसा न समझ लेना चाहिये कि, जब हम लोगों के लिये यह सब स्वप्नवत् बातें हैं, तो सभी के लिये यह स्वप्नवत् बातें होंगी।

वैज्ञानिक संसार जल-वायु पर अपना आधिपत्य जमाने के लिये बहुत दिनों से लालायित है, और वह इसके लिये घोर प्रयत्न भी कर रहा है; और कुछ अंशों में उसे सफलता भी मिल चुकी है, यहां तक की कृत्रिम वर्षा द्वारा तो पानी बरसा ही लिया गया, इसी प्रकार जल-वायु के अन्य अंगों पर भी प्रयोग किये जा रहे हैं; कि वह किसी प्रकार हमारे अनुकूल हो सकें। अस्तु, यह सब तो अन्य विषय की बातें हैं। हमारा प्रयोजन तो यहां पर केवल धरातल से है, धरातल को हम जैसा चाहें वैसा ही उत्तम 'कृषि' के लिये बना सकते हैं, और कृषि की उपज विशेषतया धरातल की ही उत्तमता पर निर्भर है; जिस देश के कृषक जितना ही अपने यहां के धरातल की मिट्टी को जोतकर अपनी 'कृषि' के योग्य बनावेंगे, उस देश में उतना ही कृषि-व्यवसाय उन्नति अवस्था को प्राप्त होता चला जायगा। क्योंकि वैज्ञानिक सिद्धान्तानुसार यह सिद्ध हो गया है, कि किसी भी क़िस्म की ज़मींन के धरातल को सुधार कर हम कृषि के लिये उपयोगी बना सकते हैं; और उस भूमि के धरातल में कृषि-व्यवसाय किया जा सकता है। परन्तु, अनेक सांसारिक कारणों से किसी भी देश की समग्र भूमि में कृषि-कर्म्म करने के लिये लोग उसे सुधारने अथवा उपयोगी बनाने का प्रयत्न नहीं करते, इसका कारण देश कालानुसार भिन्न २ है; परन्तु भारत में इसका कारण आर्थिक और राजनीतिक है; जिससे सारे राष्ट्र की उन भूमियों में कृषि-कर्म नहीं हो रहा है; जिसमें प्रयत्न करने पर हो सकता है।

अब हम अन्य विषयों की ओर न भटक कर, धरातल की साधारण बनावट पर विचार करेंगे। यदि किसी भी स्थान के धरातल से थोड़ी सी मिट्टी लेकर उसे हम बारीक़ कर लें, और हाथ में लेकर हाथ की पाँचों उँगलियों से उसे रगड़ें; तो रगड़ने पर मालूम होता है, कि कुछ मिट्टी तो हमारी उँगलियों में महीन होने के कारण चिपक जाती है, हमारा हाथ माटी के मलने के कारण मटमैला हो जाता है, और कुछ छोटे-छोटे रोड़े अथवा कँकड़ियाँ रगड़ने पर उँगलियों से रगड़ खाती रहती हैं, और देखने पर हाथ में पाई भी जाती हैं। जिनसे पता लगता है कि, किसी अत्यन्त प्राचीन काल में यह रोड़े और कँकड़ियाँ किसी चट्टान की अंश थीं, जो आज हमें इस दशा में दिखलाई पड़ रही हैं। इस कारण हमें इनकी बनावट को अत्यन्त गहन समझना चाहिये; क्योंकि इनका सम्बन्ध चट्टानों से है, और चट्टानें भूगर्भ-विज्ञान की बातें हैं।

आइये, हम लोग अपने अपने खेतों के धरातल से मिट्टी लायें, मिट्टी को लाकर हम लोगों को—तौल लेना चाहिये, कि इसका परिमाण (वज़न) कितना है, तो उसके पश्चात् हम वैज्ञानिक रीति से इसकी सब चीज़ों को जाँच कर देख सकेंगे। सब लोग अपने अपने खेतों से मिट्टी लाकर जब तौल कर रखते हैं, तो हम देखते है कि किसी के धरातल की मिट्टी सफ़ेद, किसी की काली, किसी की लाल रंग की है; किसी की मिट्टी गीली है, किसी की सूखी, अर्थात् सब के खेतों के धरातलों की मिट्टियों में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य ही है। परन्तु, हम इसकी परवाह न करके, सब खेतों के धरातलों

की मिट्टियों को तौल कर बराबर बराबर परिमाण में (वज़न) मिट्टी लेते हैं। और किसी भी बर्तन में रखकर जो आग पर चढ़ सके, (जैसे लोहे का तवा वा कड़ाही) सब कोई अलग अलग आग पर गर्म करने लगते हैं। तो इस प्रकार गर्म करने से, सब मिट्टियों का रंग कुछ न कुछ थोड़ी देर में अवश्य ही बदल जायगा, और कड़ाही के ऊपर कुछ न कुछ चीज़ अवश्य ही धुआँ के रूप में दिखाई देगी, सम्भव है, दिन में उन मिट्टियों में न दिखाई दे जो कि बहुत ही सूखी हुई हैं, और उनमें भली भाँति दिखाई दे जो कि गीली थीं, यदि इस प्रकार जाँच करेंगे, तो हमें इस धरातल की मिट्टी में एक चीज़ धुआँ के रूप में अवश्य ही दिखलाई देगी जो कि गर्म करने पर उड़ जाती है, यदि इस पर भी किसान-समुदाय विश्वास न करें, तो इस मिट्टी के वर्तन को आग पर से उतारें, और सब कोई अपनी अपनी मिट्टी को फिर से तौलें, और देखें कि इस मिट्टी का वज़न उतना ही है; जितना कि आग पर चढ़ाते समय था। तौलने पर अवश्य ही मिट्टी के वज़न में कमी होगी; यह बात भले ही हो सक्ती है, कि किसी की मिट्टी में ज़्यादा कमी हो गई हो, किसी कि मिट्टी में कम, क्योंकि सब लोगों की मिट्टी वज़न में पहिले बराबर चढ़ाई गई थी; इसमें सब से मार्के की बात यह है कि उसकी मिट्टी सबसे अधिक दुबारा तौलने में घट गई होगी, जिसकी कि बहुत ही गीली थी। भला, इनकी मिट्टी क्यों इतनी घट गई? और इन्हीं कि मिट्टी में अधिक 'धुआँ' के समान एक चीज़ भी देर तक निकलती हुई दिखाई दी थी।

किसानों ! यह पानी है, पानी जो कि गर्म करने पर धुआँ नहीं भाप की शकल में निकल कर अलग होगया है; गीली मिट्टी में पानी अधिक होता है, यह तो सभी जानते हैं, इसी वास्ते गीली मिट्टी का पानी गर्म करने पर भाप के रूप में निकल गया है, और वह सबसे अधिक वज़न में घट गई। इसी प्रकार सब की मिट्टियों में कुछ न कुछ घटी ज़रूर हो गई होगी, यह घटी सब की मिट्टियों में जो हो गई है, यह पानी के निकल जाने के कारण हुई है। इससे हम लोगों को मालूम हो गया कि धरातल की मिट्टियों में कुछ न कुछ पानी अवश्य ही होता है। यह बात दूसरी है, कि किसी जगह के धरातल की मिट्टी में कम पानी होता है, और किसी जगह कि मिट्टी में अधिक, इसका कारण यह है, कि यह भिन्नता ऋतु, भूमि तथा स्थान से हो जाया करती है। जैसे वर्षा में धरातल की मिट्टी में पानी अधिक होगा, गर्मी में कम, अथवा मटियार भूमि में पानी अधिक होगा, भूड़ में कम, तालाब की मिट्टी में पानी अधिक होगा, सड़क की मिट्टी में कम, इत्यादि, इत्यादि।

यदि हम इस एक चीज़ को देखने के बाद दूसरी चीज़ को भी देखना चाहें, तो हमको फिर इन दोबारा तौली हुई मिट्टियों को आग पर गर्म करना होगा, अब की बार गर्म करने पर हमें वास्तव में ही इन मिट्टियों से धुआँ निकलता हुआ दिखलाई पड़ेगा, और किसी किसी मिट्टी में तो कभी कभी लौ भी निकलने लगेगी, जो कि हमें साफ़ साफ़ दिखलाई पड़ेगी! यदि हम इस प्रकार इन मिट्टियों को दोबारा गर्म करके इनमें से दूसरी चीजों को

धुआँ अथवा लौ के रूप में जल कर निकल जाते हुये देख लें, तो हमारा मतलब सिद्ध हो जायगा, कि हमारे खेत के धरातल की मिट्टी में दूसरी चीज़ें भी थीं; यदि विश्वास न हो तो आग पर से बरतन को उतार कर तौल डालिये, और देख लीजिये ! कि मिट्टी का वज़न घट गया है या कि नहीं; यदि घट गया होगा तो हमारी बात ठीक है। तोलने पर सच में ही सब मिट्टियों का वज़न घटा हुआ मिलता है। इससे विश्वास हो जाता है, कि सच में यह दूसरी वस्तुयें लौ अथवा धुआँ के रूप में निकल गईं। इसका नाम वैज्ञानिकों ने 'जीवांश' ( organic matter ) दे रक्खा है।

इससे मालूम हुआ कि धरातल की मिट्टी में 'जीवांश' भी पाया जाता है, अच्छा भाई यह जीवांश क्या चीज़ है ? यह जीवांश वही चीज़ है, जिसे हम खाद-पाँस के रूप में खेतों में डालते रहते हैं। और जो जोतते २ ऐसा रूप धारण कर लेता है, कि हमको दिखलाई नहीं देता। धरातल की मिट्टी को जलाने पर लौ के रूप में दिखाई देता है। इस 'जीवाँश' में खाद-पाँस, गोबर, मल, मूत्र, वृक्षों की पत्तियाँ, डंठल इत्यादि सारी वस्तुयें आ जाती हैं। यह जीवांश ( organic matter ) भी सब धरातल की मिट्टियों में बराबर अंश में नहीं पाया जाता। किसी में कम और किसी में अधिक पाया जाता है। जैसे 'गोयँड़' की भूमि में अधिक पाया जायगा, और उन भूमियों में कम पाया जायगा जो कि गाँव से दूर है। और जिनमें खाद-पाँस बहुत कम डाली जाती है।

उल्लिखित वैज्ञानिक रीत्यानुसार जब हम अपने खेतों की मिट्टियों को जाँचते हैं; और इस जाँच से हमें पता चल जाता है, कि, हमारे खेत के धरातल की मिट्टी में अब तक की जाँच में दो बस्तुयें मिल चुकीं, (१) प्रथम तो पानी जो कि पहिली ही बार मिट्टी को गर्म करने से भाप के रूप में निकल गया। (२) दूसरे जीवाँश जो कि धुआँ और लौ के रूप में जल कर निकल गया, अब जो कुछ जलाने से शेष रह गया है, और जलाने से जल नहीं रहा है, और इसकी रंगत पहिले से बहुत कुछ बदल गई है। इस तीसरी चीज़ का नाम "खनिजाँश" है, जो कि अन्त में जलाते जलाते शेष रहा गया है। इसप्रकार उक्त प्रयोग से हम धरातल की मिट्टी में उक्त तीनों वस्तुओं को देख सक्ते हैं, अर्थात (१) जल (२) जीवाँश (३) खनिजाँश। यही तीनों चीज़े भिन्न भिन्न अंशों में हमारे खेत की मिट्टी में पाई जाती हैं।

प्रश्न हो सकता है? कि, यह तीनों चीज़े जो कि परीक्षण करके हमने देखा है, कहाँ से और किस प्रकार से धरातल की मिट्टी में आ जाती हैं? इस प्रश्न का उत्तर देना है तो, सच में "म्याऊं का ठौर"। परन्तु वैज्ञानिक रीतियों के द्वारा दिया जा सकता है। इसमें से पानी जो कि पहिले गर्म करने पर भाप की दशा में निकल गया है, वह सदैव मिट्टी में कुछ न कुछ अवश्य ही पाया जाता है, और पानी के भाग को मिट्टी स्वयं अपने गुण-धर्म्म से और जीवाँश के गुण-धर्म से हवा की नमी से खींच लिया करती है, ऋतुओं के कारण से तो पानी का परिमाण सदैव ही धरातल

की मिट्टी में घटता बढ़ता रहता है, परन्तु यह कभी भी नहीं कहा जा सक्ता कि मिट्टी में पानी होता ही नहीं, मिट्टी में पानी सदैव किसी न किसी दशा में अवश्य रहता है, और इन दशाओं का भी ज्ञान वैज्ञानिकों को है कि, पानी का भाग मिट्टी में किन २ दशाओं में पाया जाता है और उनके क्या क्या नाम हैं, जिसका संक्षेप में वर्णन निम्न-लिखित है।

धरातल में जो पानी पाया जाता है, वह कभी तो कम परिमाण में होता है, और कभी अधिक परिमाण में, इस बात को हम इस प्रकार से समझ सक्ते हैं; कि जैसे हम किसी खेत की सिंचाई करते हैं, तो हमारे खेत में पानी पहुँच कर पहिले मिट्टी की उपरी सतह के कणों के चारों ओर चिपक जाता है, जब मिट्टी के उपरी कण (ज़र्रे) पानी से तर हो जाते हैं, तो फिर पानी नीचे के ज़र्रों में प्रवेश कर के उनके चारों ओर लिपट जाता है। इसी प्रकार ऊपर का पानी जहां तक पहुँच सक्ता है, ऊपर से नीचे को पहुँचता चला जाता है। कुओं के खोदने पर हमें जो पानी प्राप्त होता है, वह पानी इसी प्रकार से वर्षा ऋतु में जाकर ज़मीन की उन नीची तहों पर रुक जाता है, कि जहां से वह अधिक नीचे छन तथा रिझ कर नहीं जा सक्ता है। इस प्रकार से धरातल की मिट्टी में जो पानी पाया जाता है, उसको हम, ऊपरी सतह का पानी कह सक्ते हैं; इसी पानी को अँगरेज़ी में 'सरफ़ेस-टेनशनल-वाटर' ( surface tentional water ) कहते हैं; इस दशा में पानी केवल धरातल की मिट्टी के उपरी कणों ( ज़र्रों ) के चारों ओर

झिल्ली के रूप में चिपका रहता है; परन्तु इन मिट्टी के ज़र्रों के बीच में ज़र्रों की गोलाई के कारण जो जगह रहती है, उसमें पानी नहीं रहता, क्योंकि पानी सिंचाई के द्वारा इतनी अधिक मात्रा (परिमाण) में नहीं मिलता कि उन कणो के बीच की जगहों में भर जावे; और रुक सके परन्तु जब पानी धरातल की मिट्टी को भरपूर परिमाण में मिलता है, जैसे बरसात में तो पानी मिट्टी के ज़र्रों के चारों ओर झिल्ली के रूप में चिपकने के सिवाय उन स्थानों में भी भरता जाता है, जो कि कणो की गोलाई के कारण उनके बीच में बन जाया करते हैं (इस प्रकार पानी भरता हुआ, पृथ्वी के भीतर किसी असोख सतह पर जा करके रुक जाता है) इस पानी का नाम अँगरेज़ी भाषा में वैज्ञानिकों ने "ग्रेवीटेन्शनलवाटर" (gravitentionalwater) दे रक्खा है, जिसे हम धरातल में भरा हुआ पानी कह सकते हैं।

इसमें एक और लीला यह है कि, जिस ज़र्रे का पानी सूख जाता है, और उसके पास वाले ज़र्रे में यदि पानी रहता है; तो ज़र्रा अपने पास वाले ज़र्रे से पानी खींच लिया करता है। इस प्रकार से पानी की यह खींचा—तानी ताप की कमी-वेशी के कारण सदैव लगी रहती है, धरातल के ऊपरी सतह के कणो में ही क्या नीचे की सतह के कणो में भी पानी नमी के रूप में सदैव झिल्ली की शकल में चिपटा रहता है, और इस दशा में चिपटा रहता है कि वह पास के सूखे कणो में भी जब नहीं जा सक्ता है, तो इस दशा में जो नमी पानी के रूप में पाई जाती है, उसे अंग्रेज़ी में

"हाइग्रास कोपिक म्वायस्चर" (Hygros copic moisture) कहते हैं—अर्थात स्थायी नमी, वह पानी है जो कि कभी भी ज़र्रों से नहीं निकल सकता है। इस प्रकार यह बात भली प्रकार से सिद्ध हो जाती है कि पानी का भाग किसी न किसी दशा में सदैव हमारे खेत के धरातल की मिट्टी में अवश्य ही पाया जाता है।

अब, रह गई 'जीवाँश' और खनिजाँश के खोजने की बात, कि यह दोनों वस्तुयें कहाँ से और किस प्रकार से हमारे खेत के धरातल की मिट्टी में आ जाती हैं। इस बात की खोज करने के लिये हमें किसी पहाड़ी देश में जाकर किसी ऐसे स्थान पर खोदना आरम्भ करना चाहिये, जहाँ कि ज़मीन कम गहरी हो, तो हमें ज्ञात होगा कि फावड़े की पहिली ही चोट से धरातल की मिट्टी खुद जाती है, और जब हम इस खुदी हुई मिट्टी में 'जीवाँश' की खोज करने लगते हैं, तो हमें इस मिट्टी के अन्दर पौधों की जड़ें दिखलाई पड़ती हैं। यदि इन जड़ों को ध्यान-पूर्वक देखें तो पता चलेगा, कि इन जड़ों में कुछ तो मुर्दा जड़ें हैं, और कुछ जिन्दा। इसके सिवाय इस मिट्टी में कीड़े-मकोड़ों के मुर्दे शरीर के भी बहुत से अवयव पाये जाँयगे, और बहुत से ऐसे जीवाणु ( Bacteria ) भी पाये जाते हैं, जिन्हें हम मानुषीय चक्षुओं से नहीं देख सकते। इसके सिवाय उस धरातल में पौधों की सूखी हुई पत्तियाँ, शाखें इत्यादि बहुत सी वस्तुयें दिखलाई पड़ेंगी, इन सब बातों के देखने से पता चलेगा कि धरातल पौधों और जानवरों की क़ब्र है, जो कि भूमि में प्राकृतिक नियमानुसार पाई जाती है।

इसके सिवाय और भी अनेकों प्रकार से हमारी भूमि के धरातल को "जीवाँश" मिला करता है। जैसे, खाद-पाँस के डालने से तथा जानवरों और आदमियों के द्वारा खेतों में मल-मूत्र करने से इसी प्रकार प्राकृतिक और कृत्रिम मार्गों से हमारे खेत के धरातल की मिट्टी में 'जीवाँश' आता रहता है, और कुछ कारणों से ऐसी दशा में परिवर्तित हो जाता है। कि धरातल की मिट्टी की परीक्षा करते समय आग पर गर्म करने से 'लौ' और 'धुआं' के रूप में दिखाई देता है।

उक्त निरीक्षण-परीक्षण के विवेचन से ज्ञात हुआ कि हमारे खेत के धरातल में पानी और जीवांश किन २ मार्गों से आते हैं, तथा किस किस दशा में पाये जाते हैं, और इनमें कितने कितने प्रकार की चीजें पाई जाती हैं। इन सब वस्तुओं की उचित विवेचना यहाँ पर यथोचित रीति से कर दी गयी। अब हम तीसरी चीज़ जो कि अन्त में 'खनिजांश' के नाम पर शेष रह जाती है, उस पर विचार करेंगे।

'खनिजांश' के ऊपर जब हम विचार करने लगते हैं, कि यह खनिजांश क्या वस्तु है ? कहाँ से और किस प्रकार से यह धरातल में आगया है ? इसमें क्या क्या चीज़ें पाई जाती हैं ? यह खनिजांश सदैव से ही इसी दशा में था, या कि कभी पहिले अन्य दशा में भी था।

जब हम 'खनिजांश' की उक्त बातों पर विचार करने लगते हैं। तो हमारी समझ में भ्रामक बातें आने लगती हैं; और हम उल-

झन में फँस जाते हैं। इस उलझन को वैज्ञानिकों ने सुलझा दिया है, कि धरातल का खनिजांश चट्टानों से आता है, जो कि चट्टानों सहित 'भूगर्भ-विज्ञान' का एक उपांग है। परन्तु, तो भी इस बात का पता देना कि धरातल का खनिजांश किन किन ख़ास ख़ास चट्टानों से आता है, अत्यन्त ही कठिन है। इन्हीं कारणो वश यह कहा जा सकता है, कि धरातल की मिट्टी का उपजाऊ अथवा उर्वरा होना भी उन्हीं चट्टानों के ऊपर निर्भर है, जिनसे कि वे बनी हुई हैं।

इन चट्टानों की ही बनावट में जो कुछ वस्तुयें पाई जाती हैं; वही वस्तुयें हमारे खेत के धरातल की मिट्टी में भी पाई जाती हैं। यदि इन चट्टानों की यह सब वस्तुयें ऐसी होती हैं, कि उनमें ऐसा पदार्थ पाया जाता है, जो कि हमारे पौधों के लिये उपयोगी होता है, तो इन्हीं के कारण हमारे खेत की धरातल वाली मिट्टी भी उर्वरा हो जाया करती है, यदि इसके विरुद्ध इन चट्टानों की वस्तुयें ऐसी होती हैं, कि इनके द्वारा पौधे भूमि से कोई भी पदार्थ भोजन के स्वरूप में ग्रहण नहीं कर सक्ते, तो यही ज़मीनें हमें बंजर के रूप में प्राप्त होती हैं, और इन ज़मीनों से हम किसी भी फ़सल से अन्न के रूप में कुछ नहीं प्राप्त कर सक्ते। अब हम समझ सक्ते हैं, कि इन चट्टानों के ही पदार्थ हमारे धरातल की भूमि के खनिजांश में पाये जाते हैं।

'खनिजांश' के मसले पर विचार करने से ज्ञात हुआ कि, खनिजांश के रूप में जो पदार्थ हमारे खेत के धरातल की मिट्टी में पाया जाता है, उसका घना सम्बन्ध उन चट्टानों से है, जो कि

क्योंकि इस "खनिजाँश" में जो 'द्रव्य' (चीज़) पाये जाते हैं, वही 'द्रव्य' हलों द्वारा निरन्तर जुताई करते रहने से ऐसी दशा में बदल जाते हैं, जो कि हमारी फ़सलों के पौधों को 'ख़ुराक' के रूप में मिला करते हैं, अर्थात् हमारी खेती की फ़सलों के तमाम पौधे बुवाई के पश्चात् जब उगकर बढ़ने लगते हैं, तभी से इन समग्र पदार्थों की वस्तुओं को ख़ुराक के रूप में खींचने लगते हैं; जो कि हमारे खेत के धरातल की मिट्टी में पाई जाती हैं; और ज्यों ज्यों बढ़ते जाते हैं, त्यों २ इन सारी वस्तुओं को खेत के धरातल की मिट्टी से भोजन के रूप में खींचकर अपने सारे अंगों में भरते जाते हैं। इनमें से कुछ वस्तुयें जड़ों में, कुछ डंठलों में, कुछ पत्तों में, कुछ फल-फूलों में जमा रहती हैं। जब हम इन पौधों के फल-फूलों को खाते हैं, तो यही चीज़ें हमारे शरीर में चली जाती हैं; और हमारे शरीर का भाग बन जाती हैं। इसी प्रकार सृष्टि का यह चक्कर सदैव चला करता है। यह प्राकृतिक है; इस पर किसी का अधिकार नहीं है।

मेरी इन बातों को बहुत से किसान तथा और भी लोग सुनकर और भी अचम्भे में पड़ जाँयगे कि सुनिये यह और एक नई बात, कि मिट्टी में जो, पानी, जीवांश, खनिजाँश इत्यादि पदार्थ पाये जाते हैं, वही पदार्थ हमारी खेती के पौधे धरातल की भूमि से खींचकर स्वयं भोजन करते हैं; और अपने पौधे रूपी शरीर में इन चीज़ों को बदल कर ऐसी दशा ( फल, फूल, प्रभृति ) में रखते हैं, कि उनको हम भोजन करके अपने शरीर का अंग बना लेते हैं,

और यदि इन चीज़ों को भोजन के रूप में हम न खायें तो हमारे शरीर के सारे अवयव भी स्यात् न बन सकें; वास्तव में है तो यह बड़े अचम्भे की बात!

पाठको! यदि यह आश्चर्य्य-जनक बात न होती, तो भला खाद, गोबर, पौधों की जड़ों, पत्तियों, मल, मूत्र इत्यादि की गणना वैज्ञानिक-संसार 'जीवांश' में क्यों करता? अस्तु, यह सब बातें तो विज्ञान की गूढ़गूढ़ बातें हैं, जिनका समुचित परिचय यहाँ पर करा देना दुर्लभ है; हम यहाँ पर अभी अपने 'खनिजांश' का ही निरीक्षण-परीक्षण करेंगे कि, इस खनिजांश में क्या क्या पदार्थ पाये जाते हैं, जो कि इस प्रकार से चक्कर लगाते हुये हमारे शरीर के अवयव बन जाते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि, हमारे खेत के धरातल की मिट्टी का सारा खनिजांश चट्टानों से आता है; और साथ ही साथ यह भी बतलाया नहीं जा सकता कि किन किन ख़ास ख़ास चट्टानों से यह खनिजांश हमारे खेत की मिट्टी में आया करता है। परन्तु इन समग्र बातों का वर्णन हम यहीं पर समाप्त कर के इस बात का भी थोड़ा सा वर्णन कर देना चाहते हैं, कि इन चट्टानों में क्या क्या पदार्थ पाये जाते हैं, जो कि अनेक सांसारिक-संघर्षण-शक्तियों के प्रकोप से परिवर्तित रूप में हमारी मिट्टी में "खनिजांश" के रूप में पाये जाते हैं। यहाँ पर यह भी बतला देना हम आवश्यक समझते हैं, कि इन सब बातों का ज्ञान हमें 'खनिजाँश' के रासायनिक वर्गीकरण (analysis) द्वारा ही हो सकता है, मिट्टी के

खनिजाँश में हम चट्टानों के इन तत्त्वों को 'व्यक्त' रूप में नहीं दे सकते, क्योंकि यह सारे पदार्थ परिवर्तित होते होते अपने असली स्वरूप से अत्यन्त ही भिन्न २ दशा में हो जाते हैं। यदि इन पदार्थों के इस स्वरूप को हम सांसारिक दृष्टि से धरातल की भूमि का "अव्यक्त" पदार्थ कहें तो कुछ अनुचित न होगा।

चट्टानों में जो खनिजांश के तत्व पाये जाते हैं, उनमें से कुछ ये हैं, जैसे सिलीका, पोटैश, सोडा, चूना, मैगनीशियम, अल्युमिना, लोहे के मिश्रण प्रभृति प्रभृति तत्व। इन तत्वों का कि, जिनका नाम उल्लेख किया गया है, वैज्ञानिकों ने चट्टानों का विश्लेषण करके जाँचा है, और उन्हीं की जाँचों के ऊपर वैज्ञानिक संसार विश्वास करता है, और हम लोग भी इन तत्वों को, चट्टानों के विश्लेषण के समय वैज्ञानिकों की सहायता से देख सकते हैं, अथवा किसी चट्टान के भाग का वर्गीकरण हम लोग भी इन वैज्ञानिकों की मदद से वैज्ञानिक प्रणालियों द्वारा कर सकते हैं। इन तत्वों के नामों को सुनकर लोग आपस में यह भ्रम पैदा कर सकते हैं, कि इन में से कुछ वस्तुओं का नाम तो हम लोगों ने कभी भी सुना नहीं था, यह नये नाम कहाँ से वैज्ञानिकों ने ढूँढ़ निकाले हैं, इनके विषय में हम यहाँ पर इतना ही कह देना आवश्यक समझते हैं, कि अर्वाचीन-काल में पश्चिमी वैज्ञानिकों ने रसायन-विज्ञान की प्रणालियों द्वारा जो सृष्टि के पदार्थों का विश्लेषण करके नये सिरे से जाँचा है, उन्हीं लोगों ने इन वस्तुओं का नाम भी नया नया रक्खा है, और अभी तक संसार के सब देशों का

वैज्ञानिक-समुदाय इन्हीं नामों का व्यवहार भी कर रहा है, अर्थात् समग्र देशों में अभी यही नाम व्यवहृत हो रहे हैं। क्योंकि इससे वैज्ञानिक-संसार को अपना कार्य्य संपादन करने में सुविधा भी हो रही है। जैसे "नाइट्रोजन" गैस का नाम चाहे जिस देश में ले लिया जाय तो लोग झट इस शब्द से परिचित हो जाँयगे। इन वैज्ञानिक-शब्दों का रूपान्तर हमारी राष्ट्र-भाषा हिन्दी में भी हो रहा है। परन्तु अभी वे शब्द न तो पूर्णरूप से भाषान्तर अथवा रूपान्तर होकर संपादित ही हो चुके हैं; न उनका चलन ही अभी साधारण भाषाओं में हो पाया है, उदाहरणार्थ "नाइट्रोजन" का रूपान्तर हिन्दी-भाषा में "नत्रजन" है। इसलिये हमने चट्टानों में पाये जाने वाले तत्त्वों का उल्लिखित नाम इसलिये दे रक्खा है, कि अभी वह वैज्ञानिक संसार में इसी नाम से पहिचाने जाते हैं, और हम लोगों को भी अभी इन्हीं नामों से सुविधा होगी, अस्तु।

इस बात का पता हम लोगों को चल गया कि, चट्टानों में उल्लिखित तत्त्व पाये जाते हैं, और यही तत्त्व हमारे खेत के धरातल की मिट्टी में भी पाये जाते हैं। पर इसके साथ ही साथ हमें यह भी जान लेना आवश्यक है, कि यह उल्लिखित पदार्थ सब चट्टानों में समान भाग में नहीं पाये जाते हैं; न यही सम्भव हो सकता है कि सभी चट्टानों में, चट्टानों पाये जाने वाले सारे तत्त्व ही पाये जाँय, क्योंकि यह सारी बातें चट्टानों की बनावट तथा अन्यान्य बातों पर निर्भर हैं। इससे ज्ञात हुआ कि चट्टानों में सारे पदार्थ कम-वेस परिमाण पाये जाते हैं; और जब ये ही पदार्थ चट्टानों के

टूट जाने से और अनेकों छीजन-शक्तियों ( weathering-agency ) द्वारा छीजते छीजते धरातल का रूप धारण कर लेते हैं। तो ऐसी दशा में परिवर्तित होकर हमारे धरातल की मिट्टी में पाये जाते हैं, जैसा कि पहिले चट्टानों में नहीं पाये जाते थे, और यह सारे "खनिजाँश" हमारे खेत की मिट्टी के पानी और 'जीवाँश' के संयोग से ऐसा गुण प्राप्त कर लेते हैं जो कि हमारी खेती के पौधों की ख़ुराक बन जाते हैं। यदि केवल इन्हीं खनिजाँश में ही बीज बो दिया जाय तो वह कभी भी नहीं उग सक्ता है, न फल ही फूल दे सक्ता है। इससे समझ लेना चाहिये कि केवल इन चट्टानों के खनिजाँश पर ही हमारे खेतों की मिट्टी की उत्तम-उर्वरता निर्भर नहीं है।

उसकी उत्तम-उर्वरता अधिकतर चट्टानों में पाये जाने वाले तत्वों पर निर्भर है, यदि इन चट्टानों में पाये जाने वाले तत्व ऐसे होंगे जो कि हमारे पौधों की ख़ुराक के काम आसकें। तो समझ लेना चाहिये कि उस चट्टान से बनी हुई धरातल की मिट्टी हमारी खेती के लिये उपयुक्त होगी, और जब इसमें, जल और जीवाँश का संयोग हो जायगा तो इस धरातल की मिट्टी में, 'सोने में सुहागा, वाली कहावत चरितार्थ हो सकेगी—अर्थात् चट्टानों के कृषि-उपयोगी तत्वों से और जल तथा जीवाँश के संयोग से ऐसी उत्तम "धरातल" बन जायगी, जो कि कृषि-कर्म्म के लिये अत्यन्त ही उर्वरा कही जायगी।

इस समय हमें अपने देश में ऐसे बहुत से भू-भाग देखने में आते हैं, जिसमें कृषि-कर्म्म नहीं किया जा सकता है, इससे यहाँ

पर यह बात सरलता-पूर्वक समझ में आ जाती है, कि उन भूमियों की बनावट ऐसी चट्टानों द्वारा हुई है, जिसमें कि ऐसे तत्व पाये जाते हैं। जो कि हमारे कृषि-सम्बन्धी पौधों के लिये अनुपयुक्त तथा हानिकारक हैं, और यह हानिकारक तत्व जल तथा जीवाँश के संयोग से भी ऐसे विषैले स्वरूप में अभी तक बने हुये हैं, कि यदि इन भू-भागों के धरातल पर हमारे खेती के पौधे उगाये जाँय, तो वह इन विषैले पदार्थों को भोजन के रूप में, भोजन करने से अपने जीवन के आरंभ में ही—अर्थात् बाल्यकाल में ही काल के ग्रास बन जाँयगे। ऐसी ज़मीनें वैज्ञानिक प्रयोगों से जाँचकर के कुछ वैज्ञानिक उपायों से सुधारी जा सकती हैं, और उनमें कृषि-कर्म्म भली भाँति किया भी जा सकता है, जैसा कि विदेशों में हो रहा है।

धरातल की मिट्टी में पाये जाने वाले 'खनिजाँश' के विषय में ऊपर इस रीति से विचार-पूर्वक वर्णन किया गया है कि, जिससे 'खनिजाँश' का विषय हमारे पाठक-गण सरलता-पूर्वक समझ सकें, यह खनिजाँश धरातल की मिट्टी में ९५ से लेकर ९८ प्रतिशत तक पाया जाता है—अर्थात् जैसे किसी मिट्टी के सौ भाग कर लिये जाँय, तो उसमें ९५ से लेकर ९८ भाग तक लगभग खनिजाँश का होगा. शेष भाग 'जीवाँश' का पाया जायगा, जो कि प्रायः हमारे खेत की मिट्टी को पौधों द्वारा तथा अन्य मार्गों द्वारा प्राप्त होता है; जिसका कि वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इन पौधों के विशेष विशेष भाग पानी के द्वारा निर्मित होते हैं। किसी किसी

पौधे में तो ९० प्रतिशत तक पानी पाया जाता है, यहाँ तक कि यदि परीक्षण किया जाय तो सूखी से सूखी लकड़ी में भी लगभग ५ प्रतिशत पानी अवश्य ही पाया जायगा।

घास के वर्ग के पौधों में पानी का अंश अधिक परिमाण में पाया जाता है, बहुत से घास के पौधों में तो पानी लगभग ७५ से ८५ प्रतिशत तक पाया जाता है, यह पानी का सारा अंश जो कि पौधों में पाया जाता है, इसके द्वारा पौधे भूमि से अपनी ख़ुराक ही ग्रहण करने में सहायता प्राप्त कर सकते हैं; अन्यथा अन्य और किसी भी प्रकार का लाभ इस पानी से हमारे खेत की मिट्टी तथा पौधों को नहीं होता है; क्योंकि यह पानी पौधों से सदैव सूर्य्य की उष्णता के कारण भाप बन कर वायुमण्डल में प्रवेश कर जाया करता है, इसी प्रकार इसका भी चक्कर सदैव चलता रहता है, इस कारण हम यहाँ पर पानी के विषय पर विस्तार पूर्वक विवेचन न कर के उन विषयों पर विवेचन करेंगे कि जिनसे हमारे खेत की मिट्टी को लाभ पहुँचता है।

यहाँ पर यह समझ लेना अत्यन्त ही आवश्यक है कि, हमारे खेत की मिट्टी को लाभ पहुँचाने वाले वही पदार्थ हो सकते हैं, जो कि हमारी खेती के पौधों के लिये लाभदायक हों, और हमारी खेती के पौधों में पाये जाँय, प्रश्न हो सकता है कि भला वे कौन २ पदार्थ हैं ? जो कि पौधों में पाये जाते हैं ? और पौधों के द्वारा "जीवांश" के रूप में हमारे खेत के धरातल की मिट्टी को प्राप्त होते हैं ? तथा हम इन्हें कैसे जान सकते हैं ? उक्त प्रश्नों की जान-

कारी के लिये हमें कुछ पौधों का भी विश्लेषण (analysis) करना पड़ेगा, तब कहीं हम यह जान सकेंगे, कि पौधों के द्वारा कौन कौन से पदार्थ हमारे खेत के धरातल की मिट्टी को प्राप्त होते हैं।

जब हम पौधों का विश्लेषण करने लगते हैं, तो सब से पहिले इस बात का ध्यान आ जाता है कि, हरे पौधे के विश्लेषण से हमें वास्तविक बात नहीं ज्ञात हो सकेगी, क्योंकि हरे पौधे में पानी का अंश अधिक पाया जाता है, जो कि धरातल की मिट्टी के लिये लाभ पहुँचाने की दृष्टि से किसी काम का नहीं है, इस लिये हमें सूखे पौधे का विश्लेषण करना चाहिये। जिससे हम अन्य पदार्थों को जान सकें, जब हम किसी सूखे पौधे को विश्लेषण की दृष्टि से जला देते हैं, तो पौधे का बहुत सा अंश जो जल कर राख हो जाता है, और बहुत सा अंश धुआँ तथा लौ इत्यादि के रूप में उड़कर वायुमंडल में प्रवेश कर जाता है, तो इस दृश्य को देखकर हम बड़े असमञ्जस में पड़ जाते हैं, कि पौधे को जला कर, चले तो उसका विश्लेषण करने, कि जिससे हमें मालूम हो जाय कि पौधे में क्या क्या पदार्थ पाये जाते हैं, जो कि धरातल की मिट्टी को पौधों के द्वारा मिला करते हैं।

परन्तु, उधर और ही गुल खिल उठा, वह गुल यह खिला कि, पौधा जल कर राख हो गया, और बहुत सा भाग उसका जल-कर धुआँ तथा लौ इत्यादि के रूप में वायुमंडल में मिल गया, इस कारण हमें कोई भी पदार्थ न दिखलाई पड़ा, सारा परिश्रम व्यर्थ

गया, अब क्या किया जाय ? इस स्थान पर हम यह बतला देना चाहते हैं, कि पौधे को जला कर और उसकी राख तथा वायुमंडल में प्रवेश करने वाले पदार्थों को देखकर वैज्ञानिक संसार अपना कार्य्य सिद्ध कर लेता है, और हम लोग असमंजस में पड़ जाते हैं।

पौधे को जला देने के पश्चात् जो राख बच रही है, वही वास्तव में धरातल की मिट्टी में मिलने वाला 'खनिजाँश' है, और शेष जीवाँश के तथा और अन्यान्य भाग थे, जो कि जलकर वायु-मंडल में प्रवेश कर गये, पौधे के जल जाने के पश्चात् जो राख शेष रह गई है, उसमें पोटैशियम, सोडियम, कैलशियम, सिली-कान, मैगनीज़ियम, फॉसफोरस इत्यादि तत्व पाये जाते हैं, जो कि चट्टानों से धरातल की मिट्टी को प्राप्त होते हैं। यहाँ पर हम यह भी बतला देना चाहते हैं, कि यह सारे पदार्थ अपने शुद्ध स्वरूप में पौधे में नहीं पाये जाते। यह सब तत्व मिश्रण के स्वरूप में पाये जाते हैं, और यह सब तत्व वैज्ञानिक रीत्यानुसार पृथक्करण करके देखे भी जा सकते हैं, उसी के आधार पर हमने ऊपर यह लिखा है, कि राख में उक्त तत्व पाये जाते हैं। संभव है बहुत से लोग कहें भला राख में हमें तो राख ही राख देख पड़ती है, यह चीज़ें कैसे इस में पाई जाती हैं, यह संभावना वैज्ञानिक-संसार के सम्मुख निर्मूल है। पौधे में राख का भाग लगभग २ से १० प्रतिशत तक पाया जाता है।

अब रह गई उन तत्वों के जानने कि बात, जो कि जल कर वायुमण्डल में प्रवेश कर जाते हैं, वायुमंडल में प्रवेश करने वाले

पदार्थों में कई एक तत्व पाये जाते हैं, इन तत्वों में से बहुत से तत्व तो, पौधे को वायुमण्डल से ही प्राप्त होते हैं, और बहुत से धरातल की मिट्टी द्वारा। अतएव, यह समझ लेना आवश्यक है कि जो तत्व पौधे को भूमि से ही प्राप्त हुआ करते हैं। वही तत्व पौधों द्वारा धरातल को मिलने से उसके लिये लाभकारी भी हुआ करते हैं। वायुमंडल में प्रवेश कर जाने वाले तत्त्वों में निम्न लिखित तत्त्व पाये जाते हैं।

कारबन, ऑक्सीजन; हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ये चारों तत्त्व गैस के नाम से पुकारे जाते हैं, इन चारों गैसों का ज्ञान विज्ञान द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, यह गैसें वायु के ही भाग हैं, इन गैसों को वायु का परिवार हम लोग कह सकते हैं, क्योंकि यह अधिकाँश में वायु से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं और सदैव वायुमंडल में इनका बास भी रहता है, जीवधारी पदार्थ अपनी शक्तियों द्वारा इनको अपने काम में लाया करते हैं। और काम निकाल कर त्याग दिया करते हैं। उक्त चारों गैसों के सिवाय, 'सलफर' और फॉसफोरस' ये दो तत्त्व और जलकर उड़ जाने वाले पदार्थों में पाये जाते हैं, ये तत्त्व ऐसे हैं जो कि हमारे खेत के धरातल की मिट्टी के लिये अत्यन्त ही आवश्यक हैं, यदि यह तत्त्व न पाये जाँय तो पौधा किसी भी तरह हमारी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता, ये तत्त्व जलकर यद्यपि वायुमंडल में मिल जाते हैं। तथापि इन्हें हम व्यक्त दशा में भी देख सकते हैं।

उक्त दोनों तत्त्वों का कुछ भाग तो जलकर वायुमंडल में प्रवेश

कर जाता है, और कुछ भाग जल कर राख के स्वरूप में भी परिवर्तित हो जाता है, ये दोनों तत्त्व मिट्टी के यदि प्राण-तत्त्व कहे जाँय तो मेरी उक्ति में स्यात् अशुद्ध न होगा; क्योंकि इन्हीं तत्त्वों से बने हुये बहुत से पदार्थ हम पौधों से ग्रहण करके अपनी आवश्यकता पूरी किया करते हैं, और वास्तव में ये तत्त्व कृषि-कार्य्य के लिये अत्यन्त ही आवश्यक हैं।

उपयुक्त पंक्तियों में भूमि के धरातल के सम्बन्ध में अनेकों बातें वर्णित की गई हैं, जिनका जानना अत्यन्त ही आवश्यक था, क्योंकि ये ही सारी बातें हमारी जुताई से घनिष्ट सम्बन्ध रखती हैं, और हम जुताई करके मिट्टी को इस प्रकार से कृषि के योग्य बना लेते हैं, कि जिससे हमारी खेती का सारा काम सुचारु रूप से चलता रहता है। किसानों के लिये मेरे विचार से यह बात अत्यन्त ही आवश्यक है, कि जैसे वह कृषि-कर्म सम्बन्धी अन्य बातों के बारे में खूब छान-बीन करके उनका ज्ञान प्राप्त किया करते हैं। उसी प्रकार उन्हें धरातल का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि यदि धरातल सम्बन्धी ज्ञान न प्राप्त करके हम नेत्र-बिहीनों की भाँति जुताई करते चले जाँयगे, तथा इस जुताई इत्यादि कर्म्म से अपना मतलब भी सिद्ध कर लिया करेंगे, तो भी हम वास्तविक लाभ न प्राप्त कर सकेंगे, क्योंकि हमारा ज्ञान अधूरा रहेगा, इसी कारण हम फल भी अधूरा ही पायेंगे, अतएव हमें चाहिये कि कि जैसे हम बीजों की उत्तमत्ता इत्यादि बातों पर परिपूर्ण रूप से ध्यान देते हैं, और भली प्रकार से जुताई करके खेतों को बोते

हैं। तत्पश्चात् सिँचाई, निकाई, गुड़ाई के सारे अंगों को आवश्यकतानुसार पूरा किया करते हैं। तब कहीं हम खेती से कुछ उपज प्राप्त कर सकते हैं। हमें यह कहने में कोई भी संकोच नहीं है-कि हमारे देश के किसान भूमि-सम्बन्धी ज्ञान में अभी बिल्कुल कोरे हैं, इसी कारण से वे पाश्चात्य देशों के किसानों की भाँति अपने इस व्यवसाय को उन्नतावस्था में नहीं पहुँचा सके।

इसी कारण हमें यह आवश्यक प्रतीत हो रहा है। कि प्रस्तुत पुस्तक में इस विषय के बारे में कम से कम इतना वर्णन अवश्य कर दिया जाय। जिससे हमारे देशवासी किसान तथा इस व्यवसाय के व्यवसायी भी इतना ज्ञान अवश्य ही प्राप्त करलें, जो कि उनके लिये अत्यन्तावश्यक है। इसी हेतु अब हम धरातल की मिट्टी के उस विषय का वर्णन करेंगे, जो कि उसके बनते समय उसमें हुआ करते हैं। यद्यपि यह विषय रसायन तथा भौतिक विज्ञान का एक अंग है, जिसका समुचित ज्ञान हम उक्त वैज्ञानिक अंगों के पूर्ण ज्ञान के बिना नहीं समझ सकते —तथापि तो भी हम अपने पाठकों को उन भौतिक और रासायनिक परिवर्तनों के विषय में जो कि धरातल के बनते समय हुआ करते हैं, सरल तथा सुबोध रीति से समझा देने की चेष्टा करूँगा। जिससे हमारा सारा मतलब सिद्ध हो जाय, और हम लोग धरातल सम्बन्धी कुछ ज्ञान प्राप्त कर लें, जो कि जुताई के विषय से घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं।

हमारे खेतों के धरातल की मिट्टी का इतिहास एक रहस्य-मय बात है, जिसका उचित तथा सच्चा ज्ञान प्राप्त करना असंभव सा

है, क्योंकि इस विषय में भिन्न भिन्न देश-वासियों ने अपने अपने प्राचीन धर्म्म के सिद्धान्तानुसार भिन्न २ मत रक्खे हैं। जिसके कारण सच्ची घटनाओं का पता नहीं चलता। परन्तु, वर्तमान-काल में वैज्ञानिकों का ही मत और सिद्धान्त सर्वमान्य हो रहा है, इस कारण उन्हीं के सिद्धान्तानुसार हम धरातल की बनावट के समय की कुछ बातों का विवेचन भी किये देते हैं।

जिस समय चट्टानों के टुकड़े टूट-टूट कर भौतिक परिवर्तनों के कारण धरातल के रूप में परिवर्तित होने लगते हैं, उस समय इन चट्टानों के पत्थर के टुकड़ों में बहुत से भौतिक-परिवर्तन होते हैं। जिसके कारण धरातल की मिट्टी हमें इस दशा में दृष्टि-गोचर होने लगती है। कि हम उसकी आदि दशा तथा असलियत को जान भी नहीं सकते। पत्थरों के ये सारे टुकड़े जो कि चट्टानों से भौतिक-शक्तियों द्वारा टूट-टूट कर विलग हो जाते हैं; छीजन-शक्तियों के कारण तथा जुताई के यन्त्रों के प्रभाव से टूट टूट करके बारीक़ होते रहते हैं; और अन्त में यहाँ तक बारीक़ हो जाते हैं। कि इस बात का पता ही नहीं चलता कि ये मिट्टी के कण किसी काल में किसी चट्टान के टुकड़े अथवा भाग थे। इस प्रकार के परिवर्तनों से परिवर्तित होकर बनी हुई मिट्टी के कण एकसां नहीं होते। किसी स्थान की मिट्टी के कण महीन होते हैं, और किसी स्थान की मिट्टी के कण मोटे। बहुत सी तबदीलियाँ धरातल की मिट्टी के रंग में भी हुआ करती हैं। यह परिवर्तन मिट्टी में 'जीवाँश' के

मिल जाने तथा काइन के करने से, और अनेकों स्थान को मिट्टियों के मिश्रण हो जाने से हुआ करते हैं।

इसी प्रकार धरातल की मिट्टी के बनते समय बहुत के रासायनिक परिवर्तन भी होते हैं, जिनकी समग्र बातें रसायन-विज्ञान की गूढ़-गूढ़ बातें हैं। परन्तु, उदाहरण के लिये समझ लेना चाहिये कि जैसे लोहे के बहुत से औज़ार हमारे खेत की मिट्टी में काम करते करते नष्ट हो जाते हैं; हम यही समझते हैं, और आपस में कहा भी करते हैं कि हमारे हल का 'फार' घिस गया; अब हमें दूसरा 'फार' लेना चाहिये। परन्तु, वास्तव में हल का 'फार' अथवा इसी प्रकार के अन्य लोहे के औज़ार मिट्टी में काम करते करते घिस नहीं जाते। वरन् इन लोहे के औज़ारों में तथा धरातल की मिट्टी में रासायनिक-परिवर्तन होता रहता है, और लोहे के ये औज़ार इस परिवर्तन के कारण परिवर्तित होकर धरातल की मिट्टी के भाग बनते रहते हैं; और हमारी खेती के पौधों के लिये ख़ूराक़ का काम देते हैं।

इसी प्रकार अन्य सारी उन चीज़ों में जो कि लोहे की भाँति धरातल की मिट्टी में काम करते रहते हैं—अथवा धरातल की मिट्टी में पाये जाते हैं, उनमें भी धरातल के कारण से रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं, और इन्हीं परिवर्तनों के होते रहने से—अथवा होजाने से हमारे खेत की धरातल वाली मिट्टी बना करती है। ये सारे रासायनिक-परिवर्तन जो कि धरातल के बनते समय होते हैं या हुआ करते हैं। कृषि के लिहाज़ से बड़े उपयोगी कार्य्य हैं, इनका

होना बहुत ही आवश्यक है, ये सारे परिवर्तन काश्त के करते रहने से सदैव हुआ करते हैं, और इनका होना बहुत कुछ ऋतुओं के ऊपर भी निर्भर है; जिसका यथोचित विवेचन जुताई के वर्णन के साथ आगे किया जायगा।

अब हम यहाँ पर इतना और बतला देना चाहते हैं। कि धरातलों के साधारणतया दो विभाग किये गये हैं। एक विभाग में तो वे सारे धरातल आ जाया करते हैं, जो कि आदि काल में जहाँ-कहीं बने थे, वहीं पर रह गये, वे किसी मार्ग से भी अपने आदि स्थान से हट न सके। ऐसे धरातलों को हम स्थानीय-धरातल कहते हैं। इसी को अंगरेजी-भाषा में 'सेडेनेटरी-स्वायल' ( sedentary soil ) कहते हैं। ऐसी ज़मीनें अधिकतर पहाड़ों पर पाई जाती हैं, और पहाड़ी देश-वासी किसान इन भूमियों में कृषि-कर्म्म किया करते हैं।

जिन धरातलों में हम लोग कृषि किया करते हैं, यह वह धरातल हैं, जो कि अन्य स्थानों से अनेकों मार्गों द्वारा इस स्थान पर आकर के स्थायी हो गये हैं—अर्थात ऐसी ज़मीनों के धरातलों ने अपने आदि स्थान को त्याग दिया है, ऐसे धरातलों को अस्थानीय-धरातल (Transportedsoil) कहते हैं। ऐसी ज़मीनें प्रायः देश के समग्रा भागों में पाई जाती हैं। देश के मैदानी भाग में तो ऐसी ही ज़मीनों के धरातल पाये जाते हैं, ऐसी ज़मीनों के धरातलों में कृषि-कर्म्म स्थानीय-धरातलों की अपेक्षा उत्तम रीति से किया जाता है। क्योंकि ये धरातल अधिकतर उपजाऊ होते हैं, इसका

कारण यह है। कि ऐसे धरातलों की मिट्टियाँ पहाड़ों से नदियों के द्वारा तथा अन्य बहुत से मार्गों द्वारा सहस्त्रों मील दूर के देशों से आकर यहां पर धरातल के काम में आने लगती हैं, तो इनमें अनेकों प्रकार के परिवर्तनों के कारण उर्वरा—शक्ति आ जाती है।

प्रस्तुत पुस्तक के पाठकों की जानकारी के हेतु हम इन दोनों प्रकार के धरातलों के विषय में तुलनात्मक दृष्टि से निम्न-लिखित सारिणी में कुछ आवश्यक बातों का वर्णन किये देते हैं, जिससे हमारे पाठकगण भली भाँति इन धरातलों के अन्तर को समझ सकेंगे।

## स्थानीयधरातल

१—अपने आदि स्थान को नहीं त्यागते।
२—रंगत स्थानीय चट्टान के सदृश होती है।
३—कम उपजाऊ होती हैं।
४—इनमें जीवांश कम पाया जाता है।
५—पानी सोखने की शक्ति कम होती है।
६—अधिकतर धरातल की मिट्टी के कण बड़े होते हैं।
७—धरातल उथला होता है।
८—ऐसे धरातलों की मिट्टी हलकी होती है।
९—तौल के अनुसार भारी होती है।
१०—फ़सलें शीघ्र पकती हैं।

## अस्थानीय धरातल

१—अपने आदि स्थान को त्याग देते हैं।

२—रंगत भिन्न भिन्न प्रकार की मिट्टियों के मिलने से बदल जाती है।

३—अधिक उपजाऊ होती हैं।

४—जीवांश अधिक पाया जाता है।

५—पानी अधिकांश में सोख सकती हैं।

६—कण महीन होते हैं।

७—धरातल गहिरा होता है।

८—ऐसे धरातलों की मिट्टी अधिकतर भारी होती है।

९—तौल के अनुसार हलकी होती है।

१०—फ़सलें देर में पकती हैं।

उल्लिखित भेद उपर्युक्त प्रकार के धरातलों की मिट्टी में पाये जाते हैं।

इसके सिवाय प्रत्येक स्थानों के धरातल की मिट्टी में बहुत ही अन्तर पाया जाता है। यह अन्तर देश-कालानुसार हुआ करता है। हमारे ही देश भारतवर्ष में बहुत से प्रकार के धरातल पाये जाते हैं; और इन धरातलों की मिट्टियों में बहुत ही अन्तर पाया जाता है। इसके कारण उन स्थानों में इनके स्थानीय नाम भी हो गये हैं, वैज्ञानिकों ने इनके इन स्थानीय नामों से ही इन्हें सम्बोधित किया है। जैसे, मदरास में कुछ भू-भाग ऐसा पाया जाता है, जिसका कि धरातल काला है, इन भू-भागों को मदरासी भाषा में "रेगर" के नाम से पुकारते हैं।

परन्तु, ये धरातल काली ज़मीनों के नाम से भी पुकारे जाते हैं।

इन ज़मीनों में कपास की कृषि बहुत अच्छी होती है, तथा अधिक उपज भी देती है, इस कारण इन्हें कपास-वाली ज़मीनें भी कहते हैं। मदरास की इस काली भूमि की बनावट के विषय में अभी तक संसार के भूगर्भ-वैज्ञानिकों ने कोई एक मत निश्चित नहीं किया है, जिस पर हम लोग सत्यता की दृष्टि से आरूढ़ हो सकें। इसकी बनावट के विषय में भिन्न भिन्न भूगर्भ-वैज्ञानिकों के भिन्न भिन्न मत हैं। जिसका जानना हम लोगों के लिये आवश्यक भी नहीं मालूम हो रहा है, केवल इतना ही जान लेना परिपूर्ण होगा। कि इस प्रकार के धरातल की भूमि हमारे ही देश मदरास में पाई जाती है। इसी प्रकार संसार के हरेक देशों की भूमि के धरातलों में बहुत ही अन्तर पाया जाता है। परन्तु, जुताई इत्यादि कर्म्म करके कृषि-कर्म्म सब में किया जा सक्ता है।

इसके सिवाय संयुक्त-प्रान्त के बुन्देलखण्ड में बहुत से भू-भाग में लाल क़िस्म की ज़मीनें पाई जाती हैं। जिनका धरातल तथा धरातल की मिट्टी भी लाल रंग की होती है। जिसे सुनकर हमारे देशवासी आश्चर्य्य मानेंग। कि भला "लाल भूमि" कैसी ? इसमें कृषि कैसे हो सक्ती है ? इसके विषय में हम इतना ही बतला देना चाहते हैं। कि यह लाल ज़मीनें दक्षिण में बुन्देलखंड के ही भाग से पाई जाने लगती हैं, और भारतवर्ष के दक्षिणी भाग में बहुतायत से पाई जाती हैं, इसमें भी धरातल को ख़ूब जोतकर तथा अन्य प्रकार के समग्र कृषि-कार्य्य करके कृषि-कर्म्म किया जाता है।

इन ज़मीनों की भी बनावट का बड़ा रहस्य है, और यह सारी बातें भूगर्भ-विज्ञान से घना सम्बन्ध रखती हैं, इनके विषय में इतना ही जान लेना पर्य्याप्त होगा। कि यह भू-भाग जिस चट्टान से बने हैं। वह आदि काल से ही लाल रंग के थे। इस कारण इन चट्टानों से बनने वाली धरातल की मिट्टी भी लाल रंग की है; इनमें बालू का भाग अधिक पाया जाता है। ये भू-भाग अधिकतर "मैटामारफ़िक" चट्टान से बने हुये कहे जाते हैं। क्योंकि इस प्रकार की चट्टाने स्वंय सुर्खी-मायल होती हैं। कृषि-कर्म्म के विचार से ये भू-भाग उपजाऊ नहीं होते। इन भू-भागों के धरातलों की मिट्टी अधिकतर स्थानीय हुआ करती है, स्यात् इसी कारण वश, उनका रंग परिवर्तित नहीं होपाता, और वे कृषि-कर्म्म की दृष्टि से उपजाऊ नहीं होतीं।

इस प्रकार से धरातल सम्वन्धी बहुत सी बातों का वर्णन किया जा चुका। जिससे यह बात भली भांति मालूम हो गई। कि जुताई के विषय से और धरातल के विषय से कितना घना सम्बन्ध है। इसका मुख्य कारण यह है। कि अगले सफ़हों में जिन विषयों का वर्णन किया जायगा, वे सब हमारे खेतों के धरातल की मिट्टी से सम्बन्ध रखने वाले होंगे, यहां तक कि जब कृषि-यन्त्रों का वर्णन आयेगा, तो उसमें भी धरातल सम्बन्धी ही बहुत सी बातों के जानने की आवश्यकता पड़ेगी। इसी कारण वश मैंने धरातल सम्बन्धी आवश्यक बातों का वर्णन प्रस्तुत पुस्तक के धरातल तथा गर्भतल के अध्याय में कर दिया है, परन्तु तो भी अभी

'गर्भतल' का विषय शेष ही रह गया है, अब हम गर्भतल सम्बन्धी कुछ विषयों का वर्णन करेंगे।

गर्भतल का ज़िक्र कई बार आचुका है। परन्तु, इसका उचित विवेचन जिसका कि हमारी जुताई से सम्बन्ध है, अभी नहीं किया गया। गर्भतल को अंगरेज़ी भाषा में 'सब स्वायल' (subsoil) कहते हैं, यह धरातल के नीचे भाग में पाया जाता है—अर्थात गर्भतल पृथ्वी का वह भाग है, जो कि धरातल (soil) के नीचे पाया जाता है; और जिसमें कृषि-सम्बन्धी देशीय-यन्त्र हल इत्यादि अपना कार्य्य नहीं कर सकते। भूमि के धरातल के ही भाग में अधिकतर हमारे सारे खेती के देशीय औज़ार काम कर सक्ते हैं, और इसी धरातल में ही खेती के पौधे उगा करते हैं, इसी में से ख़ूराक़ ग्रहण करके बढ़ते तथा फूलते-फलते हैं। इस कारण भूमि का धरातल हमेशा कृषि-कर्म्म के द्वारा निर्बल होता रहता है। यदि कृत्रिम उपायों द्वारा सबल न बनाया जाय; तो बहुत ही निर्बल हो जाता है, जिसमें कृषि-कार्य्य उत्तम रीति से तथा पूर्ण-लाभ के द्वारा नहीं किया जा सकता। हम लोग धरातलकी इस निर्बलता को दूर करने के ही लिये खेतों के धरातल में खाद-पाँस डाला करते हैं, और उसकी ख़ूब जुताई किया करते हैं, जिससे धरातल की निर्बलता दूर हो जाय, और हमारी फ़सलों की उपज में कमी न पड़े।

अपने खेतों के धरातल को तो हम सदैव इस प्रकार से उर्वरा बनाने का प्रयत्न किया करते हैं। परन्तु, गर्भतल को जिसमें कि पौधों के लिये इतना सामान मौजूद है। कि चाहे पौधे उससे बरा-

वर ख़ूराक़ ग्रहण करते रहें; तो भी वह निर्बल नहीं हो सकता। उसकी जुताई करके उस गर्भतल की ख़ुराक़ को हम पौधों के लिये उपयोगी बनाने का प्रयत्न नहीं करते। यदि हमारे देशवासी किसान भी गर्भतल की जुताई करके धरातल और गर्भतल की मिट्टी का मिश्रण वर्ष में दो तीन बार भी कर दिया करें, तो कहना ही क्या है ? उन्हें केवल जुताई ही द्वारा इतना भोजन-सामान पौधों के लिये एकत्रित हो जाया करे। कि उन्हें खाद-पाँस के अधिक जुहाने की कोई आवश्यकता ही न पड़े। न धरातल को उर्वरा बनाने के लिये अन्य दूसरा ही कोई व्यय-साध्य प्रयत्न करना पड़े।

पृथ्वी के गर्भतल में फ़सलों के पौधों के लिये इतनी ख़ूराक़ खनिजांश के रूप में तथा अन्य रूपों में मौजूद है। कि जिसका अनुमान करना अत्यन्त ही कठिन है। हमारे देश भारतवर्ष में तो किसानों द्वारा अभी गर्भतल कृषि-कर्म के व्यवहार तथा प्रयोग में लाया ही नहीं गया। प्राचीन-काल से आज तक केवल भूमि के धरातल में ही कृषि-कर्म्म होता चला आ रहा है। भारत-भूमि का गर्भतल अभी अनूठा ही पड़ा हुआ है। इसका प्रधान कारण तो हमें यही ज्ञात होता है। कि भारत-भूमि सृष्टि में सब से उर्वरा थी. भारतीय किसानों ने अपने मामूली हलों से दो-तीन-चार इञ्च गहिरी जुताई करके जहां पर बीज बो दिया, वहीं पर उनकी आवश्यकता के लिये पूर्ण-रूप से पैदावार हो गई, उनका सारा कार्य्य सिद्ध हो गया, तो भला उन्हें क्या पड़ी थी ? कि पूर्ण-रूप से धरातल को ही जोतें ? तथा उसे उर्वरा बनावें, गर्भतल की तो कौन कहे ?

स्यात् भारत-भूमि की इसी उर्वरा-शक्ति के ही कारण प्राचीन-कृषि-वैज्ञानिकों ने ऐसे हलों के बनाने की आवश्यकता नहीं समझी। जो कि आजकल के वैज्ञानिक-कृषि-यन्त्रों की भाँति गर्भतल को खोदकर धरातल की मिट्टी में मिला दें। क्योंकि जब उन्हें धरातल की ही मामूली जुताई कर देने से इतना धन-धान्य प्राप्त हो जाया करता था। कि समस्त भारत-देश को खाने-पीने के अतिरिक्त लाखों मन वच रहता था, जो कि याज्ञिक-काल में हवन तथा यज्ञों में होम दिया जाता था। तो उन्हें भला! क्या आवश्यकता थी? कि भूमि के गर्भतल को भी खोदकर उससे भी धन-धान्य पैदा करते? न उस काल में आजकल की भांति भारत से तथा अन्य संसार के सब देशों से इतना घना सम्बन्ध ही था, जैसा कि आजकल है। इसी सम्बन्ध के न होने से कोई व्यावसायिक-होड़ भी भारत को अन्य देशों से नहीं करना पड़ता था। कि जिसके कारण उन्हें अपने कृषि-व्यवसाय की रक्षा के हेतु, अन्य देशों की भांति कृषि-यन्त्रों के नूतन आविष्कार करने की आवश्यकता पड़ती?

यही क्यों? उस काल में आधुनिक-वैज्ञानिक पद्धतियों की सहायता से संसार को इतनी सुविधायें भी नहीं प्राप्त थीं। कि एक जगह का सारा माल अन्य दूसरी जगह सरलता-पूर्वक थोड़े व्यय से आ जा सके। केवल भारत में ही जब किसी स्थान में काल पड़ जाता था। तो उस स्थान में अन्न का भेजना लोगों के लिये दुर्लभ हो जाता था। दूसरे देशों की कौन कहे? उस काल में जो सामुद्रिक-

व्यापार के मार्ग थे। वे अत्यन्त भयावह और अपूर्ण थे। उस काल में केवल नावों द्वारा भारत से और अन्य सामुद्रिक-देशों से व्यापार का सम्बन्ध था; तो कैसे हमारे देश का अन्न, अन्य देशों में जाकर सस्ते मूल्य बिक सकता था?

उस काल में सब देशों की यही दशा थी। परन्तु, आजकल वे सारी बातें स्वप्नवत् हो गई हैं। व्यावसायिक उन्नति के लिये वैज्ञानिक पद्धतियों के द्वारा रेलों और जहाज़ों ने सारी कठिनाइयां दूर कर दीं। वर्तमान-काल में व्यावसायिक-क्षेत्र अत्यन्त विस्तीर्ण होगया है। बेतार के तार द्वारा प्रत्येक देश के व्यवसाइयों को, एक दूसरे देश का भाव-ताव बात की बात में मिल रहा है। मौक़ा पाते ही जिस सामान की ज़रूरत होती है। इशारों से बात-चीत करके समझ लिया जाता है; और विदेशी कम्पनियों के एजंट झट से माल को ख़रीद कर के रेलों तथा जहाज़ों के द्वारा दूसरे देशों को भेज देते हैं; और सारे देशों में ग़ल्ले का भाव एक हो जाता है।

इन सब कारणो से अब हम लोगों को भी अपने पुराने मार्गों को त्याग देना चाहिये, और नये मार्गों का अनुसरण करना चाहिये, विदेशों में और प्रायः सभी वैज्ञानिक-माहिमा से परिचित देशों में वहां के किसानों द्वारा गर्भतल उलट-पुलट कर जोत डाला जाता है; और उसमें का भोजन-पदार्थ इस दशा में परिवर्तित कर दिया जाता है। कि जिससे फ़सलों के पौधे उससे ख़ूराक़ हासिल कर लिया करें; इसी कारण विदेशों में गर्भतल को जोतने के

लिये "सबस्वायलर" इत्यादि यंत्र आविष्कृत किये गये हैं; विदेशी अपने देश की भूमि के गर्भतल को वैज्ञानिक कृषि-यन्त्रों की सहायता से जोतकर अपने काम में ला रहे हैं; और भरपूर लाभ प्राप्त करके अन्य देश के कृषि-व्यवसायियों के माल के भाव को बाजारों में गिरा कर उन्हें घाटा दिला रहे हैं।

अब वह दिन आगया। कि हम लोग भी गर्भतल के मूल्य को समझें, और उसे वैज्ञानिक-हलों से जोत कर के कृषि के योग्य बनावें। क्योंकि भारत-भूमिका धरातल कृषि-व्यवसाय के आरम्भ काल से ही जोतते जोतते, तथा उससे फ़सलों द्वारा उपज के रूप में धन-धान्य प्राप्त करते करते अब वह निर्बल हो गया है। उसमें अब इतनी शक्ति नहीं रह गई हैं। कि वह अपनी इस वृद्धावस्था में प्राचीन-काल की भांति हमारी आधुनिक आवश्यकताओं को पूरा कर सके। वह अपनी इस निर्बलता का परिचय हमें वहुत दिनों से देता चला आरहा है, कि हम अब निर्वल हो गये हैं, हममें शक्ति नहीं रह गई। कि हम आप को पूरी पैदावार दे सकें, जिससे आपका पेट भर सके, इस वृद्धावस्था में क्यों हमारी हड्डी और चमड़ी को दुह रहे हो? यदि तुम अज्ञानता वश हमें खाद पांस-रूपी खूराक दिये जाओगे। तो हम भी खा पीकर कुछ न कुछ तुम्हें भी दिये ही जांयगे।

किसानों! अब भारत-भूमि का धरातल सहस्रों वर्ष से खेती करते करते निर्वल हो गया है। उसमें अब इतनी दम नहीं रह गई है। कि अब वह अपने वल पर आप की वर्तमान और भावी

आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके, यह हमारी भूमि के धरातल की ही निर्बलता का कारण है। कि दिनों-दिन हमारी कृषि की उपज में कमी होती चली जा रही है; पहिले की भांति चाहे हम कितना ही परिश्रम करके क्यों न जोतें बोयें? पहिले की भांति अन्न नहीं उत्पन्न होता? न पहिले की भांति हमारी कृषि सम्बन्धी फ़सलें ही खेतों में उगकर अपनी प्राचीन दशा का परिचय देती हैं-अर्थात् दिनों-दिन खेती की उपज घटती चली जा रही है; और हमें कुछ भी सूझ नहीं पड़ रहा है। कि क्यों हमारी खेती की उपज में कमी होती चली जारही है?

उल्लिखित सारी बातों के विवेचन से हमारे पाठक! समझ गये होंगे। कि वर्तमान-काल में कृषि-व्यवसाय की दृष्टि से भूमि का गर्भतल कृषि-कर्म्म के लिये कितना उपयोगी और आवश्यक अंग होगया है; और जब तक हम इस 'गर्भतल' को अपने कृषि कर्म्मों के व्यवहार में न लावेंगे। तब तक वास्तविक उपज भी नहीं प्राप्त कर सकेंगे। न वर्तमान-कालीन कृषि व्यवसाय की बाज़ार में हम अपनी उपज के बल पर अपना सौदा ही उत्तम दिखा कर वेंच सकेंगे। क्योंकि हमारे खेतों का धरातल बहुत दिनों से कृषि करते करते कमज़ोर होगया है, उसका सारा खनिजाँश वाला भाग फ़सलों के पौधों ने भोजन के रूप में ग्रहण कर लिया है; और जब वे परिवर्तित रूप में किसी प्रकार से हमारे खेत के धरातल में पहुँचते हैं। तभी हमारे खेत के धरातल को ये सब पदार्थ प्राप्त होते हैं; तथा उन्हीं के बल पर आजकल, हमारे खेत के धरातल

उपज दे रहे हैं, और इस निर्बलता के ही कारण वे पूरी पैदावार नहीं दे सकते। क्योंकि उनके पास पूर्ण पैदावार देने का सामान तो है ही नहीं।

खेत के गर्भतल में सदैव से ही बहुत से ऐसे पदार्थ मौजूद हैं; जो कि कृषि के लिये अत्यन्त ही लाभदायक हैं; और यदि उनका प्रयोग किया जाय, तो अच्छी पैदावार भी मिल सकती है। परन्तु, अभी तक हमारे देशवासी किसानों ने, न तो भूमि के गर्भ-तल को कृषि-कर्म्म के प्रयोग में व्यावहारिक दृष्टि लाया ही है, न निकट भविष्य में गर्भतल के द्वारा कृषि की उन्नति करने का कोई चिन्ह ही दृष्टि-गोचर हो रहा है। इससे हम लोगों को बतला देना चाहते है। कि अब मौक़ा चूकने का नहीं हैं। चाहे आप वैज्ञानिक कृषि यन्त्रों का व्यवहार करके खेत के गर्भतल की जुताई करके उसे कृषि-कर्म्म के लिये उपयोगी बनाइये। चाहे अपने ही हलों तथा अन्य औज़ारों को इस प्रकार से सुधार लीजिये। कि आप अपने खेत के गर्भतल की मिट्टी को भी कृषि के काम में ला सकें।

बहुत से किसान यह प्रश्न अपने मस्तिष्क में उत्पन्न कर सकते हैं, और साधारणतया गर्भतल के विषय अध्ययन से ऐसे ऐसे अनेकों प्रश्न उन लोगों के मस्तिष्क में उठ भी सक्ते हैं। जो कि 'गर्भतल' का कभी नाम भी न सुना होगा। कि गर्भतल क्या वस्तु है? और उसमें क्या क्या खास बातें हैं? जो कि हमारी कृषि के लिये अत्यन्त ही उपयोगी हैं? जिसके कि विषय में इतना तूल-तवील माजरा ऊपर बयान किया गया है। इन्हीं

प्रश्नों के उत्तर के सम्बन्ध में हम गर्भतल सम्बंधी अन्यान्य आव-श्यक बातों का उचित विवेचन किये देते हैं। जिससे हमारे पाठक! सरलता-पूर्वक गर्भतल के विषय को भी भली भांति समझ सकें।

गर्भतल भी धरातल की भांति हमारे खेतों की मिट्टी का एक भाग है। जो कि धरातल के नीचे पाया जाता है इस सम्बन्ध में यदि यह कह दिया जाय। कि हमारे खेतों की मिट्टी लगभग बारह इञ्च के धरातल के नाम से कही जा सकती है। क्योंकि इसी गह-राई तक प्रायः हमारे देशी हल इत्यादि सारे कृषि-यन्त्र खेतों में काम कर सकते हैं। इस बारह इञ्च के पश्चात हम अपने खेत के गर्भ-तल वाले भाग में पहुँचते हैं, और बारह इञ्च के पश्चात हमें जैसी मिट्टी मिलती है। उस मिट्टी की तह जितनी गहराई तक भूमि के अन्दर मिलती जाय। वहाँ तक हम गर्भतल की गहराई कह सकते हैं। इस गर्भतल की मिट्टी और तह के समान जब कहीं भूमि के भीतर मिट्टी और तह न मिले—अर्थात जिस गहराई से गर्भतल की मिट्टी और तह में अन्तर दिखलाई पड़े, वहीं से भूमि की दूसरी-सतह समझना चाहिये। इन कारणों से गर्भतल की गहराई के विषय में धरातल की गहराई की भाँति कोई भी ठीक तथा निय-मित बात नहीं कही जा सकती। कि हमारे खेतों का गर्भतल इतना गहरा होगा। इससे सिद्ध हुआ कि भिन्न-भिन्न खेतों के गर्भतलों की गहराई में बहुत ही अन्तर होता है।

यदि हमें इस विषय की परीक्षा करनी हो, तो हमें किसी स्थान की मिट्टी को फावड़े से खोदना चाहिये, खोदने से फावड़े

की पहिली ही चोट से अथवा दूसरी चोट से लगभग सारा धरातल खुद जायगा; और इसमें जीवांश का ही अधिक भाग पाया जायगा; जिसका कि उल्लेख हम धरातल के परीक्षण के समय कर आये हैं। यदि हम अपनी खुदाई जारी रक्खें, तो हम फावड़े की कुछ ही चोटों के पश्चात् देखेंगे कि धरातल की रंगत अब पहिले से बदल रही है; और उसके साथ ही साथ जीवांश की मात्रा भी घटती जा रही है। इसी स्थान से गर्भतल का आरम्भ होता है, और जबतक-अथवा जिस गहराई तक गर्भतल के ही सदृश मिट्टी मिलती जायगी। उसी गहराई तक गर्भतल कहा जा सकता है। गर्भतल की गहराई के पश्चात् कहीं कहीं बालू की, कहीं पत्थर की-अथवा इसी प्रकार की अन्य तहें भूमि के अन्दर मिल जाया करती हैं।

उपर्युक्त उल्लेख से 'गर्भतल' सम्बन्धी बातों का परीक्षण करके हम गर्भतल की गहराई की जांच कर सकते हैं। इस जांच के पश्चात् और भी बहुत सी ऐसी आवश्यक बातें हैं; जिनका जानना हमें आवश्यक है। अब हम गर्भतल की और धरातल की अलोचनात्मक दृष्टि से तुलना करके दोनों का अन्तर पाठकों को दिखा देंगे। कि कौन कौन सी बातें अथवा पदार्थ हमारे खेतों के गर्भतल में ऐसे हैं। जो कि धरातल में नहीं पाए जाते; और जिन्हें जुताई इत्यादि कर्म्म करके धरातल में मिला देने की आवश्यकता है, तथा कौन-कौन से पदार्थ हमारे खेत के धरातल में गर्भतल से अधिक पाये जाते हैं, तथा हमारे खेत का

धरातल क्यों गर्भतल से अधिक उपयोगी और आवश्यक है ?

जब हम धरातल तथा गर्भतल की बनावट पर तथा अन्यान्य उन सारी बातों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने लगते हैं। जो कि हमारी कृषि के लिये अत्यन्त ही लाभदायक हैं। तो इन दोनों में हम बहुत ही अन्तर पाते हैं। सब से प्रथम तो हमारे खेतों के धरातल पर उन सारी भौतिक-शक्तियों का सदैव आघात-प्रघात होता रहता है, और इन शक्तियों के आघात-प्रघात के कारण हमारे खेत के धरातल में बहुत से परिवर्तन होते रहते हैं जिसके कारण खेत का धरातल जुताई इत्यादि करने से कृषि के लिये अत्यन्त ही उपयोगी हो जाता है। जैसे खेत के धरातल पर सूर्य्य की ऊष्णता ( ताप ) का जितना प्रभाव सदैव पड़ता रहता है, तथा इस उष्णता के प्रभाव से खेत का धरातल जितना खेती के लिये उपयुक्त हो जाता है। उतना उष्णता का प्रभाव खेत के गर्भतल पर नहीं पड़ सकता है। इसी कारण खेत का 'गर्भतल' खेती के लिये धरातल की अपेक्षा अधिक उपयुक्त नहीं हो सकता। इसलिये यदि हम अपने खेत के 'गर्भतल' को कृषि के लिये उष्णता पहुँचा करके उपयुक्त बनाना चाहते हैं। तो हमें खेत के गर्भतल को जोत कर इस प्रकार से उलट-पुलट करके धरातल की मिट्टी में मिश्रण कर देना चाहिये। जिससे कि गर्भतल की मिट्टी में भी उष्णता का आघात-प्रघात उसी प्रकार से हो सके, जैसा कि धरातल की मिट्टी में होता है।

इस काम के लिये हमें ऐसे हलों का प्रयोग अथवा व्यवहार करना पड़ेगा। जिनमें कि यह विशेष गुण हो जो कि हमारे खेत के गर्भतल तथा धरातल की मिट्टी को खोदकर इस प्रकार से उलट-पुलट दें, जिससे कि धरातल की वह मिट्टी, जो भली प्रकार से पूर्ण-रूपेण उष्णता के आघात-प्रघात को सहन कर चुकी है। वह नीचे चली जाय, और धरातल की इस मिट्टी के स्थान पर गर्भ-तल की वह मिट्टी जो कि उष्णता के आघात-प्रघात से परिवर्तित होकर पौधों के लिये उपयुक्त नहीं हो सकती है। आ जाय तथा उष्णता को प्राप्त कर सके।

जिस प्रकार से खेत के धरातल को उष्णता पर्य्याप्त परिमाण में मिल जाती है, और वह जुताई करने पर कृषि के लिये उपयुक्त हो जाता है; उसी प्रकार, वायु, प्रकाश, ताप इत्यादि सारी भौतिक-शक्तियों का प्रभाव हमारे खेत के धरातल पर निरन्तर पड़ा करता है; और हमारे खेत का धरातल इनके प्रभाव से कृषि के लिये ठीक तथा उपयुक्त हो जाया करता है। परन्तु, खेत के धरातल की भांति गर्भतल की मिट्टी पर इन उक्त भौतिक-शक्तियों अर्थात् वायु, उष्णता, प्रकाश का प्रभाव नहीं पड़ता। इस कारण गर्भतल की मिट्टी धरातल की भांति कृषि-कर्म्म के लिये उपयुक्त तथा लाभ-दायक नहीं होती है। इसलिये हमें चाहिये कि खेत के गर्भतल की मिट्टी को जोतकर के उलट-पुलट दें, और धरातल पर लाकर के इस योग्य बना दें। कि वह इन भौतिक-शक्तियों के आघात-प्रघात से प्रभावित होकर हमारी कृषि के लिये उत्तम तथा उपयुक्त हो जावें।

इसके बतलाने की आवश्यकता नहीं है। कि हमारे खेतों के गर्भतल में पौधों की ख़ूराक का बहुत सा भाग धरातल की अपेक्षा अधिक परिमाण में मौजूद रहता है। परन्तु, जब तक वह पौधों का भोजन-पदार्थ गर्भतल में ही पड़ा रहता है; तब तक वह पौधों के लिये पूर्ण रूप से ग्रहण करने योग्य नहीं होता है। क्योंकि यह सारी भौतिक-शक्तियां हमारी कृषि के लिये प्रधान तथा आवश्यक अंग हैं। जिनका कि ज्ञान प्राप्त करना भी कृषि-व्यवसाय के लिये एक आवश्यक बात है; और जिसका ज्ञान भी भौतिक-विज्ञान का एक अंग है।

यह बातें तो हमें मालूम ही हो गईं। कि खेत के गर्भतल पर धरातल की अपेक्षा भौतिक-शक्तियों का बहुत कम अथवा नहीं के बराबर प्रभाव पड़ा करता है। इसी प्रकार से खेतों के गर्भतल और धरातल की बनावट में भी बहुत भिन्नता है, और खेत के धरातल में बहुत से ऐसे पदार्थ न्युनाधिक मात्रा में पाये जाते हैं। जो कि गर्भतल में नहीं पाये जाते। जैसे खेत के धरातल में मिट्टी का एक आवश्यक तथा कृषि के लिये लाभदायक जीवाँश वाला भाग अधिक मात्रा में पाया जाता है। परन्तु, यही जीवांश वाला भाग खेत के गर्भतल में धरातल की अपेक्षा बहुत ही न्युन मात्रा में पाया जाता है।

इसी प्रकार से खेतों के धरातल में पौधों की ख़ूराक वाला भाग भौतिक-शक्तियों के प्रभाव के कारण अधिक मात्रा में पाया जाता है। परन्तु, गर्भतल में पौधों की ख़ूराक वाले सारे भाग भौतिक-

शक्तियों के प्रभाव से प्रभावित न होने के कारण से न्युनांश में पाये जाते हैं। साथ ही जुताई इत्यादि कृषि-कर्मों के निरन्तर करते रहने से धरातल की मिट्टी के कण बारीक होजाते हैं, और तब हम यह कह सकते हैं कि धरातल की मिट्टी के कण बारीक होते हैं। जो कि कृषि के लिये गर्भतल की मिट्टी के कणों की अपेक्षा अधिक लाभदायक हैं। क्योंकि गर्भतल की मिट्टी के कण धरातल की मिट्टी कणों की अपेक्षा मोटे होते हैं। यदि धरातल की मिट्टी में गर्भतल की मिट्टी की भाँति जुताई इत्यादि अन्याय सारे कृषि-कर्म्म किये जाँय। तो वह भी धरातल के कणों की भाँति महीन हो सकते हैं।

इसके सिवाय तुलनात्मक-दृष्टि से देखने से धरातल का रंग कुछ काला पाया जाता है, और गर्भतल का रंग कुछ हरा पाया जाता है। खेतों के धरातल में पौधों की ख़ूराक वाला खनिजाँश (Minral matter) का भाग गर्भतल को अपेक्षा बहुत ही कम मात्रा में पाया जाता है। गर्भतल में खानिजाँश इस कारण से अधिक मात्रा में पाया जाता है। कि उसे फ़सलों के पौधे अपनी ख़ूराक द्वारा ग्रहण नहीं कर सकते, और धरातल के खानिजाँश को ग्रहण कर लेते हैं। इससे ज्ञात हुआ कि फ़सलों के पौधों की गिज़ा का एक प्रधान भाग खनिजाँश खेतों के धरातल में गर्भतल की अपेक्षा सदैव बहुत ही न्युनाँश में पाया जाता है, और खानिजाँश का यह आवश्यक भाग गर्भतल में वैसे ही निरर्थक बना रहता है। इसे हम कृषि के काम में नहीं लाते। यद्यपि खनिजांश के विषय में ऊपर

बहुत कुछ विचार किया जा चुका है, तथापि हम यहां पर इतना और अधिक कह देना आवश्यक समझते हैं। कि खनिजांश वाला भाग सृष्टि के सारे जीवधारियों के लिये एक आवश्यक और उपयोगी भाग है। खनिजांश का यह भाग यदि पृथ्वी के धरातल से ग्रहण करके पौधे मनुष्यों और पशुओं को ख़ूराक के रूप में शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये न दिया करें, तो हमारे शरीर की रचना एक प्रकार से हो ही न सके।

खनिजांश-पदार्थ वास्तव में मनुष्यों और पशुओं के लिये आवश्यक ख़ूराक के भाग हैं। जिनके द्वारा हमारी शरीर के बहुत से भाग निर्मित हुआ करते हैं, और कहाँ तक कहें, शरीर का आवश्यक भाग-अर्थात् हड्डियों का ढाँचा जिसके द्वारा हमारा शरीर इस दशा में रहता है। खनिजाँश द्वारा ही निर्मित हुआ है। इसलिये खनिजाँश के भाग को हमें गर्भतल से निकाल कर धरातल के द्वारा व्यवहार में लाना चाहिये।

धरातल तथा गर्भतल की बनावट में धरातल की मिट्टी के कण आकार के अनुसार बेतरतीब दशा में होते हैं। अर्थात् धरातल के कण कहीं छोटे कहीं बड़े होते हैं। जुताई इत्यादि कृषि-कर्म्मों के कारण कणो के आकार में बेतरतीबी आजाती है। परन्तु, गर्भतल की मिट्टी के कण आकार के अनुसार भी तरतीब से होते हैं। आकारानुसार यह तरतीब इसी कारण से गर्भतल में स्थायी रहती है। कि उसमें जुताई के कारण से कोई छिन्नता-भिन्नता नहीं होने पाती। इसके सिवाय खेतों के धरातल में नमी बहुत ही कम पाई जाती

है। जो कि पौधों के लिये एक आवश्यक पदार्थ है। क्योंकि जिस भूमि में जितनी ही नमी रहती है। उस भूमि की मिट्टी का भोजन—पदार्थ उतना ही तय्यार हालत में पाया जाता है। जिसे कि पौधे शीघ्र से शीघ्र बिना किसी रुकावट के ग्रहण कर सकते हैं।

परन्तु, हमारे खेतों के धरातल में गर्भतल की अपेक्षा बहुत ही कम नमी पाई जाती है। गर्भतल की इस नमी को हम अपने कृषि के काम में नहीं लाते। वैसे तो प्राकृतिक मार्गों द्वारा गर्भतल की नमी धीरे धीरे हमारे पौधों को अवश्य ही हासिल होती है। परन्तु, तो भी हमें चाहिये कि हम गर्भतल की इस नमी को भी जहाँ तक हो सके, अपने कृषि-कर्म्म के व्यवहार में प्रचुरता से लाया करें। क्योंकि गर्भतल को यह नमी सदैव निरन्तर भूगर्भ से प्राप्त हुआ करती है। यह कभी भी रुक नहीं सकती, यह बातें कृषि-कर्म्म की सैद्धान्तिक बातें हैं। इसलिये इन बातों पर विवेचन न करके यही बतला देना आवश्यक समझते हैं। कि यदि हम गर्भतल और धरातल का ऐसा सम्बन्ध जुताई करके नियत तथा निश्चित करदें। कि हमारी फ़सलों के सारे पौधे आसानी से गर्भतल की नमी से लाभ उठा सकें। तो कृषि-कर्म्म के सिंचाई वाले आवश्यक तथा कठिन कर्म्म में हमें बड़ी सरलता हो जाय। और वे सारे नुक़सान जो कि नमी के रूप में पानी के ठीक वक्त पर न मिलने के कारण अचानक हो जाया करते हैं, बहुत कुछ रुक जाँय।

गर्मी भी जो कि कृषि के पौधों तथा भूमि के लिये एक आव-

श्यक भाग है। हमारे खेतों के गर्भतल में धरातल की अपेक्षा अधिक पाई जाती है, यह गर्मी धरातल को ऊपरी तथा भीतरी दोनों मार्गों से मिला करती है; और यह गर्मी ताप के नाम से कृषि-कर्म्म में बड़ी सहायक है। कभी-कभी यह गर्मी जो कि धरातल को ऊपरी मार्गों से मिला करती है। कुछ कारणों से जैसे बदली तथा कुहरा वग़ैरह के हो जाने से नहीं मिलती। यदि हम चाहें तो गर्भतल की गर्मी को धरातल तक आसानी से लाकर पौधों को पहुँचा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त बहुत से जीवाणु ऐसे हैं। जो कि कृषि के लिये बहुत ही लाभदायक हैं। वह कई कारणों से खेतों के धरातल में प्रचुरता से पाये जाते हैं। परन्तु, गर्भतल में कम क्या? यदि यह भी कहा जाय कि पाये ही नहीं जाते। तो कुछ अनुपयुक्त न होगा। क्योंकि इन जीवाणुओं को भूमि के भीतर कृषि-उपयोगी कार्य्य करने के लिये अन्य सारे जीवधारियों की भाँति पर्य्याप्त मात्रा में वायु, प्रकास, ताप की आवश्यकता हुआ करती है, और यह सारे पदार्थ खेतों के धरातल में इस कारण से प्रचुरता से पाये जाते हैं। कि जुताई के कारण खेत का धरातल बहुत ही फुलफुला और भुसभुसा होता है। इससे उसमें वायु, प्रकाश, उष्णता पर्य्याप्त-मात्रा में जीवाणुओं के काम करने के लिये आ जा सकती है। परन्तु, गर्भतल की जुताई तो हम लोग करते ही नहीं। इस कारण वह इतना नर्म नहीं होता, कि उक्त भौतिक-शक्तियाँ गर्भतल में भी अपना प्रभाव पहुँचा सकें। जिससे जीवाणुओं को गर्भतल की

भूमि में भी धरातल की भांति काम करने की सब सुविधायें प्राप्त हो सकें। वास्तव में हम इस लाभ से बहुत कुछ वंचित हैं। क्योंकि एक तो हमारे देशवासी खेत के धरातलों की ही जुताई को इस योग्य नहीं करते। कि केवल धरातलों में ही जीवाणु अपना पूरा कार्य्य कर सकें, गर्भतल की तो कौन कहे? यदि हम लोग कृषि की उन्नति के इच्छुक हैं; और इन कृषि-सहोपकारी जीवाणुओं से कृषि द्वारा लाभ उठाना चाहते हैं। तो हमें चाहिये कि हम अपने गर्भतल तथा धरातल को हमेशा इस योग्य तैयार रक्खें। कि ये जीवाणु (Bacteria) पूर्ण रूप से तथा लाभदायक रीति से कार्य्य कर सकें।

इन जीवाणुओं की, कृषि के सम्बन्ध में बड़ी रहस्यम गाथा है। जो कि विज्ञान की बड़ी रहस्यमय तथा कृषि उपयोगी बातें हैं। जिनका उचित विवेचन इस स्थान पर नहीं किया जा सकता। क्योंकि यह सब बातें कृषि-विज्ञान की सैद्धान्तिक बातों की मुख्य मुख्य बातें हैं। तो भी हम अपने पाठकों को स्थानानुसार इन जीवाणुओं के विषय में जहाँ आवश्यकता पड़ेगी बतलाते जायंगे।

खेत के गर्भतल में धरातल की अपेक्षा छीजन-शक्तियाँ कुछ भी काम नहीं करतीं; और वास्तव में ये छीजन-शक्तियों के मार्ग भी जीवाणुओं की भांति कृषि के लिये अत्यन्त लाभदायक मार्ग हैं। क्योंकि धरातल में बहुत से ऐसे पदार्थ हैं। जो कि पौधों की खूराक हैं। परन्तु ये खुराक के पदार्थ कभी कभी कुछ कारणों से ऐसी दशा में खेत के धरातल में तथा गर्भतल में पाये

जाते हैं। कि पौधों के लिये वे काम में नहीं आ सकते। परन्तु यदि छीजन शक्तियों के कार्य्य पूर्ण रूप से खेतों में काम कर सकें। तो बहुत सा भोज्य—पदार्थ फ़सलों के पौधों के लिये तैय्यार हो जाता है।

ऊपर कह आये हैं, कि खेत के गर्भतल में इन छीजन शक्तियों के मार्ग अपना काम धरातल की अपेक्षा नहीं कर सकते, इसलिये यदि हमें गर्भतल को भी कृषि के व्यवहार में लाना है; और जिसका लाना भी आवश्यक है। तो हमें चाहिये कि हम गर्भतल को इस प्रकार से जोतकर अपने कृषि-कर्म्म के अनुकूल बना लें। कि वह हमें अपना सारा भोज्य-पदार्थ छीजन-शक्तियों के मार्गों द्वारा दे सकें, जिससे हमारे पौधे उसको भोजन कर हमें भी अच्छी उपज दे सकें।

इस प्रकार से हम गर्भतल तथा धरातल सम्बन्धी बहुत सी बातों के विषय में आलोचनात्म दृष्टि से तुलना करके बहुत सी बातों का दिग्दर्शन पाठकों को करा दिया है। जिससे पाठकवृन्द गर्भतल तथा धरातल सम्बन्धी बहुत सी बारीकियों को समझ गये होंगे; और यदि लोग गर्भतल और धरातल की इन तुलनात्मक बातों पर विचार करेंगे, तथा व्यवहार में लावेंगे, तभी इसके गुण को जान सकेंगे।

खेतों की मिट्टी की जानकारी के हेतु, प्रस्तुत-पुस्तक में भली प्रकार से धरातल तथा गर्भतल का वर्णन वैज्ञानिक रीत्यानुसार किया गया है। यह सारी बातें किसी भी कृषि-व्यवसायी को व्यावहारिक

अंग है, और यह साधारणतयां कृषि-कर्म्म के व्यवहार में सदैव व्यवहृत भी हुआ करता है। इन सारी व्यावहारिक बातों का वर्णन हम संक्षेप में अब किये देते हैं।

जब हम अपने सारे खेतों की मिट्टियों को उठा करके देखते हैं-अथवा जब हमारे हल इत्यादि कृषि-सम्बन्धी यन्त्र खेतों की जुताई इत्यादि कर्म्म करने के लिये, खेतों में चलाये जाते हैं, तो उनसे भी और हमारे देखने से भी सारे खेतों की मिट्टियों में बहुत ही अन्तर पाया जाता है। यह सारा अन्तर स्थानानुसार हुआ करता है। क्योंकि यह बात सभी किसानों अथवा लोगों के देखने में आती है। कि हमारे खेतों का कोई भू-भाग ऐसा होता है। जो कि-मटियार के नाम से पुकारा जाता है, और जिसमें पानी अधिकांश में रहता है। पानी के अधिकांश में भरे रहने का अर्थ यहाँ पर यह है कि इन मटियार भूमियों के धरातल पर पानी जब वर्षा से अथवा सिंचाई से पहुँच जाता है। तो इन मटियार भूमियों के कण जो कि अधिकतर चिकनी मिट्टी के होते हैं। इस पानी को सोखना आरम्भ कर देते हैं, और बहुत ही धीरे-धीरे पानी को सोखते हैं। इस कारण मटियार क़िस्म की भूमि का धरातल सदैव वर्षा के पानी से भरा रहता है, इसका मुख्य कारण यही है। कि भूमि के कण पानी को अपनी सतह से नीचे नहीं जाने देते। यह पानी या तो सूर्य्य की गर्मी से भाप के रूप में उड़ कर वायुमण्डल में प्रवेश कर जाता है। या धीरे धीरे अपनी सोखन-शक्ति के अनुसार मटियार भूमि के कण पानी को सोखते हैं।

मटियार भूमि के नाम से प्रायः सारे किसान परिचित हैं। और इसके गुणो को भी जानते हैं। इस प्रकार की भूमि प्रायः भीलों और तालाबों के किनारे बहुतायत से पाई जाती है। जिसमें धान तथा ईख की खेती उत्तमता से की जाती है। इस प्रकार की भूमियों में हमारे किसान अपने खेत बनाकर खेती किया करते हैं। मटियार भूमि के धरातल के कण यद्यपि पानी को बहुत ही धीरे धीरे सोखते हैं, और अपनी नीची तहों में—अर्थात धरातल की तह में पानी को पहुँचने देते हैं—तथापि जितना पानी मटियार भूमि के धरातल के कण सोख लेते हैं। उतने पानी को अपने अन्दर रखने की उनमें इतनी शक्ति होती है। कि वह पानी ( सोखा हुआ पानी ) बहुत दिनों के पश्चात् उस भूमि के कणो से धीरे धीरे निकलता है। सारांश यह कि मटियार भूमि के धरातल के कण पानी को बहुत धीरे धीरे सोखते हैं; और सोखने के पश्चात् यह पानी सूर्य्य की उष्णता से अन्य प्रकार की भूमियों की अपेक्षा बहुत धीरे धीरे भाप की दशा में परिवर्तित होकर के वायु मंडल में प्रवेश करता है। कृषि-कर्म्म पर विचार करने से कई एक दृष्टियों से यह ज़मीने कृषि के लिये कुछ फ़सलों के कारण तो बहुत ही उत्तम और लाभदायक हैं। परन्तु, कुछ कारणो वश कुछ फ़सलों लिये यह भूमियाँ कृषि-कर्म की दृष्टि से हानिकारक भी हैं।

मटियार भूमि का यदि दोनों भाग अर्थात गर्भतल तथा धरातल जब दोनों मटियार होता है, और यह ज़मीने कुछ नीचे पड़ जाती हैं। तो इन पर सदैव पानी भरा रहता है। वर्षाकाल में तो

इनमें अवश्य ही पानी भरा रहता है। कि जिसके कारण हम इन जमीनों पर खेती नहीं कर सकते। झीलों, तालों तथा इसी प्रकार के बहुत से जलाशय अथवा जल—भाग, भूमि में पाये जाते हैं। जिन पर पानी के जमा रहने के कारण हम खेती नहीं कर सकते। इनके सूख जाने पर भी कोई ही कोई फ़सलें इनमें उगा सकते हैं। इन जलाशयों को जो कि केवल वर्षाकाल में ही मटियार होने के कारण पानी से भरे रहते हैं—ड्रेनेज ( Dranage ) के द्वारा सुधार कर के कृषि-कर्म्म में लाये जा सकते हैं।

इसके सिवाय मटियार का बहुत सा भू-भाग ऐसा भी है, जो कि ऊसर इत्यादि के नाम से पुकारा जाता है। ऊसर का भूभाग प्रायः आस-पास की भूमि से ऊंचा होता है, और इन ऊसरों के धरातल अथवा गर्भतल का भाग मटियार होने के कारण अर्थात धरातल और गर्भतल की मिट्टी के सारे कण चिकनी मिट्टी के होने के कारण वर्षा-काल में अन्य प्रकार की भूमियों के धरातल की भांति पानी को शीघ्रता से सोख नहीं सकते, और वर्षा-ऋतु का सारा पानी बह करके इनके आस-पास के नीचे खेतों में चला जाता है। इस कारण इन ऊसर वाले भू-भागों में कृषि-कार्य नहीं किया जा सकता। इस प्रकार वे सारे मटियार के भू-भाग चाहे स्थल भाग हों। चाहे जल-भाग हों। ड्रेनेज द्वारा सुधार कर ही इनमें जुताई इत्यादि कर्म्म किये जाने पर कृषि के योग्य बनाये जा सकते हैं। जैसा कि विदेशों में इस प्रकार की भूमियों को उक्त रीतियों से सुधार कर किया जा रहा है। ड्रेनेज उन भूमियों के

सुधारने का एक वैज्ञानिक तरीक़ा है। जो कि कृषि के कार्य की नहीं है—अर्थात् जिसमें अभी तक कृषि-कर्म नहीं हो रहा है। इसका वर्णन हम कभी दूसरी पुस्तक द्वारा किसानों को सुनायेंगे।

वास्तव में ऐसी भूमियां जिनका कि धरातल तथा गर्भतल पूर्ण रूप से ही मटियार का होता है। कृषि के काम की नहीं होती है। यदि इनमें चिकनी मिट्टी के सिवाय कुछ बलुही मिट्टी के भी कण मिले रहते हैं। तो कृषि के लिये बहुत ही उत्तम तथा उपयोगी होता हैं। जब तक किसी भी खेत का धरातल तथा गर्भतल का नगर केवल चिकनी मिट्टी का ही बना रहता है। तब तक वह मटियार भूमि के नाम से पुकारी जाती है।

परन्तु, जब इनके धरातल की मिट्टी के कणों में बालू के कणों का मिश्रण हो जाता है। तब इन मटियार भूमि के नामों में परिवर्तन होने लगता है। जैसे यदि चिकनी मिट्टी में जो कि पहिले शुद्ध मटियार थी, और उसमें बालू के एक कण भी नहीं थे। यदि बालू के कणों का मिश्रण हो जाय, तो इनके नाम बदल जाँयगे, और खेत की मिट्टी के धरातलों को भिन्न भिन्न नाम प्राप्त हो जायगा। जैसे हलकी मटियार, दूमट, हलकी दूमट, बलुहरा इत्यादि।

यह सारे नाम भिन्न भिन्न परिमाण में बालू के कणों के मिलने से मटियार के नाम में परिवर्तन करते हैं। जैसे यदि जिस मटियार भूमि में सारे मिट्टी के कण चिकनी मिट्टी के हैं। यदि उसमें एक चौथाई चिकनी मिट्टी के भाग के स्थान पर बालू के कण मिला दिये

जाँय, और वह चौथाई भाग चिकनी मिट्टी का निकाल लिया जाय, तो वह भूमि हल्की मटियार के नाम से कही जाती है। जिन खेतों में तीन चौथाई भाग चिकनी मिट्टी पायी जाती है, शेष चौथाई भाग बलहुरा मिट्टी पायी जाती है। उन खेतों के धरातल की मिट्टी का नाम हल्की मटियार ही दिया गया है कहीं कहीं इस प्रकार की भूमि को भारी दोमट भी कहते हैं। इन नामों की भिन्नता के कारण हम लोगों को यह न समझ लेना चाहिये कि भारी दोमट और हल्की मटियार दो भाँति की भूमियाँ हैं। केवल नाम ही का इनमें अन्तर है, और भूमि की क़िस्म एक ही है, भूमि के इस मटियार और हल्की मटियार के भाग में अर्थात जो खेत उक्त दोनों प्रकार की भूमियों में के होते हैं

उनमें जुताई करना बड़ा कठिन होता है, अर्थात् मटियार और हल्की मटियार के धरातलों तथा गर्भतलों में हल बड़ी कठिनता से चलते हैं, और हमारे बैलों को इन ज़मीनों के जोतने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता है, और हमारे देशी हल तो इनमें एक प्रकार से अधूरा ही काम कर सकते हैं। इस प्रकार की भूमियों के लिये वास्तव में ही मोटरट्रैक्टर तथा दूसरे प्रकार के अन्य मिट्टी पलटने वाले हल बहुत ही उपयोगी होते हैं। जिनका कि वर्णन आगे किया जायगा। हल्की मटियार अथवा भारी दोमट वाली ज़मीनें कृषि के लिये बहुत ही उपयोगी हैं, यद्यपि दोमट की अपेक्षा अथवा उससे मुक़ाबिले में ये उतनी उत्तम नहीं कही जा सकतीं जितनी कि दूमट भूमियाँ। क्योंकि हल्की मटियार भी

बहुत सी फ़सलें दूमट की भांति उत्तमंता से अधिक उपज नहीं दे सकतीं।

इन हल्की-मटियार की भूमियों को हम कुछ उपायों से सुधार कर तथा बहुत से ऐसे हल भी अब आविष्कृत हो गये हैं। कि उनके द्वारा ख़ूब गहरी जुताई करके हम इनको अपने लिये उत्तम बना सकते हैं, वास्तव में इन ज़मीनों के जोतने में बड़ी कठिनता पड़ती है, और हमारे हल और बैल इस प्रकार के धरातल की ज़मीनों में जैसी चाहिये वैसी जुताई नहीं कर सकते। परन्तु अब कई प्रकार के हल जो कि खास करके इन्हीं ज़मीनों के लिये बनाये गये हैं। जुताई करने से उत्तम फल और लाभ प्राप्त हो सकता है। इनका विशेष वर्णन हलों के ही प्रकरण में किया जायगा।

खेतों के धरातल तथा गर्भतल की मिट्टी के कणों में जब चिकनी मिट्टी और बालू के कण आधे आध भाग में पाये जाते हैं, तो यह मिट्टी दूमट के नाम से पुकारी जाती है। ऐसा समझ लेना चाहिये कि जब खेतों के धरातलों की मिट्टी में आधा भाग चिकनी मिट्टी का रहता है, और आधा भाग बलुहरा मिट्टी का रहता है, तो उस खेत की मिट्टी को दूमट कहते हैं। दूमट मिट्टी वाले खेत कृषि कर्म्म के लिये बहुत ही उत्तम और लाभदायक हैं। इसका मुख्य कारण यही है, कि इन ज़मीनों में सब प्रकार की फ़सलें खासी उपज दे सकती हैं, और इन ज़मीनों के खेतों को हम जिस फ़सल के लिये चाहें उस फ़सल के लिये जुताई इत्यादि करके अथवा खाद-पाँस डाल कर उस फ़सल के लिये तय्यार कर

सकते हैं। परन्तु कुछ फ़सलें ऐसी हैं, जिन्हें मटियार और हल्की-मटियार ही माफ़िक होती है। अर्थात उनमें उन फ़सलों की उपज अधिक होती है।

दूमट भूमि की जुताई करने में बैलों को कोई विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता, क्योंकि इनमें हल बड़ी सुगमता के चलता है, तथा हल्की-मटियार की ज़मीनों में हलों के खींचने में ज़्यादा ज़ोर लगाना पड़ता है। परन्तु दूमट क़िस्म के खेत भी जब तक समया-नुसार लाभदायक हलों से न जोते जाँयगे, और उनमें समय समय पर सारी जुताइयाँ उन्नति-प्राप्त रीतियों से न की जायँगी, तब तक वास्तविक सफलता नहीं प्राप्त हो सक्ती है। चाहे इन खेतों में हल कितनी ही सुगमता से बैलों द्वारा क्यों न खींचे जाँय, और यह ज़मीन कृषि-कर्म्म के लिये अत्यन्त उपयोगी ही क्यों न हों।

वास्तव में दूमट क़िस्म की भूमियाँ कृषि-कार्य के लिये अत्यन्त ही लाभदायक हैं। परन्तु तो भी हमारे देश-वासी इन्हें उत्तम रीति से नहीं जोतते। न कृषि-कर्म्म में उचित रीति से, व्यवहार में ही लाते हैं। क्योंकि न तो हमारे देश में इन ज़मीनों में गर्मी की ही जुताइयां जिन हलों से करना चाहिये की जाती हैं। न वर्षा और 'रबी' की ही जुताइयां यथोचित रीति से की जाती हैं। इस कारण वास्तविक फल भी प्राप्त नहीं होता। यदि इन सारे ऋतुओं की जुताइयां ठीक रीति से की जाँय; और इन दूमट भूमियों में नियमानुसार फ़सलें उगाई जाँय, तो हम अच्छी पैदावार इन खेतों से प्राप्त कर सकते हैं।

इसी प्रकार खेतों की जिन मिट्टियों में बालू का कण यानी बलुहरा मिट्टी तीन चौथाई भाग में पाई जाती है। शेष एक चौथाई भाग चिकनी मिट्टी का पाया जाता है। उसे "हल्कीदूमट" कहते हैं। इन हल्कीदूमट के क़िस्म की भूमियों में बलुई मिट्टी का भाग अधिक परिमाण में पाया जाता है। इस प्रकार की मिट्टी जिन खेतों में पाई जाती है। वह भी कृषि-कार्य के लिये अच्छी हैं, और उसमें भी कुछ फ़सलों को छोड़ कर शेष फ़सलें अच्छी पैदावार देती हैं।

कुछ फ़सलों की दृष्टि से तो हल्की दूमट के क़िस्म की ज़मीनें बहुत ही उत्तम होती हैं; जैसे मूँगफली की फ़सल। इसी प्रकार उन सारी फ़सलों के लिये जिनका जड़-भाग ही हमारे काम में आता है। बहुत ही उपयुक्त होती हैं, तथा जुताई की दृष्टि से भी यह ज़मीनें अच्छी हैं। इस कारण इनके सम्बन्ध में और अधिक विचार न करेंगे।

इसके सिवाय बहुत सा भू-भाग ऐसा भी पाया जाता है। जिसमें बालू ही बालू पाया जाता है। इस प्रकार की भूमियों को रेतीली ज़मीनें कहते हैं और यह ख़ास कर के नदियों में तथा उसके किनारे पर पाई जाती हैं। वास्तव में इस क़िस्म की भूमियां भी मटियार" भूमि के समान कृषि के लिये उपयोगी नहीं है। न इनमें कृषि की कोई फ़सलें ही उत्तमता से अच्छी उपज दे सक्ती हैं। परन्तु तो भी जिस प्रकार से मटियार भूमियों में पानी के जमा रहने पर उसमें धान की फ़सल हो सक्ती है, तथा भली प्रकार से जुताई इत्यादि करके और सपरिश्रम कमाने से इसमें ईख, पौंडा,

गन्ना इत्यादि की भी फ़सलें अच्छी पैदावार दे सकती हैं। उसी प्रकार से इन रेतीली ज़मीनों में भी नदियों के कछारों में कुरमी काछी, जोलहा, मुराई इत्यादि कृषकों की कुछ जातियाँ विशेष फ़सलें उगा लेते हैं; जैसे ककड़ी, तरबूज़, खरबूज़ इत्यादि जायद की फ़सलें। इन रेतीली जमीनों के विषय में हम जुताई की दृष्टि से कुछ भी विचार न करेंगे, क्योंकि अधिकतर इनकी जुताई करके उक्त फ़सलें नहीं उगाई जातीं।

इस प्रकार से भूमियों का सारा वर्णन खेतों की ज़मीन की क़िस्मों के अनुसार भी कर दिया गया. जिससे हमारे सारे पाठक गण सरलता पूर्वक अपने खेतों की मिट्टियों के सम्बन्ध में सारी बातें जान सकेंगे; उन्हें दूसरी जगह खेतों की मिट्टियों के सम्बन्ध में जानने के लिये नहीं भटकना पड़ेगा। इसके सिवाय और भी कुछ क़िस्म की ज़मीनें हैं; जिनमें हमारे खेत बनाये गये हैं, और उसमें जुताई करके फ़सले उगा करके धन-धान्य उत्पन्न किया जाता है। परन्तु इस क़िस्म की ज़मीनों का विशेष वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

जैसे बहुत से ऐसे खेतों की भी हम जुताई करके देखते हैं कि इसमें कंकड़ अधिक पाया जाता है। इसके कारण हम ठीक रीति से जुताई नहीं कर सकते, न इसमें उत्तम प्रकार से फ़सलें ही उगा-कर अच्छा धन-धान्य पैदा कर सक्ते हैं। इन्हें हम कँकरीली ज़मीनें कहते हैं। और किसी प्रकार से इनसे कुछ धन-धान्य पैदा कर

लिया करते हैं। और वास्तव में इस प्रकार की ज़मीने जुताई की दृष्टि से तथा कृषि-कर्म्म की दृष्टि से उत्तम नहीं होतीं।

इसके सिवाय बहुत सी ज़मीनों में पक्की मिट्टी के टुकड़े बहुत से पाये जाते हैं। ऐसी ज़मीनें अधिकतर गावों के पास होती हैं, और इनमें इसलिये सिटके इत्यादि बहुतायत से पाये जाते हैं। कि कुछ काल पहिले वहां पर लोगों की आबादी थी; उन लोगों के मकानों के खपड़े फूट-फूट कर उस ज़मीन में मिल गये हैं, और उसमें खेती हो रही है, इनका कोई ख़ास नाम नहीं है।

गावों के पास जो खेत पाये जाते हैं, उनका नाम सब स्थानों में एक नहीं होता है। स्थानानुसार गांव के किसान इन खेतों की मिट्टियों के अनुसार स्वयं रख लिया करते हैं। खेतों की ज़मीन के नाम के सम्बन्ध में कृषि-वैज्ञानिकों ने कोई नवीन नाम नहीं निकाले हैं। अधिकतर स्थानीय नामों के ही द्वारा दोनों दलों का काम चल रहा है। जो खेत गांव के पास पाये जाते हैं; जिसमें मनुष्य जानवर इत्यादि सदैव मल-मूत्र किया करते हैं अथवा गांव के बहुत ही सन्निकट रहने के कारण इन खेतों में जीवांश पदार्थ अधिक परिमाण में पहुँचा करता है, इन खेतों की भूमि को कहीं तो "गोयंड" कहीं "गौहान" कहीं "तिराई" के नाम से पुकारा करते हैं; और वास्तव में इन खेतों की भूमि का धरातल इस परिमाण जीवांश से भरा रहता है। कि इन ज़मीनों में ऐसी फ़सलें बोई जाती हैं; जो कि अधिक धन दायक होती हैं। जैसे गन्ना तथा गेहूँ इत्यादि।

गौहान की भूमि के खेतों में प्रायः किसान लोग वर्ष में दो तीन फ़सलें भी लिया करते हैं; और इस कारण यह खेत दो फ़सली हुआ करते हैं; इन खेतों में तरकारी, साक, भाजी इत्यादि की फ़सलों के बोने का रिवाजोरस्म अब दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है; क्योंकि इन खेतों को गाँव के पास होने के कारण जुताई इत्यादि करने में बड़ी सरलता होती है; और यह खेत अधिक उपजाऊ होते हैं। इन खेतों की फ़सलों की रखवारी करने में भी कोई कठिनता नहीं होती। "गौहान" अथवा गोयंड के खेतों का लगान आजकल बहुत बढ़ता जा रहा है; क्योंकि अधिक सुविधाजनक होने के कारण कोयरी, काछी इत्यादि किसान "कछियाना" करने के लिये इन खेतों का लगान बहुत अधिक दिया करते हैं। यही हाल शहरों के निकट के खेतों का है। वर्तमान काल में यह ज़मीनें बहुत ही मूल्यवान हो गई हैं।

इसी प्रकार जो खेत गावों से दूर होते हैं, उनका भी नाम भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न हुआ करता है, हमारे देश में जिन स्थानों के पास बड़े बड़े बरसाती झील अथवा ताल हैं। उन स्थानों के पास की ज़मीनों के खेतों को हमारे यहाँ के किसान 'तलहा देश' कहकर उन ज़मीनों को "तलही" भूमि कहा करते हैं। क्योंकि इन ज़मीनों की सिंचाई इत्यादि बहुत सा कार्य इन 'तालों' के कारण बड़ी सुगमता से हो जाता है। और इन ज़मीनों में धान, ईख इत्यादि की फ़सलें अधिकता से बोई जाती हैं, और उत्पन्न भी होती हैं। इन तलहे स्थानों के किसान अपने को उन किसानों से बड़ा

भाग्यवान समझते हैं। जहाँ कि ताल अथवा झीलें नहीं हैं, और उनको उपरिवरहा कहा करते हैं। क्योंकि वास्तव में ताल के पास के किसान कई बातों में उपरिवरहा किसानों से आराम में रहते हैं।

खेतों की ज़मीनों का नाम भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न होता है। जैसे हमारे देश में ज़मीनें, मटियार, दूमट इत्यादि नामों से पहिचानी जाती हैं। उसी प्रकार से बुन्देलखंड में ज़मीनों का एक निराला ही नाम है। वहाँ पर मटियार, दूमट नाम सुनने में भी नहीं आ सकता, क्योंकि वहाँ की ज़मीनों का नाम मार, काबर, परवा, राकड़ इत्यादि है। इससे मालूम हुआ कि खेतों की मिट्टियों के अनुसार भिन्न भिन्न स्थानों में इनका भिन्न भिन्न नाम है। इससे यह समझ लेना चाहिये; कि इन नामों के जानने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। क्योंकि जो किसान जिस स्थान का होगा यदि वहाँ के स्थानीय नाम को न जानेगा और उनसे पूर्ण रीति से परिचित न रहेगा तो उसका कुछ काम ही न चलेगा; क्योंकि इन नामों को जानना और उनका उचित रीति से कृषि व्यवहार में लाना भी कृषि-कर्म का आवश्यक काम है।

पाठकों! को अब तक धरातल तथा गर्भतल के विषय में बहुत कुछ बताया जा चुका है। परन्तु, तो भी हम कुछ भूमियों के रासायनिक-संघट्टन की सारिणी देकर इस बात का खुलासा किये देते हैं। कि खनिजांश के नाम से पाये जाने वाले पदार्थ भिन्न २ प्रकार के धरातलों में किस किस मात्रा में पाये जाते हैं।

हल्की दूमट और भारी-दूमट ( हल्की-मटियार ) का रासायनिक-संघट्टन ( बनावट )

| खनिजाँश | वैज्ञानिक चिन्ह | हल्की-दूमट | भारी दूमट | विशेष-विवरण |
|---|---|---|---|---|
| सिलिका | $SiO_2$ | ९२·३० | ८०·५५ | यह रासायनिक बनावट अमेरिका के 'मेरीलैण्ड' राज्य के भूमि की है। |
| अल्युमिना | $Al_2O_3$ | ३·२० | ८·८२ | |
| लोहे के मिश्रण ( आॅइरन आॅक-साइड ) | $Fe_2O_3$ | ·९१ | २·६७ | |
| फॉस-फोरस पेन्ट ऑफसाइड | $P_2O_5$ | ·०५ | ४· | |
| चूना ( लाइम ) | $CaO$ | ·४१ | ·४७ | |
| कारबन डाय ऑकसाइड | $CO_2$ | ·०८ | ·०५ | |
| मैगनीज़ियम ऑकसाइड | $MgO$ | ·३५ | ·२९ | |
| सोडियम ऑकसाइड | $Na_2O$ | ·५० | ·४९ | |
| पोटैशियम ऑकसाइड | $K_2O$ | ·५० | १·२२ | |

From :—(F. P. Veitch) "The chemical composition of mary land soils"—mary land Agri. Exp. Sta. Bul. 70 (1901)

यदि इन उक्त दोनों प्रकार की भूमियों को तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय। तो ज्ञात होता है। कि हल्की-दूमट के क़िस्म के धरातल में भारी-दूमट के क़िस्म के धरातल की अपेक्षा 'सिलिका' का अंश अधिक है, और अल्युमिना तथा लोहे के मिश्रण न्युनांश में हैं। इससे साफ़ प्रकट है, कि भारी-दूमट यद्यपि हल्की-दूमट से सिलिकांश में कम है; तथापि अल्युमिना और लोहे के मिश्रण में अधिकांश है।

अब हम पाठकों को जानकारी के लिये पृथ्वी के माध्यमिक (औसतन) रासायनिक-संघट्टन की एक सारिणी और दिये देते हैं। इससे खनिजांश के भाग का और खुलासा हो जायगा। क्योंकि इस सारिणी के विश्लेषण में सृष्टि के समग्र धरातलों की भूमियों का विश्लेषण किया गया है।

पृथ्वी के धरातल का माध्यमिक (average) रासायनिग संघट्टन

| खनिजांश | वैज्ञानिक चिन्ह | मात्रा |
|---|---|---|
| सिलिका | Sio२ | ५९.३६ |
| अल्युमिना | Al२o३ | १४.८१ |
| लोहे के मिश्रण | Fe२o३ | ६.३४ |
| फॉसफोरस पेन्ट ऑकसाइड | P२o५ | .२९ |
| चूना | Cao | ४.७८ |
| मैगनी शियम ऑकसाइड | Mgo | ३.७४ |

| | | |
|---|---|---|
| सोडियम ऑक्साइड | $Na^{o}$ | ३·३२ |
| *पोटैशियम ऑक्साइड | $K_2{}^{o}$ | ७·९८ |

यद्यपि हम लोगों ने खेतों के बारे में जैसे धरातल, गर्भतल का पूरा ज्ञान तथा इन धरातलों के स्थानानुसार नाम, क़िस्में इत्यादि के बारे में भली प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर लिया है। और यह भी जान लिया है। कि कौन कौन से खेत भूमि की क़िस्म के अनुसार हमारी खेती के काम के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं— अथवा उन खेतों को किस प्रकार से हम अपनी खेती के काम के लिये अच्छा बना सकते हैं। तथापि यह समझ लेना चाहिये कि हमारे खेतों की सारी अच्छाई तथा उत्तमता और उर्वरा-शक्ति हमारी जुताई ही के ऊपर निर्भर है। इसलिये हमने सब से पहिले "जुताई" से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले, और सब से मुख्य अंग 'खेतों' के विषय में यह यथोचित वर्णन किया है; क्योंकि चाहे हमारे पास हल, बैल इत्यादि सारी आवश्यक वस्तुयें क्यों न पर्याप्त हों। यदि खेत नहीं है; तो कुछ काम नहीं चलता है। आजकल के ज़माने में खेतों का मिलता भी मुश्किल हो रहा है। क्योंकि जो लोग जिन खेतों में खेती कर रहे हैं। उनका उस खेत को छोड़ देना अब अत्यन्त ही कठिन काम है। बहुत से लोग गावों में तथा देश में ऐसे पाये जाते हैं। जो कि 'कृषि' करने के लिये लालायित हैं, और उनके पास धन तथा विद्या भी है। परन्तु बिना खेतों के कोई काम सिद्ध नहीं हो रहा है। इस-

* From.—U. S. geological survey Bul. 491(1911)

लिये हम लोगों को खेतों के बारे में तथा उसकी मिट्टी के बारे में भली प्रकार से जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् यह जानना आवश्यक हो जाता है। कि इन खेतों और मिट्टियों को हमारी जुताई के कर्म्म से क्या सम्बन्ध है ? यह सम्बन्ध कैसा घना है? और इन खेतों में जुताई क्यों की जाती है ? भिन्न-भिन्न समयों में जुताई करने का क्या उद्देश्य और कारण है। इन सब बातों का पूरा ज्ञान भी हम लोगों के लिये उतना ही आवश्यक है। जितना कि मिट्टी और खेतों के बारे में ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

इसी कारण से अब हम इस विषय को यहीं पर समाप्त करके अब जुताई के ही विषय पर प्रकाश डालेंगे। यद्यपि जुताई का विषय यहीं से आरंभ नहीं हो जाता है। क्योंकि जिस प्रकार से हमने खेतों की मिट्टियों के विषय में ठीक रीति से सिलसिलेवार सारी बातों के समझाने का प्रयत्न किया है। उसी प्रकार से जुताई के अंगों पर भी पूर्ण रीति से आगे विचार किया जायगा। यहां पर हम जुताई के विषय को खेत के विषय से कुछ आवश्यक सम्बन्ध बतलायेंगे। क्योंकि अब खेत का विषय यहीं पर समाप्त हो जायगा, और जुताई के अन्यान्य विषय आरम्भ होंगे।

इसके बतलाने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत हो रही है, कि मैं यह कहूँ। कि खेती से अधिक उपज अथवा पैदावार के लिये खेतों का अच्छा होना बहुत ही आवश्यक है—अर्थात पैदावार का दारोमदार खेतों की ही अच्छाई पर निर्भर है। यद्यपि खेत बहुत ही उपजाऊ है। उसकी मिट्टी भी कृषि के लिये उत्तम

है। उसमें खाद-पांस भी खूब पड़ रही है, रखवाली भी की जा रही है। तथापि वह खेत जब तक जुताई के नियमों के अनुसार ठीक रीति से समयानुसार नहीं जोता जायगा, और जुताई की वे सारी बातें जो कि ऋतु के अनुसार खेतों में बर्तनी चाहिये, नहीं बर्ती जांयगी। तो खेत से वास्तविक उपज कभी भी नहीं प्राप्त की जा सकती है। यह बात दूसरी है, कि खेत अपनी उर्बरा-शक्ति के कारण अथवा अन्य कृषि-कर्म्मों को ठीक रीति से करने पर पैदावार अच्छी दे दे। परन्तु हमारा कहना केवल इतना ही है। कि यदि जुताई का महत्व जान करके हम खेतों की जुताई करेंगे। तभी अच्छी पैदावार हम अपने खेतों से प्राप्त कर सकेंगे।

यह बात हम बिना संकोच के कह सक्ते हैं। कि हमारे देशवासी किसान अपने खेतों की जुताई शतांश में भी जुताई के नियमों तथा उद्देश्यों के अनुसार नहीं करते। वास्तव में ये लोग जुताई के महत्व से परिचित ही नहीं हैं, और न इनके पास जुताई के वास्तविक यन्त्र ही मौजूद हैं। हमारे देखने में यही आया है। कि जब पानी बरसा और खरीफ़ की फ़सलों के बोने का दिन आ गया। तो यह किसान अपने देशी हलों को ले जाकर के खेत में दो चार जुताई बमुश्किल तमाम करके फ़सलों को बो देते हैं। इतनी जुताइयाँ तो वे किसान करते हैं। जो कि अच्छे किसान हैं। नहीं तो एक या दो जुताई बस है।

इसी प्रकार से 'रबी' की फ़सल के विषय में भी हाल है। प्रायः हमारे देश में तो कृषि-कर्म्म के जुताई के इस अंग को देखते हुये

और इस पर विचार करते हुये तो यही कहना पड़ता है। कि कुछ नहीं हो रहा है। न निकट-भविष्य में कुछ होने की संभावना ही दीखती है। आजकल के समय में जब हम जुताई के विषय पर प्रकाश डालते हैं, और उस जुताई से हम अपने देश की जुताई की तुलना करते हैं, तो शोक-सन्तप्त हो जाते हैं। मेरे लिये-चारों ओर से स्तब्धता का ही दृश्य दृष्टि-गोचर होने लगता है। कुछ समझ में नहीं आता। केवल ईश्वर से यही प्रार्थना कर सक्ता हूँ कि हे ईश्वर! हमारे देश-वासियों को भी ज्ञान दे। कि वे भी कृषि-विज्ञान के ज्ञान से भला कुछ तो परिचित हो जांय।
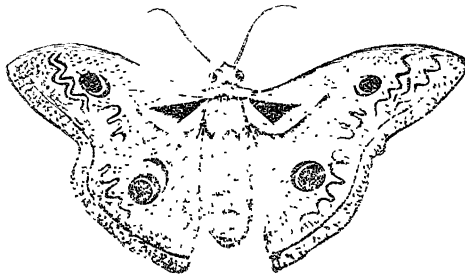
# जुताई

ताई शब्द यद्यपि यहाँ पर पारिभाषिक नहीं है। तथापि विचारणीय अवश्य है; कि इस शब्द की उत्पत्ति कैसे और क्यों हुई। क्यों के जब हम कृषिकर्म्म के अन्यान्य कामों के नामों पर विचार करते हैं; और उन नामों के साथ जुताई के नाम की तुलना करते हैं, तो बड़ा रहस्यमय भेद पाते हैं। जैसे कि बीज बोने के काम को बुवाई तथा सींचने के काम को सिंचाई, निकाई-गुड़ाई के काम को निकाई, गुड़ाई और फ़सल के काटने के काम को कटाई इत्यादि वास्तविक नाम दिया गया है। इसी प्रकार से अँगरेज़ी भाषा में हल को 'प्लाऊ' कहते हैं, और इस प्लाऊ से जो काम किया जाता है, उसे 'प्लाइङ्ग' ( जुताई ) कहते हैं। ऐसे ही 'हैरो' से जो काम किया जाता है, उसे 'हैरोइङ्ग' कहते हैं। कहने का तात्पर्य्य यह है कि अधिकतर कृषि-कर्म्म के सारे नाम कृषि-यंत्रों से अवश्य ही सम्बन्ध रखने वाले होते हैं। चाहे वह अँगरेज़ी भाषा के हों, चाहे हिन्दी-भाषा के अथवा अन्यान्य भाषाओं के।

परन्तु, हमारे हलों से जो काम किया जाता है, उससे और जुताई शब्द से बड़ा भेद है, क्योंकि यदि हमारे खेतों में फ़सलों के द्वारा अन्न उत्पन्न करने को तथा दूसरे कामों को भी खेती ही नाम दिया गया है। जब खेत से सम्बन्ध रखने वाले कामों से भी खेती शब्द की उत्पति हुई। तो भला हल से सम्बन्ध रखने वाले काम को क्यों जुताई कहा गया? वास्तव में ही जुताई शब्द यहां पर विचारणीय है; क्योंकि जैसे खेती के सारे काम अवश्य ही अपने यन्त्रों (औज़ारों) के नामों से मिलते-जुलते हुये होते हैं। उसी प्रकार से हल का सम्बन्ध-वाचक काम का नाम हलाई है। क्योंकि हल के ही द्वारा खेत हलाइयो में विभाजित करके जोते जाते हैं, और हल के जोतने वाले को भी हल के ही सम्बन्ध से हलवाहा या हरवाह कहा करते हैं। इन विचारों से जुताई शब्द हल से कोई सम्बन्ध रखने वाला, तथा उसके सम्बन्ध से इस शब्द की उत्पत्ति की कोई वास्तविक बात नहीं मालूम होती है। इन्हीं कारणो से मेरा यह विचार तथा पक्का विश्वास भी है, कि जुताई शब्द कृषि-कर्म्म का एक स्वतंत्र शब्द है; इस शब्द का सम्बन्ध किसी यंत्र विशेष से न है। न हो सकता है। इस शब्द की रचना तथा उत्पत्ति पर हमने बहुत दिनों तक विचार तथा मनन किया कि इसकी उत्पत्ति कैसे हुई; तो बहुत दिनों तक इस विषय पर कुछ निर्णय ही न कर सके। परन्तु अब अन्त में मैंने इस विषय का निर्णय कर लिया है। मेरा निर्णय पाठकों तथा कृषि-विज्ञान-विशारदों की जानकारी के लिये; और वास्तविक अर्थ के विचारार्थ निम्न लिखित है।

मेरे विचार से जुताई शब्द जुदाई का अपभ्रंश (बिगड़ा हुआ, परिवर्तित) है। जुदाई का अर्थ दो वस्तुओं को अलग अलग कर देना है। इसी अर्थ से अर्थात खेतों की मिट्टी को और उसके कणा को हल द्वारा जोत कर अलग अलग कर देने को ही जुताई नाम स्यात् हमारे देश के प्राचीन कृषि-वैज्ञानिकों न दे रक्खा था। क्योंकि जिन्ही दो पदार्थों के बीच में, जिनका कि संयोग हो; तीसरी वस्तु किसी प्रकार से उनके इस संयोग को तोड़-फाड़ लगावे, तो अवश्य ही इस तोड़-फाड़ से उन दोनों पदार्थों में जुदाई हो जायगी, और इस जुदाई के हो जाने से तोड़-फाड लगाकर जुदाई करा देने वाला व्यक्ति मनमानी इन जुदे जुदे पदार्थों से अपना स्वार्थ साधन कर सकता है। यह तो सभी लोग जानते हैं कि जब दो पदार्थों में चाहे वे जीवधारी हों, चाहे निर्जीव, जब तक उन दोनों में मेल रहेगा, तब तक उनके द्वारा कोई भी उनको हानि पहुँचाकर लाभ प्राप्त नहीं कर सकता। परन्तु जब इनमें कोई तोड़-फोड़ लगाकर जुदाई करा देता है, तो जुदाई करा देने वाला व्यक्ति अवश्य ही उन दोनों की जुदाई के कारण अपना स्वार्थ-साधन कर सकता है।

इसी प्राकृतिक सिद्धान्तानुसार हमारे पूर्वज कृषि-वैज्ञानिकों ने खेतों की मिट्टी में जुताई करा करके खेतों की मिट्टी से अपना स्वार्थसाधन किया करते थे, अर्थात फ़सले बो कर धन-धान्य पैदा करते थे; और जितने ही जुदे २ हमारे खेतों की मिट्टी के कण रहते थे, उतना ही अधिक लाभ उपज के रूप में, जुदाई कराने वाले

इसी प्राकृतिक सिद्धान्तानुसार हमारे पूर्वज-कृषि-वैज्ञानिकों ने खेतों की मिट्टी में जुदाई करा करके खेत की मिट्टी से अपना स्वार्थ-साधन किया करते थे, अर्थात फ़सलें को कर धन-धान्य पैदा किया करते थे; और जितने ही जुदे-जुदे हमारे खेतों की मिट्टी के कण रहते थे, उतना ही अधिक लाभ उपज के रूप में, जुदाई कराने वाले किसान हमारे खेतों से प्राप्त किया करते थे। हमारे विचार से इसी कारण वश खेतों की मिट्टी को हल द्वारा तोड़ मरोड़ कर तथा चीर-फाड़ कर अलग अलग कर देने को ही जुदाई नाम दिया गया था, और हल द्वारा खेतों को कुछ भागों में विभाजित करके, इन विभाजित हुये टुकड़ों को हलाई नाम दिया गया था। जो आज तक कृषि-कर्म्म के व्यवहार में प्रचलित है। परन्तु धीरे धीरे जैसे शिक्षित समुदाय से कृषि-व्यवसाय विलग होकर अशिक्षितों के हाथों में आता गया; वैसे ही वैसे इसमें अनेकों परिवर्तन होते गये। इसी परिवर्तन के फल-स्वरूप जुदाई शब्द भी परिवर्तित होकर अब जुताई होगया है। वास्तव में मेरे विचार से जुताई शब्द जुदाई का अपभ्रंश है। विचारपूर्वक मनन करने से तथा कृषि-कर्म्म के ऊपर ऐतिहासिक दृष्टि से ध्यान देने से यह बात सहज में ही ध्यान में गड़ जाती है, कि अशिक्षित जनता द्वारा तथा सहस्त्रों वर्षों से कृषि-कर्म्म में संशोधन तथा परिवर्तन न होने के कारण 'द' अक्षर के स्थान में 'त' अक्षर का व्यवहार में लाना कोई आश्चर्य्यजनक बात भी नहीं है। क्योंकि ये दोनों अक्षर एक ही वर्ग के अर्थात तवर्ग' के समीपवर्ती अक्षर हैं। किसानों

द्वारा 'द' के स्थान में 'त' का बोलना भी कोई नवीन बात नहीं हो सकती है, क्योंकि वर्तमान कालीन किसान तथा हलवाह 'हल' को 'हर' कहा करते हैं, और हलवाह को हरवाह। इसी प्रकार से बहुत से शब्द हैं, जिन्हें कृषक-समाज ने अपनी सुविधा के अनुसार परिवर्तित कर लिया है। साहित्यिक-दृष्टि से परिवर्तन होने का ज़माना वही है। जब कि प्राकृत भाषा का भारत में जन्म हुआ था। जैसे किसान-समुदाय बोने के बीज को 'बिआ, बिसार तथा कृषि को खेती, खलिहान का खरिहान कहा करता है। इसी प्रकार से पंडितों द्वारा जुदाई शब्द किसानों में जुताई के नाम से व्यवहार में आने लगा।

अब हम इस स्थान पर जुताई शब्द को पारिभाषिक कह सकते हैं। साधारणतया हमारे देश-वासी किसान जुताई से इतना ही अर्थ लिया करते हैं, कि हलों से खेत की मिट्टी जुदा जुदा कर दी जाय, तथा मिट्टी को हलों से बार बार जोत कर जुताई द्वारा इस प्रकार से नरम और भुरभुरी कर दी जाय, कि पर्याप्त मात्रा में नमी के मिलने से फ़सलों के बीज खेतों में बोये जाने पर अंकुरित हो सकें। अर्थात् उसमें अंकुर निकल आवे, और सब अन्य कृषि-कर्म्मों के ठीक तथा उचित रूप से होने पर वे बढ़ कर फल फूल के रूप में पैदावार दे सकें। परन्तु मेरे विचार से इस वैज्ञानिक युग में केवल उल्लिखित अर्थ ही जुताई का वास्तविक और मुख्य अर्थ नहीं है। क्योंकि जब हम देश देश के तथा मुख्यतः विशेष करके पश्चिमी देशों की उन जुताईयों पर दृष्टि डालते हैं।

जो कि वर्तमान काल में उन हलों से की जाती हैं। जो कि वैज्ञानिक दृष्टि से वैज्ञानिक रीत्यानुसार आविष्कृत किये गये हैं। तो पश्चिम देशों की जुताइयों के मुक़ाबिले में तुलनात्मक दृष्टिसे देखने से हमारे देश की जुताई वास्तविक जुताई नहीं कही जा सकती और इसी कारणवश हमारे देशी हल भी पूर्ण हल नहीं कहे जा सकते। क्योंकि इन हलों के द्वारा ऐसी जुताई नहीं की जा सकती जो कि वर्तमान काल में सांसारिक जुताइयों को, दृष्टिगत रखते हुये जुताई के मुख्यार्थ को यह चरितार्थ कर सकें। यह बात दूसरी है, और माननीय है, कि भारत-भूमि उर्वरा ( उपजाऊ ) है। प्राचीनकाल में केवल इन्हीं हलों के द्वारा धरातल के आधे ही भाग को अर्थात लगभग पांच-छः इंच ही जोतकर हमारे देश-वासी पर्याप्त अन्न पैदा कर लिया करते थे, जो कि उस काल में भारत-राष्ट्र के लिये आवश्यक था। अर्थात खान-पान तथा यज्ञों के लिये परिपूर्ण था। अतएव, जब हम उस प्राचीन काल को सामने रख कर बातचीत करें, तो कह सकते हैं। कि उस काल के अनुसार यह जुताई वास्तविक जुताई थी, और यह हल पूर्ण हल थे।

वर्तमान-काल में वही हल पूर्ण हल कहे जा सकते हैं। जो कि कम से कम खेत के धरातल को तथा गर्भतल का कुछ भाग अपने फारों द्वारा खोद कर उखाड़ते-पखाड़ते हुये, धरातल की मिट्टी को उलट पुलट दें —अर्थात खेत के धरातल तथा गर्भतल तक की मिट्टी हलों द्वारा उखाड़-पुखाड़ कर तथा तोड़-मरोड़ कर भली

प्रकार से उलट-पुलट कर तले ऊपर कर दी जाय; जिससे जुताई का अर्थ सिद्ध हो जाय, इतना कर देने पर भी किसी खेत की जुताई का मुख्य अर्थ पूरा नहीं किया जा सकता। उक्त परिभाषा तो केवल जुताई शब्द की कही जा सकती है। खेत की जुताई का वह अर्थ जिससे हमारे फ़सलों की वास्तविक तथा अधिक से अधिक उपज हो सके, तथा कृषि-कर्म्म का पूरा अर्थ सिद्ध हो सके, दूसरा ही है क्योंकि जुताई का काम भिन्न भिन्न फ़सलों के अनुसार भिन्न भिन्न समयों में भिन्न भिन्न हुआ करता है। कृषि-उपकरण की दृष्टि से जुताई का काम विशेष महत्व रखता है, और विशेष उद्देश्य से किया जाता है। अब आगे हम जुताई के उद्देश्य और महत्व पर विचार करेंगे।

## जुताई का महत्व

जब हम जुताई के महत्व पर दृष्टि डालते हैं। तो वास्तव में ही हम जुताई के कर्म्म को अन्यान्य कृषि-कर्म्मों की अपेक्षा अत्यन्त महत्वशाली पाते हैं। क्योंकि जुताई के सिवाय यद्यपि सिंचाई, कटाई, निकाई गुड़ाई इत्यादि कृषि-कर्म्म के आवश्यक और उपयोगी अंग हैं; तथापि हम यह देखते हैं कि हमारे देश तथा संसार में बहुत से ऐसे भू-भागों में कृषि की जाती है, जहाँ सिंचाई के साधन प्राप्त नहीं हैं; वहाँ केवल किसान लोग खेतों को जोतकर बीज बो देते हैं; और फ़सलों के काटने के समय पर ही फिर खेत में जाते हैं, और फ़सलों को काटते हैं, और उनसे जो कुछ पैदावार हो जाती है, उससे अपना जीवन-निर्वाह करते हुये अन्य आव-

श्यक कामों को भी करते हैं। इससे मालूम हुआ कि खेत के अन्य काम जुताई की अपेक्षा यद्यपि आवश्यक और उपयोगी हैं सही; और उनके द्वारा पैदावार भी बढ़ सक्ती है, और पैदावार अधिक होती भी हैं, परन्तु तो भी यदि यह कार्य जुताई बुवाई के पश्चात नहीं भी किये जाते हैं; तो हमें कुछ न कुछ पैदावार अवश्य ही अपनी खेती से मिल जाती है, जो कि किसी न किसी प्रकार से हमारी आवश्यकताओं को पूरा ही कर देती है।

परन्तु, कृषि-वाणिज्य के संसार में यह कहीं भी न देखा न सुना गया है, कि बिना खेतों की जुताई किये हुये ही उसमें बीज बो दिया जाय, और कुछ न कुछ पैदावार हासिल कर ली जाय, यह बात दूसरी है कि खेतों की जुताई करके उसमें बीज बो दिया जाय, तो सिंचाई करके तथा बाद को भी रासायनिक कृत्रिम खादें डाल कर और रखवाली इत्यादि करके, अच्छी या साधारण पैदावार हम अवश्य हासिल कर सकते हैं। पर, यदि खेतों की जुताई न की जाय, और उत्तम से उत्तम बीज खेतों में खूब खाद डाल कर क्यों न बो दिये जाँये; और सिंचाई, निकाई भी समयानुसार उचित समय पर तथा ठीक रीति से करके फ़सलों की रखवारी करके उसे हम काट-मांडकर यदि उत्तम पैदावार की आशा करें, तो यह आशा वास्तव में मृग-तृष्णा के समान व्यर्थ है।

इससे सिद्ध होता है कि चाहे उत्तम से उत्तम उन्नति प्राप्त सुधारे हुए छँटे छँटे बीज बोने के लिये क्यों न मिल जाँये और-

उत्तम से उत्तम हर प्रकार की खादें भी अधिक मात्रा में क्यों न प्राप्त हों, तथा अन्याय प्रकार के अन्य सारी सुविधायें ही क्यों न समयानुसार उपस्थित हो जावें। परन्तु बिना खेतों की उत्तम प्रकार से जुताई किये हम खेतों से किसी भी फ़सल से अच्छी पैदावार नहीं प्राप्त कर सकते। इन उक्त कारणों से और बातों से ज्ञात हुआ कि जुताई कैसा आवश्यक कृषि-कर्म्म है।

खेती करने का मुख्य उद्देश्य यही है कि खेतों में से फ़सलों के द्वारा अधिक से अधिक अन्न उत्पन्न किया जावे; और खेत की मिट्टी में निर्बलता न आने पावे। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये खेतों की सर्व प्रथम जुताई ही करना एक आवश्यक काम है; और यह जुताई का काम फ़सलों के बोने से पहिले ही आरम्भ होता है, और जब भली प्रकार से फ़सलों के योग्य उपयुक्त और पर्याप्त जुताई के द्वारा खेत तैयार हो जाता है, तब कहीं बीजों की बुवाई होती है। तब भी इस बुवाई के पश्चात् भी फ़सलों से अधिक पैदावार प्राप्त करने के हेतु किसी न किसी रूप में जुताई का काम होता ही रहता है; जैसे निकाई, गुड़ाई कर के खेतों को भुरा-भुरा कर देना भी एक प्रकार से जुताई के ही उद्देश्य को पूरा करना है। आज कल तो उन्नति प्राप्त रीतियों पर जहां कृषि की जा रही है, और वैज्ञानिक-कृषि यन्त्रों का प्रयोग और व्यवहार उन स्थानों की खेती के कामों में हो रहा है; वहां पर बीज बोने के पहिले ऐसे ऐसे विशेष प्रकार के हलों से जुताई कर के खेतों को तैयार किया जाता है। जिसका वर्णन आगे किया जायगा।

इसके सिवाय बीज बोने के पश्चात भी खड़ी फ़सलों में भी जुताई की जाती है, जिससे निकाई गुड़ाई का मतलब भी सिद्ध हो जाता है, और जुताई भी हो जाती है; खड़ी फ़सलों में जुताई करने के लिये बहुत से नवीन यंत्र आविष्कृत हुये हैं।

इससे ऐसा कहना ठीक न होगा। कि जुताई का काम केवल बीज के बोने के पहिले ही खेतों में किया जाता है, इसके पश्चात जुताई की कोई भी आवश्यकता खेतों को फ़सलों की उपज की दृष्टि से नहीं रह जाती। वरन् फ़सलों की उपज की दृष्टि से जुताई का काम केवल बीज के बोने के पहिले ही तक खेत में नहीं किया जाता, बल्कि बीज बोने के पश्चात भी अन्यान्य कृषि-कर्म्मों के साथ साथ जुताई का काम खेतों में होता रहता है। यद्यपि इन कामों का नाम निकाई-गुड़ाई है; तथापि ये सारे काम जुताई ही के अन्तर्गत हैं; क्योंकि इनसे जुताई ही का अर्थ सिद्ध होता है। मेरे विचार से एक प्रकार से किसी न किसी रूप में साल के आरंभ से अन्त तक फ़सलों के लिये जुताई करते रहना पड़ता हैं। जिससे कि हम अन्य मार्गों द्वारा जो खुराक़ के पदार्थों खेतों में पौधों के लिये पहुँचाते हैं, वह पौधों को हासिल हो जाय।

वास्तव में ही जुताई का काम कृषि-कर्म्म का दृष्टि से बड़े महत्व का काम है; बिना इसके पूर्ण रूप से किये हुये हमें वास्तविक उपज नहीं मिल सकती। मेरा तो यह विश्वास और अनुभव है कि यदि खेतों की जुताई भली प्रकार से उचित समय

पर ठीक रीति से की जाय। अर्थात फ़सलों की दृष्टि से खेतों को भली प्रकार से जोतकर के तैयार किया जाय; और इसमें जीवधारी बीज चाहे उत्तम न भी हों, वो दिये जाँय, तो अच्छी पैदावार हो सक्ती है। क्योंकि यह बात तो ठीक ही है, कि यदि बीज अच्छा होगा। तो उसका पौधा भी मज़बूत और अच्छा होगा। परन्तु यदि बीज दुर्बल भी है; और उसमें जान मौजूद है—अर्थात वह खेत में उग सक्ता है तो जुताई के कारण पर्याप्त परिमाण में वह बीज ख़ूराक़ खाकर के अपने पौधे को मज़बूत करके अपनी सन्तान को भी मजबूत बना सकता है; और इसी प्रकार से बीजों का सुधार और चुनाव भी हुआ है। साथ ही साथ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये, कि खाद चाहे न भी दी जाय परन्तु फ़सलों के हेर-फेर अर्थात दौरकर (Rotation) उचित-रूप से होना अनिवार्य्य है।

खेत की मिट्टी में प्रकृति ने पौधे की ख़ूराक का अधिकांश भाग अदृश्य रूप से जमाकर रक्खा है। ख़ूराक का यह अधिकांश भाग खेत की मिट्टी में इस दशा में नहीं पाया जाता, कि पौधे उसे अपने काम में ला सकें—अर्थात् उसको भोजन के रूप में ग्रहण कर-सकें, जैसे कि जो अन्न खेतों से मनुष्यों के लिये प्राप्त होता है। जब तक वह साफ़ करके तथा बीनबान करके पीस-पो कर के उत्तम रीति से तैयार नहीं कर लिया जाता, तब-तक मनुष्य-समाज उन अन्नों को कच्चे रूप में भोजन नहीं कर सकता, ।ठीक यही हाल फ़सलों के पौधों का भी है; कि खेत की भूमि का सारा

भोजन पदार्थ जब तक पक्की दशा में पौधों को प्राप्त नहीं होता। तब तक वे उसे ग्रहण नहीं कर सकते। मिट्टी के इन भोजन पदार्थों के ढेर को पौधों के लिये उपयुक्त तथा पक्का बनाने के लिये खेत की मिट्टी में ताप (गर्मी) और हवा के पूर्ण मात्रा में पहुँचाने की आवश्यकता होती है। इसी कारण से खेत को भली प्रकार से जोता जाता है, जिससे खेत के गर्भतल तथा धरातल में वायु भली प्रकार से प्रवेश कर सके, और जोतने से खेत की मिट्टी के नीचे का भाग उलट-पुलट जाने पर ऊपर आ जाय; और उसमें सूर्य्य की गर्मी का भली प्रकार से प्रभाव पड़ सके, तथा खेत की जुती हुई पोली ज़मीन में सूर्य की किरणें भली प्रकार से प्रवेश कर सकें, जुताई के इस व्यावहारिक-कार्य से खेत की मिट्टी में अनेकों भौतिक और रासायनिक परिवर्तनों के कारण भूमि के अन्तर्गत अदृश्य खाद्य पदार्थों का ढेर उपयोगी दशा में परिवर्तित हो जाता है; जिससे फ़सल के पौधे उसे खूराक के रूप में ग्रहण कर सकते हैं, और इस कारण उपज में वृद्धि होती है। इसी प्रकार बहुत सी अन्यान्य उन क्रियाओं को भी पौधों के लिये भोजन-समान को जुटा देने का मौक़ा हासिल हो जाता है, जो कि भूमि में उन जीवाणुओं द्वारा हुआ करती हैं। जो कि कृषि के लिये खेतों में नत्रेत (Nitrate) का संग्रह किया करते हैं; और जीजन-शक्तियां भी बहुत से भोजन-पदार्थों को छिजा करके उन पदार्थों को पौधे के लिये उपयुक्त-भोजन पदार्थ बना दिया करती हैं। इन सारे कामों को खेतों में उचित रूप से होने के लिये खेतों की

जुताई उत्तम रीति से करनी पड़ती है, जिससे खेतों के धरातल तथा गर्भतल में ताप और वायु भली प्रकार से प्रवेश कर के उन जीवाणुओं को ऐसा मौक़ा दे। जो कि "नत्री भवन" (Nitri fication) की क्रिया को उचित रूप से कर सकें; यदि खेतों की जुताई ऐसे समयों पर नहीं की जाती है, अथवा नहीं की गई है; जब कि ये 'जीवाणु' खेतों में "नत्री भवन" की क्रिया आरंभ करते हैं। तो उसका फल यह होता है; कि दूसरे प्रकार के जीवाणु जो कि 'नत्रेत के विरेचन का काम करते हैं, अपना काम आरंभ कर देते हैं, इस कारणवश खेती की फ़सल के लिये अत्यन्त ही लाभदायक भोज्य पदार्थ जो कि पौधों को 'नत्रजन' की अवस्था में से परिवर्तित होकर के नत्रेत की ( Nitrate) दशा में मिला करता है; नष्ट हो जाता है यहां पर "नत्रेत" (Nitrate) के विषय में इतना कह देना आवश्यक प्रतीत होरहा है। कि 'नत्र-जन' जिसे कि 'नत्रेत' की दशा में पौधे भूमि से घुली हुई दशा में प्राप्त करते हैं; पौधों के लिये एक आवश्यक पदार्थ है। आवश्यक ही नहीं नत्रेत फ़सलों के पौधों के लिये एक अनिवार्य्य भोज्य पदार्थ है; इसके न मिलने से हमारे पौधे ठीक प्रकार से बढ़ कर समयानुसार हमें उत्तम पैदावार नहीं दे सकते। क्योंकि यह भोज्य-पदार्थ वायुमंडल का एक अंश है; जिसे भूमि के अन्दर नत्रेत की दशा में परिवर्तित ( बदल जाना ) हो जाना, भूमि के अन्दर की एक रासायनिक-क्रिया है; जो कि जीवाणुओं द्वारा हुआ करती है। ये 'जीवाणु' जब खेत के धरातल की मिट्टी में अपना काम करने

लगते हैं, तो जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है; इन्हें पर्य्याप्त परिमाण ( मात्रा ) में, ताप और वायु की आवश्यकता हुआ करती है। यह ताप और वायु इनको उसी समय उचित रूप से पूर्ण तथा पर्याप्त मात्रा में मिल सकती है, जब कि हमारे खेत भली प्रकार से जुते हुये हों और उसमें सूर्य्य की किरणे तथा वायु भली प्रकार से प्रवेश कर सकें।

इसी प्रकार से जुताई का काम फ़सलों की पैदावार की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्वशाली है, जिसके विषय में उल्लिखित-पंक्तियों में विवेचन किया गया है। साथ ही साथ हम पाठकों से यह भी बतला देना चाहते हैं, कि जुताई के महत्व का पूर्ण रूप से विचार अभी तक वैज्ञानिक-संसार में हो भी नहीं सका है, कि जुताई कैसा महत्व-शाली कृषि-का काम है। क्योंकि फ़सलों की पैदावार की इस दृष्टि से कि पैदावार अधिक से अधिक मिले, नित्यशः जुताई के नियमों में समयानुसार परिवर्तन होता जा रहा है, क्योंकि प्रतिवर्ष सारे उन कृषि-क्षेत्रों में जो कि सरकार द्वारा इसीलिये स्थापित किये गये हैं, कि उनमें कृषि-कर्म्म के सारे कामों पर नये नये प्रयोग करके इस बात की जाँच की जाय, कि कौन कौन सी रीतियाँ, रस्म, रिवाजें, कृषि-यंत्र, बीज इस देश के लिये उपादेय हैं। कि जिनको कृषकों को अपने-व्यवहार में लाने से अधिक से अधिक पैदावार मिल सकती है, और भारत-राष्ट्र भी सम्पत्ति शाली हो सकता है।

इन्हीं सरकारी कृषि-विभाग के कृषि-क्षेत्रों पर प्रति वर्ष किसी

न किसी बहाने से जुताई के विषय में बहुत से नये नये प्रयोग प्रचलित वैज्ञानिक कृषि-यन्त्रों के व्यवहार द्वारा किये जाते हैं, और इन नये नये प्रयोगों के फलानुसार जो जो नई बातें जुताई के सम्बन्ध में फ़सलों की पैदावार की दृष्टि से ज्ञात होती हैं। उनका प्रचार कृषि-पत्रों तथा छोटी-छोटी पुस्तकाओं द्वारा ( Pamphelet ) डिमॉंस्ट्रेटर किया करते हैं। यदि इन सब मार्गों से लाभ उठाने का प्रयत्न हमारे देशवासी अन्य देशों की भांति करें। तो बहुत सी नई नई बातें जुताई के सम्बन्ध में .कसानों को मालूम हो सकती हैं। जिसके द्वारा किसान भी अपने फ़सलों की उपजमें वृद्धि कर सकते हैं।

किसान खेत तथा खलिहान में जितने भी काम करता है; प्रायः सबका अभिप्राय यही रहता है कि फ़सलों से पैदावार .खूब मिले, और वास्तव में इन्हीं कामों के ऊपर बहुत कुछ खेती की पैदावर निर्भर भी होती है। परन्तु तिस पर भी जो काम खेत में पैदावार की दृष्टि से किये जाते हैं; वही काम खलिहान की अपेक्षा अत्यन्त महत्व-शाली हैं। क्योंकि खलिहान में तो साधारणतया फ़सलों से साफ़कर के उपज का फल प्राप्त किया जाता है; कि उपज अच्छी हुई कि नहीं। और वास्तव में उपज तो खेतों ही में होती है, कि खेत जुताई इत्यादि के कामों से कितना बलिष्ठ था। खलिहान में तो फ़सलों को काट-पीट कर के साफ़ करने के पश्चात वास्तविक पैदावार का फल निकाला जाता है।

मेरे विचार से पैदावार का कम या अधिक होना खलिहान

के कामों पर निर्भर नहीं है। क्योंकि खलिहान में फ़सलों के आ जाने से इसी बात की शीघ्रता की जाती है कि किसी प्रकार से पैदावार हमें मालूम हो जाय; खलिहान में चाहे कितना ही उपाय भी क्यों न किया जाय, पैदावार बढ़ नहीं सकती है; क्योंकि जो कुछ अन्न व भूसा पैदा होना था, वह तो हो गया, इससे यह बात निश्चयात्मक रीति से कही जा सकती है कि पैदावार का कम या अधिक होना उन्हीं कामों के ऊपर निर्भर है जो कि खेत में किये जाते हैं, इसमें से मुख्य काम जुताई है जिसके अन्तर्गत सब ऋतुओं की जुताइयाँ शामिल हैं, और हैरोइङ्ग तथा निकाई, गुड़ाई, इत्यादि सारे काम इसी जुताई के अन्तर्गत हैं। खादों का डालना तथा सिंचाई इत्यादि का काम खेतों का माध्यमिक काम है। यद्यपि इन माध्यमिक कामों का भी हाथ खेती की पैदावार में विशेष रूप से संलग्न है। जिसके ऊपर खती की पैदावार बहुत कुछ निर्भर है। इसी से पैदावार की दृष्टि से खेतो के सारे कामों में जुताई के काम को अधिक महत्व दिया गया है।

जुताई ही को यह विशेष महत्व केवल इसलिये भी दिया जा सकता है कि खेती से अधिक से अधिक पैदावार प्राप्त करने के हेतु जितने काम खेती के सम्बन्ध में किये जाते हैं, वे प्रायः तीन श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं। और इन तीनों कामों का विभक्त करना कृषि के उन पौधों के ऊपर निर्भर है, जिन्हें कि हम फ़सलों के नाम से खेतों में बोकर के उपज प्राप्त करते हैं। पहिला काम तो वह है। जो कि फ़सलों के बीजों को बोने के लिये.

बीजों के बोने से पहिले ही खेतों में किया जाता है। जिसमें खेतों की जुताई ही करना मुख्य काम है, इसके सिवाय और जो काम बीजों के बोने के पहिले खेतों में किये जाते हैं। यद्यपि उनका नाम कृषि-कर्म्म के कोष में भिन्न भिन्न है। तथापि वह सारे काम जुताई के ही अन्तर्गत हैं, और जुताई ही के उपाँग है। उदाहरणार्थ इस काम में हैरो चला करके हैरोइंग करना, तथा फावड़े इत्यादि से खोदकर उनकी जुताई करना जिसे फावड़ों से गुड़ाई करना कह सकते हैं, शामिल है और जुताई ही के उद्देश्य से किया जाता है।

पटेला ( हेंगा, सरावन ) का चलाना भी जुताई ही का एक उपाङ्ग है। क्योंकि खेत की तय्यारी के हेतु जुताई के पश्चात पटेला चलाना ही पड़ता है; जिससे खेत के डले इत्यादि टूट जायं इससे खेतों में पटेला देना भी जुताई ही के अन्तर्गत है। दूसरा काम वह है, जो कि फ़सलों के बीज बोने के पश्चात् खेतों में किया जाता है, जिसमें सिंचाई, निकाई, गुड़ाई, हेरौइंग भी शामिल है है। इसमें से अधिकाँश काम जुताई ही की दृष्टि से किया जाता है। तीसरा काम खलिहान का है। जहाँ पर हमें पैदावार का फल प्राप्त होता है। इससे मालूम हुआ कि सारे कृषि-कर्म्मों का मुखिया कर्म्म जुताई कितना महत्वशाली है।

'जुताई' के महत्व पर भली प्रकार से विचार हो चुका, जिससे पाठकों को जुताई के महत्व के कारण खेतों में उत्तम जुताई करने के लिये प्रबन्ध करना चाहिये, और जुताई के कर्म्म पर विशेष प्रकार से ध्यान देना चाहिये। अब हम अपने पाठकों को जुताई के उद्देश्य के विषय में कुछ बातें बतलावेंगे, कि किन किन मुख्य

उद्देश्यों को रख कर जुताई की जाती है। अथवा जुताई करने के उद्देश्य क्या हैं।

## जुताई के उद्देश्य

कृषि-कर्म्म की दृष्टि से यही विचार में आता है। कि खेतों को जुताई करके उन्हें भली प्रकार से पोला और नरम बना दिया जाय, जिससे बरसात में भली प्रकार से हमारे खेतों की मिट्टी पानी को सोख सके, और जब इस प्रकार से पानी हमारे खेतों में भली प्रकार से धरातल तथा गर्भतल की मिट्टी में सोख जाने पर कणों (ज़र्रों) में रम जायगा तो, खेत के धरातल तथा गर्भतल के सारे भोज्य-पदार्थ पानी में घुल कर घोल की दशा में तैयार हो जांयगे, इसी प्रकार से जब बरसात में हम बराबर खेतों की जुताई करके खेतों में पानी को मिट्टी में सुखाते रहेंगे, और पौधों के लिये घोल की दशा में ख़ूराक तैयार करते रहेंगे, तो यह सारी ख़ूराक बरसात के पश्चात 'रबी' की जुताई के समय जुताई करने पर पक कर ऐसी दशा में तय्यार हो जायगी जो कि कच्ची न रहेगी—अर्थात 'रबी' की जुताइयों के पश्चात ख़ूराक घोल की दशा में इस प्रकार से परिवर्तित होकर तय्यार रहेगी जिसे कि फ़सल के बीज खेत की नमी पाकर के अंकुरित हो जांयगे, और जब यह अंकुर (क़ल्लें) बीज में जमा की हुई ख़ूराक को ख़तम कर देंगे। तो इनकी जड़े खेतों में से पानी में घुली हुई (घोल की दशा में) ख़ूराक को खींचने लगेंगी, और पौधे के तने के द्वारा अंकुर के पत्ते को पहुँचाने लगेगी, इस प्रकार से

जड़ें खेतों में, जब कि खेत पोला और नर्म होगा, तो जड़ें खूब तेज़ी से बिना किसी अड़चन के धरातल में चारों ओर फैल करके खूराक ग्रहण करके पौधों के अन्यान्य भागों को देने लगेंगीं।

इससे यह बात सिद्ध होती है कि फ़सलों के बीजों को खेतों में जमने के लिये खेत की मिट्टी का नरम तथा पोला होने के अतिरिक्त तर (नम) होना भी अनिवार्य्य है। बनस्पति-विज्ञान के द्वारा यह बात भी भली प्रकार से जांच कर के सिद्ध कर दी जा चुकी है; कि बीजों के जमने के लिये जिस प्रकार से नम (तर) और नरम मिट्टी का होना आवश्यक है; उसी प्रकार से बीजों को जमने के लिये तथा उग कर (जम कर) बढ़ने तथा फल-फूल देने के लिये पौधों के सारे भागों को पूर्ण मात्रा में ताप (गर्मी) तथा वायु (हवा) की भी आवश्यकता है। और जब तक ये सब प्रकार की वस्तुयें फ़सलों के बीजों को समयानुसार उचित मात्रा में प्राप्त न होंगी। तब तक बीज खेतों में उगकर तथा अंकुरित हो जाने के पश्चात भी फल-फूलों के द्वारा उपज नहीं दे सकते।

जिस प्रकार से जीवधारी पदार्थों के वर्ग में मनुष्य तथा पशुओं के गर्भाधान हो जाने के पश्चात् बच्चा लगभग नव मास तक माता के उदर के ही भोज्य पदार्थों से पाला पोशा जाता है, और जब गर्भ का समय पूरा हो जाता है, और बच्चा पैदा हो जाता है, तो पैदा होने के पश्चात् बच्चे को उसकी माता दूध पिलाती है, या कि बच्चे को गाय तथा धाय का दूध पिलाया जाता है, और इस प्रकार से बच्चा दूध रूपी खूराक़ से अपने शरीर के सारे अवयव

की दशा में अर्थात् पौधों की ख़ूराक के सारे भोज्य-पदार्थ जो कि खेत की मिट्टी में मौजूद रहते हैं। जब पानी के संयोग से तर हो जाते हैं, और उन पर ताप तथा वायु का प्रभाव पड़ता है, तो पानी के साथ मिलकर उसमें घुल जाते हैं, और इस प्रकार से सारा भोज्य-पदार्थ पानी के साथ तरल दशा में खेतों की मिट्टी के ज़र्रों में पाया जाता है; जिसे पौधों की जड़ें खींच खींच कर अपने व्यवहार में लाया करती हैं।

यहां पर ऐसी शंका तथा प्रश्न हो सकता है कि बीज में भला कहाँ ख़ूराक रक्खी रहती है? जिसे उगते समय बीजों के अंकुर अपने बीजों से ही ग्रहण किया करते हैं। इस सम्बन्ध में मैं यहां पर इतना ही कह देना पर्याप्त समझता हूँ कि सारे बीजों में जो चीज़ें आटे के रूप में अथवा तेल के रूप में पाई जाती हैं। जैसे गेहूँ, जौ, चना से आटा तथा सरसों, तिल के बीजों से तेल इत्यादि और जिन्हें हम अपने व्यवहार में लाते हैं, वास्तव में ये बीजों में इसलिए जमा की हुई रहती हैं, कि पौधे का बीज अगले साल अपनी सन्तानोत्पत्ति के समय इसे अपने काम में लावें, न कि हम स्वयं इसे अपने खाने में लावें। इन ख़ूराक के पदार्थों को हम अब सरलता से समझ सकते हैं, कि ये बीज में सदैव जमा रहते हैं। इसी प्रकार से बीजों में पौधों के अंकुर तथा जड़ें एवं पत्ते—अर्थात पौधों के वे सारे भाग जिन्हें हम पौधे की यौवनावस्था में देखते हैं, उसके गर्भकाल में भी ये बीजों के अन्दर पाये जाते हैं। परन्तु जब बीज खेत में भली प्रकार से नमी पाकर के अंकुरित

होता है। तो वह पहिले इसी ख़ूराक को ग्रहण करता है। बाद को इसके चुक जाने के पश्चात् पौधे के कल्ले ( अंकुर ) की जड़ें खेतों से तरल दशा में ख़ूराक ग्रहण करने लगती हैं।

इन सारी बातों के उल्लेख तथा विवेचन से मालूम हुआ कि बीजों के जमने के लिये तथा जम कर पौधे के अंकुर ( कल्ले ) को बढ़ने के लिये तथा बढ़कर फल-फूल देने के लिये नरम, पोली, नम ( तर ) भूमि का होना कितना आवश्यक है। इससे ऐसा समझना चाहिये कि जुताई का मुख्य उद्देश्य यह है कि खेत समयानुसार ठीक रीति से जोत कर इस प्रकार से नरम बना दिया जाय। कि बरसात के समय पानी भली प्रकार से खेतों में सीझे, और खेत की मिट्टी पानी को खूब सोख कर कुछ दिनों के लिये इतनी नम हो जाय। कि भूमि का सारा अनघुलनशील भोज्य-पदार्थ ताप और वायु के प्रभाव से घुलकर पानी के साथ तरल दशा में बीज के पौधों की जड़ों के ग्रहण करने योग्य हो जाय, और पौधे की ख़ूराक के तय्यार करने में सहायता पहुँचाने वाली ताप, तथा वायु आदि भौतिक-शक्तियाँ भली प्रकार से खेत के धरातल और गर्भतल में प्रवेश कर सकें। इसके सिवाय बहुत से जीवाणु (Bacteria) भी खेतों में ख़ूराक के तय्यार करने का काम करते हैं। उन्हें भी पर्याप्त मात्रा में वायु और ताप की आवश्यकता होती हैं। यदि खेतों की ख़ूब गहरी जुताई न होगी, तो ऊपरी उद्देश्य पूर्ण न होगा।

इस मुख्य-उद्देश्य के सिवाय—अर्थात खेतों की जुताई करने

से खेत की मिट्टी नरम तो हो ही जाती है। इसके सिवाय खेत की मिट्टी उलट-पलट भी जाती है—अर्थात खेत के नीचे की मिट्टी ऊपर को तथा ऊपर की मिट्टी नीचे को हो जाती है। जो कि जुताई के मुख्यार्थ को पूर्ण करती है, और मिट्टी का उलट-पलट जाना भी अत्यन्तावश्यक है। क्योंकि इस कारण से खूराक पौधों के लिये अधिक मात्रा में तैयार होती है। इसका प्रधान कारण यही है कि इन मिट्टियों का वारी वारी से ऊपर नीचे होते रहने से ताप और वायु तथा खूराक के बनाने में अन्य शक्तियों का असर खेत की मिट्टी पर भली प्रकार से हुआ करता है।

जुताई के करने से उपर्युक्त उद्देश्य तो सफल हो ही जाते हैं। इसके सिवाय वे सारे खरपतवार जो कि धरातल पर उगे रहते हैं और फ़सलों के पौधों की खूराक को खाकर के नष्ट-बर्बाद किया करते हैं। उखड़-पुखड़ जाते हैं। और बारम्बार की जुताई से खर-पतवारों की जड़ें भी उखड़ कर निर्मूल हो जाती हैं। इस प्रकार से खरपतवार का सारा भाग जुताई के कारण नीचे दब कर बरसात के महीने में सड़ जाता है, और खाद का काम देता है। यदि इन खरपतवारों को इनके वाल्यकाल में ही इन्हें निर्जीव करके नष्ट-बर्बाद नहीं कर दिया जाता, और ये फल-फूल देने योग्य हो जाते हैं, तो इनके फल-फूलों का भाग खेत में खरपतवारों की संख्या के बढ़ाने का एक प्रधान कारण हो जाता है। इसी प्रकार बहुत से खरपतवारों की वृद्धि का विशेष कारण उनकी जड़ें होती हैं; अर्थात कुछ खरपतवार ऐसे भी हैं। जिनकी जड़ों का यदि नामो

निशान भी खेत में जीवितावस्था में शेष रह जाय। तो. इन जड़ों के द्वारा उन खरपतवारों की फिर से वृद्धि होती है। इस प्रकार से बार बार ऐसे खरपतवार खेत में पहिली जुताई के पश्चात् उग आया करते हैं, और फिर उन्हें जोत कर खेत में दबाना पड़ता है। यदि ये खरपतवार खेत की तय्यारी के समय—अर्थात 'रबी' की जुताई के समय जोत कर खेत में मिला दिये जाते हैं, और पूर्ण रूप से सड़कर खाद नहीं हो पाते हैं; तो फ़सलों को हानि पहुँचाते हैं। क्योंकि इनके न सड़ने के कारण दीमक लग जाती है। इस कारण गहरी जुताई कर के खरपतवारों की जड़ों तक को खेत में सड़ा कर तभी चैन लेना चाहिये।

इन उद्देश्यों के सिवाय खेतों की जुताई का परमावश्यक एक उद्देश्य यह भी है कि यदि खेत वर्षा ऋतु के पहिले ही से खूब गहरे जुते हुये होंगे, और इन मिट्टियों में धूप का प्रभाव भली प्रकार से पड़ चुका होगा। तो पहिली ही वर्षा का सारा पानी, जिसमें कि फ़सलों की ख़ूराक का 'नत्रजन' सम्बन्धी आवश्यक भाग वायु मंडल से घुल कर आता है; खेतों में भली प्रकार से सोख तथा रम जाता है। इसी प्रकार से यदि खेतों की जुताई भली प्रकार से कर दी गई है, तो बरसात का सारा पानी हमारे खेतों में रम कर के तथा सूख कर पर्याप्त मात्रा में पौधों के लिये ख़ूराक बना सकेगा; और यदि खेतों की जुताई न हुई होगी, और खेत का धरातल कड़ा होगा, तो पहिली वर्षा का सारा पानी खेतों में जज़्ब न हो सकेगा, वरन् बह जायगा, जिससे पौधों की ख़ूराक की

दृष्टि से अत्यन्त ही हानि होगी। क्योंकि अनेकों स्थानों में इस बात का अनुभव किया जा चुका है। कि पहिली वर्षा के पश्चात् खेतों में 'नत्रीभवन' की क्रिया—अर्थात् नत्रते (nitrate) संचय का काम बहुत तेज़ी से होता है। यदि इस समय खेतों की दशा जुताई इत्यादि के कारण इस योग्य होगी। कि भली प्रकार से जीवाणुओं द्वारा ख़ूराक तैयार की जा सके, तो फ़सलों के पौधों के लिये ख़ूराक का आवश्यक 'नत्रेत' पर्याप्त मात्रा में तैयार होकर के संचय हो सकेगा। जो कि फ़सलों के पौधों के लिये अंकुरित होकर बढ़ने के लिये लाभकारी होगा।

यदि जुताई न हुई होगी तो सारा पानी खेत के धरातल से कड़ी भूमि होने के कारण बह जायगा; और इसके पश्चात् जुताई करने से जो कि वर्षा ऋतु में होगी, 'नत्रीभवन' (nitrification) की क्रिया पर्याप्त और उचित मात्रा में न हो सकेगी, इस कारण फ़सलों के पौधों के लिये, और विशेष कर के ख़रीफ़ की फसलों के लिये तो अवश्य ही 'नत्रेते' (nitrate) का भोज्य-पदार्थ पूर्ण मात्रा में पर्याप्त न हो सकेगा; इससे ख़रीफ़ की फ़सलें अच्छी पैदावार न दे सकेंगी; और 'रबी' की फ़सल के लिये भी 'नत्रेत' जिस मात्रा में बनना चाहिये न बन सकेगा।

खेतों की गहरी जुताई का एक उद्देश्य यह भी है। कि वायु (हवा) और ताप अर्थात सूर्य्य की किरणें भली भांति खेत के भीतर आया-जाया करती हैं। इनके आने-जाने में खेतों के जुते हुये होने से कोई बाधा उपस्थित नहीं होती, और यदि खेत जुता हुआ नहीं होता है

तो ये दोनों भौतिक-शक्तियाँ खेत की मिट्टी में अपना गहरा प्रभाव नहीं जमा सकती हैं। यद्यपि इन दोनों शक्तियों के विषय में कई स्थलों पर बहुत कुछ कहा जा चुका है; तथापि जुताई के उद्देश्य के सम्बन्ध में यहां भी इतना कह देना मुझे आवश्यक प्रतीत हो रहा है। कि इन दोनों शक्तियों के द्वारा पौधों की खूराक अधिकांश में तय्यार हुआ करती है; इसका प्रधान कारण यह है। कि खेतों में बहुत से ऐसे पदार्थ हैं, जो कि ऐसी अवस्था में हैं कि उनमें किसी भी तरह ऐसा परिवर्तन नहीं हो पाता है कि वे खूराक के ऐसे रूप में परिवर्तित हो सकें। जिसे फ़सलों के पौधे आसानी से ग्रहण कर सकें; और वास्तव में वे पौधों की खूराक के पदार्थ हैं। इस कारण इन्हें इस दशा में परिवर्तित कर देने के लिये जिस प्रकार से अन्यान्य भौतिक—शक्तियों की आवश्यकता हुआ करती है कि जिनके प्रभाव से ये पदार्थ छीज कर खुराक बन जाते हैं। उन्हीं भौतिक-शक्तियों में से वायु और ताप भी हैं। इनके प्रभाव से बहुत से ऐसे पदार्थ जो कि खेतों की मिट्टी में उपस्थित हैं। परन्तु खुराक के असली स्वरूप में अभी परिवर्तित (तबदील) नहीं हो पाये हैं। इनके प्रभाव से तथा आघात-प्रघात से उनमें अनेकों परिवर्तन हो जाते हैं। जिससे वे खूराक की दशा में परिवर्तित हो जाती हैं; और पौधे उन्हें सरलता से ग्रहण कर लेते हैं। क्योंकि यह अनुभव हम सहज ही में हमेशा किया करते हैं कि ताप से बहुत से ठोस पदार्थ तप्त होकर तरल तथा नर्म हो जाते हैं; और इसी प्रकार वायु के 'कारबन-द्विओषिद' भाग ( carbon dioxide ) से बहुत से

अनघुलनशील पदार्थ घुलनशील हो जाते हैं। इसके सिवाय उन जीवाणुओं को भी वायु और ताप के पर्याप्त मात्रा में मिलने से ऐसा अवसर प्राप्त होता है कि पौधों के लिये वे भली प्रकार से खाद्य-पदार्थ का संचय कर सकते हैं, और यदि उल्लिखित दोनों पदार्थ पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलते, तो खूराक भी अधूरी ही तय्यार हो पाती है।

ऐसे भी बहुत से कीड़े-मकोड़े हैं। जो कि हमारी फ़सलों को नष्ट-बर्बाद कर दिया करते हैं; और पैदावार की दृष्टि से हमें घाटे में ही रहना पड़ता है। एक तो ये कीड़े-मकोड़े जब तक फ़सलें खेत में खड़ी रहती हैं। तब तक तो मनमानी हानि पहुँचाया ही करते हैं। पश्चात् फ़सलों के कट जाने के ये कीड़े-मकोड़े खेत के धरातल में छिप जाते हैं, और पौधों की जड़ों के आस-पास छिपे रहते हैं वहीं पर ये अपने अंडे-बच्चे भी दिया करते हैं; जैसे दीमक इत्यादि कीड़े-मकोड़े, और जब फ़सलें फिर खेत मे बोयी जाती हैं, और हरी-भरी अवस्था में इस योग्य हो जाती हैं। कि कीड़े उन्हें हानि पहुँचा करके अपना स्वार्थ-साधन कर सकें, तो इन कीड़ों के बाल-बच्चे धरातल से निकल कर हमारी फ़सलों को सदैव हानि पहुँचाया करते हैं। यदि किसी प्रकार से इन्हें नष्ट-बर्बाद नहीं कर दिया जाता है। तो इनका परिवार धीरे धीरे इतना बढ़ जाता है। जो किसी किसी वर्ष फ़सलों की सारी उपज को बर्बाद करके कृषक-समाज को निर्जीव बना दिया करता है।

यद्यपि इन कीड़े-मकोड़े रूपी शत्रुओं से कृषक-समाज सदैव

हानि उठाया करता है—तथापि उसे इस बात की चिन्ता नहीं रहती है कि किन-किन रीतियों से इनका सत्यानाश किया जा सकता है। कृषक-समाज इन्हें एक बलिष्ट शत्रु समझ कर इनसे हार मान ली है, और इनका पीछा नहीं करता कि इन्हें सदैव के लिये खेतों से निकाल बाहर करे। इसमें सन्देह नहीं कि आज-कल के मौजूदा ज़माने में इन्हें नष्ट-बर्बाद करने के लिये अनेकों तदबीरें कृषि-वैज्ञानिकों द्वारा काम में लाई जाती हैं, और उनसे यथोचित लाभ भी होता है; परन्तु इन तरकीबों को व्यवहार में लाने के लिये और इनसे लाभ उठाने के लिये अभी भारतीय-कृषक-समाज अयोग्य तथा निर्धन है। क्योंकि पहिले तो इन तरकीबों को काम में लाने के लिये कुछ मूल्यवान औषधियों को काम में लाना पड़ता है; इसके सिवाय उन्हें व्यवहार में लाने के लिये पर्याप्त ज्ञान की भी आवश्यकता है। इससे सबसे उत्तम और सस्ती तरकीब किसानों के लिये यही है कि खेतों को ख़ूब गहरा जोत कर इस प्रकार से नीचे ऊपर की मिट्टी तर-ऊपर कर दी जाय। कि इन कीड़े-मकोड़ों के अंडे खेत के धरातल के ऊपर आ जाँय। जिन्हें इनके शत्रु पंछी-संसार की बहुत से चिड़ियायें चुग कर इनका सत्यानाश कर दें; यदि कुछ अंडे-बच्चे इनसे बच भी जांय। तो धरातल की ऊष्णता और वायु के प्रकोप से मर जांय; और हमारी कृषि को हानि न पहुँचा सकें। इस कार्य्य में पूरी सफलता प्राप्त करने के हेतु इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि सारे किसान एक ही साथ एक ही समय में

अपने अपने खेतों की जुताई किया करें। जिससे अभीष्ट फल प्राप्त हो जाय, नहीं तो इसका कुपरिणाम यह होगा कि जो किसान अपने खेत को पहिले जोत कर अंडों-बच्चों को ऊपर लाकर के छोड़ देगा, उसके खेत के बहुत से कीड़े दूसरे किसान के खेतों में जाकर के छिप जांयगे, और जब दूसरा किसान अपने खेतों को जोतेगा, जिसका कि खेत पहिले किसान के जुते हुये खेत के पास है, तो उसके खेत के कीड़ों-मकोड़ों के सारे बच्चे पहिले किसान के जुते हुये खेत में आकर के आसानी से धरातल तथा गर्भतल में अपना अड्डा जमा लेंगे। और किसानों का सारा किया कराया हुआ परिश्रम नष्ट हो जायगा, और अगली फ़सल के समय अपना काम ये फिर से जारी करके हमारी खेती को हानि पहुँचाने लगेंगे।

विदेशों में यह बात नहीं है। क्योंकि उनके यहां के किसानों के खेत एक चक में है, जिससे उनको इन मुसीबतों का सामना नहीं करना पड़ता है, जो कि हमारे देशवासी किसानों को करना पड़ता है। इसके सिवाय एक अड़चन यह भी है, कि ये सारे कीड़े-मकोड़े अन्य जीवधारीयों की भांति अपनी रक्षा के हेतु बहुत से ऐसे आश्चर्य्य जनक काम किया करते हैं। कि जिनके द्वारा अपनी सन्तान को अवनी तल पर अभी तक स्थायी रख सके हैं। इनका नाश होना है तो वास्तव में बड़ी मुश्किल बात। परन्तु यदि कृषक-समुदाय चाहे तो जुताई के इस उद्देश्य को सामने रख कर खेतों को ठीक रीति से समयानुसार जुताई करके इनकी

अधिकता को कम कर सकता है; और इन पर इतना आधिपत्य (क़ब्ज़ा) अवश्य जमा सक्ता है। कि वह हानि जो कि एकायक किसानों को हो जाया करती है; नहीं हो सकती।

वे सारे 'रेहीले' तथा अन्य पदार्थ जो कि खेत को उसरीला बनाने में सहायता करते हैं। जुताई के कारण नीचे ही रह जाते हैं। भूमि की ऊपरी सतह पर नहीं आने पाते हैं। इससे हमारे खेतों की मिट्टी निरन्तर कृषि-योग्य बनती रहती है, और उक्त अनुपयोगी पदार्थ नीचे पड़ कर दबते जाते हैं। जिससे उनमें इतनी शक्ति नहीं रह जाती कि वह अपनी शक्ति द्वारा किसी प्रकार की हानि पहुँचा सकें।

उल्लिखित उद्देश्यों का विवेचन जुताई की दृष्टि से यद्यपि संक्षेप में प्रस्तुत-पुस्तक में किया जा चुका। जो कि जुताई के उद्देश्य को भली प्रकार से पूरा कर सकता है, और जिसके कारण जुताई की आवश्यकता भी सिद्ध हो जाती है। इन सब बातों के सिवाय जुताई के सम्बन्ध में और भी बहुत सी जानने योग्य बातें हैं। जिनका जानता भी बहुत ही ज़रूरी है, क्योंकि ये सारी बातें जुताई ही से घनिष्ट सम्बन्ध रखती हैं। जैसे उत्तम जुताई से क्या क्या लाभ होते हैं, अथवा बुरी जुताई के क्या क्या हानियाँ होती हैं; और जुताई किन-किन रीतियों से किन-किन नियमों के अनु-सार आजकल की जाती है। इस प्रचलित प्रणाली में क्या २ दोष हैं; और वे दोष कैसे तथा किन उपायों से दूर किये जा सकते हैं। बर्तमान-काल में जुताई की कैसी रीति-रिवाजें तथा नियम संसार

में मान्य हैं; जिनसे हमारी जुताई का घना सम्बन्ध है; जिसके त्याग तथा अनुकरण की हमें आवश्यकता है। इन सारी बातों का विवेचन हम समयानुसार करेंगे। परन्तु सर्व प्रथम हम यहाँ पर यह कह देना उचित समझते हैं। कि जुताई से तो प्रकट ही है, कि कृषि-सम्बन्धी सारी बातों में उत्तम फल प्राप्त होता चला जायगा, जिसके सम्बन्ध में विशेष प्रकार से कहने की कोई आवश्यकता नहीं है।

परन्तु, खराब जुताई का प्रभाव कृषि-कर्म्म पर बहुत ही बुरा पड़ता है। जिसका उचित रूप से संशोधन करना वर्तमान काल में बहुत ही आवश्यक प्रतीत होरहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि विदेशों की भांति हमारे यहाँ जुताई करने वाले हलवाहे एक तो विदेशी हलवाहों की अपेक्षा वैसे ही अशिक्षित हैं। जो कि जुताई के नियमों से तथा रीति-रस्मों से भली प्रकार से परिचित नहीं है। दूसरे हमारे देश में हलवाहों की अधिकांश संख्या में "बच्चों" की विशेषता है; जिसका फल यह हो रहा है कि भारत-भूमि अनजान बच्चों के लिये जुताई की दृष्टि से एक खिलौना है कि बच्चे हल-बैल ले जाकर के खेत में खिलवाड़ मचाया करते हैं, और छः सात बिस्वा जोतकर अपनी मजदूरी भी सीधी कर लिया करते हैं। दूसरे खेतों को भी अपनी जुताई के द्वारा नष्ट-बर्बाद कर दिया करते हैं।

इस खराब जुताई का प्रभाव हमारी खेती पर यह पड़ा करता है कि केवल फ़सलों से पैदावार ही कम नहीं होती है। वरन् ख़राब जुताइयों के कारण खेतों की दशा ऐसी ख़राब हो जाती है कि

उनके धरातल में ऐसी बातें उत्पन्न हो जाती हैं। जिससे खेत के चौरसपने में विषमता उत्पन्न हो जाती है, और खेत कहीं ऊँचे कहीं खाले पड़ जाते हैं; उसमें सिँचाई इत्यादि कर्म्म करने में बड़ी कठिनता पड़ती है। कहीं-कहीं पर पानी के जमा रहने से खेत की फ़सलों में अनेकों प्रकार की बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। इस कारण जब तक इन खेतों का सुधार (दुरस्ती) चतुर (ट्रेंड) किसानों द्वारा नहीं करा लिया जाता है—अर्थात जब तक इन खेतों की सारी बातों में उचित सुधार नहीं हो जाता। तब-तक हम इन खेतों से पूरी पैदावार नहीं ले सकते। इस कारण हम लोगों को अपने खेतों की जुताई हमेशा चतुर हलवाहों से करानी चाहिये। जिससे कृषि योग्य खेत ख़राब होकर ऐसे न हो जांय। जो कि पहले से पैदावार कम करदें; और सब अनुकूलताओं के होते हुये भी हमें खेत की जुताई से उत्पन्न हुई बुराई के सुधार करने की आवश्यकता पड़े।

नवसिखिया हलवाहों के लिये ऐसे खेतों को जुताई के लिये छोड़ देना चाहिये कि जिन खेतों की जुताई करके हमें कृषि-के योग्य बनाना हो; इन खेतों में ही हलवाहों को हल चलाना सिखलाना चाहिये, और जब बड़े-बूढ़े किसान अथवा चतुर (ट्रेंड) हलवाहे इस बात को क़बूल कर लें कि यह नवसिखिया हलवाह उन खेतों की जुताई करने योग्य हो गया है, कि जिनमें कृषि-कर्म्म हो रहा है। तो इन नये हल-वाहों को उन पुराने हलवाहों के पीछे ही पीछे कुछ दिनों तक हल चलाने देना चाहिये। जिससे ये नये हलवाहे कुछ दिनों के अभ्यास से चतुर किसानों की भाँति कृषि-योग्य खेतों की जुताई कर सकें।

जिससे वह हानि जो कि बुरी जुताइयों से हो सकती है; अथवा होती है न हुआ करें।

इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि जिस प्रकार से नये हलवाहों के लिये खेतों की आवश्यकता हुआ करती है। उसी प्रकार से इन नये हलवाहों के लिये ऐसे बैलों की भी आवश्यकता हुआ करती है। जो कि जुताई के काम को करते करते मँझ गये हों—अर्थात चाहे जो आदमी हल जोते यह जुताई ही के नियमों पर चलते जाँय। यदि ऐसे बैलों पर नये हलवाहों को जुताई के सीखने का मौक़ा दिया जायगा। तो नवसिखिया हलवाहों को जुताई सीखने में सहायता भी मिलेगी; और शीघ्र ही सीख भी जांयगे। यदि इसके प्रतिकूल बैल नये होंगे—अर्थात जिन्हें अभी हल खींचने का काम नहीं पड़ा है-अथवा बदमाश तथा मरकहे हैं। या कि कुछ ऐसे प्रकार के भी बैल हैं, जो कि हलवाहों के ही आसन पर चलते हैं। उन पर नये हलवाहों को काम न करने देना चाहिये; इसका फल यह होगा कि न तो वह हल चलना ही सीख सकेंगे। वरन् ।उन बैलों को भी विगाड़ देंगे, जिनके सुधारने में कष्ट उठाना पड़ेगा; इसके सिवाय संभव है। बैल बिगड़ कर भागें तो हल वग़ैरह भी टूट-फाट जाँय। जिससे आर्थिक-हानि भी उठानी पड़े। इस कारण नवसिखिया हलवाहों के लिये चतुर (ट्रेंड) बैलों को देना चाहिये, जिससे सीखते समय कोई उपद्रव न खड़ा हो जाय।

जिस प्रकार से नवसिखिया हलवाहों के लिये खेत तथा

बैलों की बात विचारणीय है। उसी प्रकार से हलों की भी बात विचारणीय है; इन हलों के सम्बन्ध में इतना अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिये। कि हल नये तथा बेश-क़ीमती न हों कि जिनके टूट-फाट जाने से हानि की संभावना हो। वरन् हल ऐसे हों। जो कि जोतते-जोतते पुराने हो गये हों; और जिनका मूल्य ( डिपरीसियेशन ) के द्वारा वसूल हो गया हो, नवसिखिया हलवाहों को सीखने के लिये देना चाहिये, जिससे उनको इस मजे हुये हल के चलाने में कोई अड़चन भी न पैदा हो; तथा टूट जाने के पश्चात् हानि से भी बरी रहें।

दूसरी बात ध्यान में रखने योग्य यह है कि पहिले पहिल हलवाहों को अपना देशी ही हल जोतना सीखना चाहिये, जिससे कि भली भांति हल के चलाने वाली सारी बातें ज्ञात हो जाँय; और देशी हल का चलाना भी नवसिखियों के लिये सरल है। जब देशी हल को भली भांति चला हों। तो चाहिये कि वे उन्नति-प्राप्त नव—आविष्कृत हलों का चलाना सीखें। क्योंकि इन नये प्रकार के हलों का चलाना वास्तव में नवसिखिया हलवाहों के लिये तो क्या? हमारे देश के वृद्ध किसानों के लिये भी बड़े मुश्किल की बात है। परन्तु तो भी उन्नति-प्राप्त फार्मों पर जहां कि इन हलों का प्रयोग हो रहा है। बड़ी सरलता से थोड़े ही दिनों में हमारे देश-वासी किसान सीख सकते हैं।

## जुताई की रीति

अब तक जुताई के सम्बन्ध में बहुत सी जानने योग्य बातों के

ही ऊपर विचार किया गया है, अब जुताई की रीतियों पर विचार किया जायगा कि किन-किन रीतियों से हमारे देश में अथवा अन्य देशों में इस समय जुताई की जा रही है। इन रीतियों में से कौन कौन सी रीतियाँ उपयुक्त तथा लाभदायक हैं, इन प्रचलित रीतियों में से प्रत्येक में कौन-कौन से दोष हैं। जो कि खेतों को अथवा पैदावार को हानि पहुँचाते हैं. और इन दोषों को हम किन किन उपायों से निवारण कर सकते हैं।

साधारणतया हमारे देश में हल में बैलों को जुआ (माची) की सहायता से जोड़ (नांध) कर खेत में किनारों से—अर्थात् खेत की किसी मेंड से खेत को जोतना आरंभ करते हैं; जुताई के आरंभ करने के समय हलवाहा अपने बायें हाथ से हल की मुठिया को पकड़ कर दाहिने हाथ से बैलों को हांकता है; और स्वयं हल के दाहिनी ओर चलता है; इस प्रकार जब खेत के दूसरे सिरे पर पहुँच जाता है। तो, बैलों को बाईं ओर घुमा देता है; इसी कारण से हमारे देश के किसानों के बैल बाईं ओर के घूमने के लिये एक प्रकार से आदी हो गये हैं; क्योंकि उन्हें दूसरी ओर घूमने का मौक़ा ही नहीं दिया जाता है। यदि बैलों को दायें बायें दोनों ओर घूमा कर जोतना सिखाया जाय तो कभी भी बैलों को नये हलों में चलते समय कुछ भी कष्ट न हो।

उक्त रीति से जब खेतों की जुताई की जाती है। तो बैल खेत के चारों ओर चलते हुये बीच में जुताई ख़तम करते हैं। इस जुताई

को मेंड से मध्य की जुताई कहते हैं; इसी को अंगरेजी भाषा में (side to center ploughing) कहते हैं। इस प्रकार की जुताई आज-कल के मिट्टी-पलटने वाले नव आविष्कृत हलों से भी की जाती है; और देशी-हल से तो पहिले ही से इस रीति से जुताई होती आ रही है। यह रीति साधारणतया सभी देश के किसान अपने व्यवहार में लाते हैं।

देशी-हल से इस प्रकार की जुताई से सारा खेत जुत नहीं पाता है। इसका कारण यह है कि देशी-हल से जो 'कूढ़' बनती है। वह त्रिभुजाकार होती है—जिसका आधार ऊपर की ओर होता है। इस कारण से दो 'कूढ़ों' के बीच त्रिभुजाकार ज़मीन बिना जुती हुई छूट जाती है। इस कारण से सारा खेत पहिली जुताई के द्वारा जुत नहीं पाता। दूसरी बार जो जुताई खेत में की जाती है। वह पहिली जुताई के विरुद्ध आड़ी की जाती है—अर्थात यदि पहिली जुताई पूर्व से पच्छिम को की गई है। तो दूसरी जुताई उत्तर से दक्षिण को करनी चाहिये। जिससे खेत का बिना जुता हुआ भाग जो कि पहिली जुताई के समय शेष रह गया था जुत जाय; इस प्रकार से जब तीन-चार बार जुताई की जाती है। तब देशी हल से पूर्ण रीति से खेत जुत पाता है। इस स्थान पर मज़दूरों को मज़दूरी की दृष्टि से किसानों को आर्थिक हानि (धन-सम्बन्धी) भी उठानी पड़ती है।

जिस प्रकार इस रीति की जुताई में देशी हल से यह हानि है। कि सारा खेत जुत नहीं पाता है; उसी प्रकार से मिट्टी पलटने

वाले उन लोहियाहलों से भी जो कि आजकल देश में काम में लाये जाते हैं, मेंड़ से मध्य की जुताई की जाती है। उसका फल यह होता है कि इन हलों के द्वारा मेड़ की तरफ़ से मिट्टी खेत की तरफ़ पलटती है। इससे जब जुताई बीच में जाकर के ख़तम हो जाती है। तो इन हलों से बीच में एक गहरी नाली सी पड़ जाती है। यह एक नाली तो उन सारे खेतों में अवश्य ही पड़ जाया करती है, जो कि छोटे होते हैं। यदि खेत बड़े होते हैं, जिन्हें कि हलाइयों में विभक्त करके जोता जाता है। तो ऐसी बहुत सी नालियाँ खेत के बीच में पड़ जाया करती है। क्योंकि हलाई लगभग २२ गज़ के लम्बी होती है। जब किसी खेत के बीच में ऐसी नालियां पड़ जाती हैं; तो खेत की समतलता-अर्थात चौरसपने में भी अन्तर पड़ जाता है। जब जुताई के बाद हगा (पाटा) चला करके खेत को चौरस और समतल करने का उपाय किया जाता है। तो उस समय इन खेतों की मिट्टियाँ इन नालियों के कारण भली प्रकार से खिंचती नहीं हैं, और न ये नालियां मिट्टी से भर करके दबही जाती हैं। इसका फल यह होता है कि खेत के किनारे धीरे-धीरे ऊंचे हो जाते हैं, और बीच का भाग नीचा हो जाता है। जिससे हानि यह होती है कि बरसात का कुछ पानी किनारों से बह कर के खेत के बीच में भर जाता है, और किनारे की भूमि सूखी पड़ी रह जाती है। जिससे पर्याप्त मात्रा में खेत के किनारों की भूमि पानी को सोख भी नहीं सकती। इसीसे खेत एक ही समय में पूरा जोता भी नहीं जा सकता है। तथा खेत की एक सी हालत के न होने के कारण उस

खेत से पूरी पैदावार भी नहीं मिल सकती है। जुताई भी इस कारण से एक ही समय में सारे खेत की नहीं हो सकती है। क्योंकि खेत के किनारे तो शीघ्र ही सूख जाते हैं। जो कि शीघ्र जुताई के योग्य हो जाते हैं; और बीच का भाग पानी के भरे रहने के कारण से किनारों की जुताई के समय जोता नहीं जा सकता है। इस प्रकार से खेत में जो यह पानी भरता रहता है; यह खेत को बहुत हानि पहुँचाया करता है; और इसके कारण बहुत सी बीमारियां भी पैदा हो जाती हैं। जो कि फ़सलों को हानि पहुँचाया करती हैं।

इस के सिवाय जब खेतों की सिंचाई फ़सलों के बोने पर की जाती है। तो उन नहरी सिंचाई के स्थानों में जहाँ कि क्यारी बनाकर के सींचने का रिवाज़ नहीं है, केवल लम्बे-लम्बे बरहे बना कर के ही खेत सींचे जाते हैं। तो किनारों का सारा पानी किनारों से खेत के बीच की ओर बह जाया करता है। इससे दो तरह की हानि होती है। एक तो किनारों की फ़सलों को पर्याप्त मात्रा में सिंचाई का पानी ही नहीं मिलता है। जिससे उनकी आवश्यकता पूरी हो सके। दूसरे बीच में पानी के भर जाने से फ़सलों को हानि होती है; क्यों-कि फ़सलों की जड़ों के समीप धरातल में पानी के भरे रहने के कारण धूप और वायु नहीं जा सकती।

इस पहिली जुताई के पश्चात् जब दूसरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हलों से की जाती है। तो अधिकतर यह जुताई खेत के बीच से उन्हीं नालियों पर से की जाती है। जो कि पहली जुताई के समय खेत के बीच में बन गई थीं; इसका परिमाण यह होता है

कि बीच की नाली मिट्टी से भर जाती है; और जब इस प्रकार की जुताई खेत के मेंड़ों पर जाकर के समाप्त हो जाती है; तो बीच के बजाय खेतों के 'मेंडों' के पास एक नाली बन जाती है। इस रीति को मध्य से मेंड़ की ओर की जुताई कहते हैं। इसी जुताई को अंगरेज़ी भाषा में "सेन्टर-टू-साइड" ( center to side ) की जुताई कहते हैं।

इस रीति से जुताई इस तरह से करनी चाहिये कि पहिली कूढ़ या तो खेत के बीचों-बीच काटी जाय। या तो हलाई के बीच में काटी जाय। इसके साथ ही साथ इस बात का भी ध्यान रक्खा जाय कि यह पहिली कूढ़ जो कि बीच में काटी जा रही है; उन तमाम कूढ़ों से उथली हो जो कि खेत में जोतते समय होंगी। अर्थात् यदि खेत में आठ इञ्च गहरी जुताई करना हो, तो यह पहिली कूढ़ पांच या छः इञ्च ही गहरी होनी चाहिये। इसका फल यह होगा कि इसके कारण गहरी नाली न बन सकेगी; दूसरे जब यह पहिली कूढ़ खेत के दूसरे सिर पर पहुँच जाय। तो ऐसा करना चाहिये कि बलों को दाहिनी ओर घुमा देना चाहिये; और इस कूढ़ के पास ही दाहिनी ओर दूसरी कूढ़ काट कर के पहिले कूढ़ में दूसरे कूढ़ की मिट्टी भर देना चाहिये। इसी प्रकार जब दूसरी कूढ़ खेत के सिरे पर पहुंच जाय। तो दाहिनी ओर बैलों को घुमा कर पहिली कूढ़ के पास ही अथवा उसके समानान्तर तीसरी कूढ़ काटनी चाहिये और पास की कूढ़ में मिट्टी भरते जाना चाहिये, इस प्रकार से चौथी कूढ़ को दूसरी के पास

काटना चाहिये; इस प्रकार की जुताई से सारी कूड़ें मिट्टी से भरती जावेंगी, और खेत की समतलता अर्थात चौरसपने में कोई भी अन्तर नहीं पड़ेगा और जुताई खेत के किनारों पर जाकर के समाप्त हो जायेगी; इस रीति में जो उथली नाली खेत अथवा हलाई के बीच में बनी होगी, वह हेंगा ( पाटा, सरावन, सुहागा ) के द्वारा खेत के हेंगाने के समय आसानी से भर जायगी।

उक्त दोनों रीतियों से जुताइयाँ उन हलों से की जाती हैं; जो कि एकही तरफ़ को मिट्टी पलटते हैं—तथा देशी-हलों से। किसानों की इस तकलीफ़ को दूर करने के लिये कि उनके बैल बाईं ओर घूमने के आदी होते हैं। ऐसे भी मिट्टी-पलटने वाले हल बनाये गये हैं जिसमें मिट्टी पलटने वाला भाग बाईं ओर होता है। इससे बैलों को बाईं ही ओर मुड़ना पड़ता है।

हलों की विभिन्नता के कारण जुताइयों की रीतियों में भी बहुत सा अन्तर तथा भेद पड़ गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि आजकल के समय में कुछ हल ऐसे भी बनाये गये हैं। जो कि दोनों तरफ़ को मिट्टी पलटते हैं—अर्थात् एक हल तो नये हलों में से वे हैं। जो कि एक ही तरफ़ को मिट्टी पलटते हैं; दूसरे हल वह हैं, जो कि दोनों ओर को मिट्टी पलटते हैं। इस कारण से इनकी जुताई की रीतियों में बड़ा भेद है; जिसमें से देशी-हलों की जुताइयों के तथा एक ही तरफ़ को मिट्टी पलटने वाले हलों की जुताइयों के सम्बन्ध में उक्त दोनों रीतियों के विषय में ऊपर चर्चा की जा चुकी है और आजकल के समय में हमारे देश में उक्त प्रकार के दोनों हलों का

प्रचार भी है। जो कि शिक्षित तथा अशिक्षित कृषक-समाज में प्रयोग किये जा रहे हैं—तथा व्यवहार में भी लाये जा रहे हैं। परन्तु इन तीसरे क़िस्म के हलों की जुताई की रीतियों के विषय में जो कि दोनों तरफ़ को मिट्टी पलटते हैं। अभी कुछ कहा नहीं गया। इसका मुख्य कारण यही है। कि अभी इन हलों का प्रचार कृषक-समाज में भली प्रकारसे नहीं हो पाया है। इसका मुख्य कारण यह है कि इन दोनों तरफ़ मिट्टी पलटने वाले हलों का मूल्य अधिक होता है, फिर भी इनका व्यवहार अब कृषक—समाज में होने लगा है। इस कारण इन हलों की जुताई की रीतियों के विषयों का भी यहाँ पर कुछ विवेचन करना आवश्यक है।

इसमें संदेह नहीं कि इन हलों की बनावट एक ही तरफ़ मिट्टी पलटने वाले हलों से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। परन्तु तो भी मिट्टी पलटने वाला भाग जिसे अंगरेज़ी भाषा में "मोल्ड बोर्ड" (mould board) कहते हैं। ऐसी दशा में लगा रहता है। जो कि स्थायी नहीं होता। वरन् वह किसी भी ओर एक 'हुक' के द्वारा स्थायी किया जा सकता है, और हुक को "मोल्डबोर्ड" से निकाल कर हल को उठाकर "मोल्डबोर्ड" को दूसरी ओर पलट कर फिर आंकड़े अर्थात हुक को लगा करके दूसरी ओर मोल्डबोर्ड को स्थायी कर सकते हैं। इनके विषय में हलों के वर्णन के समय विस्तार रूप से लिखा जायगा, यहाँ पर केवल इतना ही बतला देना बस होगा। कि ये हल अपनी बनावट के कारण हुक (hook) अर्थात आंकड़े के द्वारा दोनों ओर को घुमाये जा सकते हैं।

इन हलों से जुताई करने की यह रीति है, कि खेत को एक ही किनारे से जोतना आरंभ करते हैं, और दूसरे किनारे पर जाकर के खेत को जोत करके समाप्त कर देते हैं। वह भी इस रीति से कि जब इन हलों से पहिली कूड़ काटी जाती है, तो इस कूढ़ के समाप्त होने पर आँकड़े को निकाल कर मोल्डबोर्ड और फोर के भाग को बदल देते हैं, और मोल्डबोर्ड जब दूसरी ओर आंकड़े की सहायता से लग जाता है। तो पहिली कूढ़ के पास ही दूसरी कूढ़ काटते हैं, और दूसरे कूढ़ की मिट्टी पहिले कूढ़ में भरती जाती है, इस कारण से खेत के चौरस पने में कोई अन्तर नहीं पड़ता, और न खेत में नालियां ही अधिक पड़ने पाती हैं। लिखने से इस रीति का सम्पूर्ण ज्ञान पाठकों को न हो सकेगा। इन सारे हलों की रीतियां जब इन हलों से जुताई हो रही हो, यदि उस समय खेतों के किनारे पर खड़े होकर के ध्यान दिया जाय। तो ही समझ में ठीक रीति से आ सकती हैं। क्योंकि यह जुताई-कर्म्म कृषि-विज्ञान का व्यावहारिक कार्य है। जो कि किताबों के ही पढ़ने से ठीक रीति से समझ में नहीं आ सकता। किताबों से केवल सहायता ही मिल सकती है।

इस हल की जुताई के सम्बन्ध में इतना समझ लेना चाहिये कि जैसे यदि इस हल से पूर्व से पश्चिम को जुताई हो रही हो, तो जब पूर्व से हल की पहिली कूढ़ी चलकर पश्चिमी किनारे पर समाप्त हो जायगी, तो इस दोनों ओर मिट्टी पलटने वाले हल के मोल्ड-बोर्ड में से आँकड़ा निकाल कर मोल्डबोर्ड को दूसरी ओर पलट

देना चाहिये, और आंकड़े को भी दूसरी ओर लगा देना चाहिये। इस प्रकार से फिर उसी पहिली कूड़ के पासही दूसरी कूड़ पश्चिम से पूर्व को बनेगी। इसी प्रकार तीसरी कूड़ पूर्व से पश्चिम को बनेगी। इस प्रकार से पहिली कूड़ में दूसरी कूड़ी की मिट्टी गिरती जायगी, और कूड़ भरती जायगी। इस जुताई को अँग्रेजी भाषा में ( side to side ) साइड-टू-साइड अर्थात् आस-पास की जुताई कहते हैं।

इस प्रकार के हलों से तथा इस रीति की जुताई से कोई विशेष हानि खेतों को नहीं होती है। न पैदावार में ही कोई अन्तर पड़ता है। इस रीति की जुताई से खेत में नाली नहीं पड़ती है। केवल एक नाली खेत के अन्तिम सिरे पर अन्तिम कूड़ से पड़ जाती है, और वह भी पटेले ( हेंगे ) के व्यवहार से सरलता से दबकर मिट्टी से भर जाती है, और इसमें यह बात नहीं है कि बैल दांई ही या बांई ही ओर को घुमाये जांय। सुविधानुसार बैल किसी ओर को भी घुमाये जा सकते हैं, और पहिले कूड़ में दूसरे कूड़ से कटी हुई मिट्टी भर देनी चाहिये।

इस प्रकार की जुताई से खेत की समतलता में कोई अन्तर नहीं पड़ता, और खेत उसी प्रकार से चौरस रहता है। जैसा कि जोतने के पहिले था। इस हल से इस रीति की जुताई से एक लाभ और भी है। जिसका प्रसंगानुसार वर्णन करना ही पड़ रहा है। वह लाभ यह है कि यदि कोई खेत चौरस तथा समतल न हो अर्थात किसी तरफ़ नीचा तथा उसके दूसरी तरफ़

ऊँचा होने के कारण ढालू हो गया हो तो यदि इस रीति से और इन हलों से जुताई नीचे भाग से आरंभ कर के ऊंचे भाग की तरफ़ बराबर खेत को पांच-छः बार जोता जाय। तो इसका फल यह होगा कि खेत का ढालूपन जाता रहेगा, और खेत चौरस हो जायगा।

उल्लिखित पंक्तियों में जुताई की रीतियों पर हलों की बनावट की दृष्टि से विचार किया गया है। जिससे जुताई की सारी रीतियां भली प्रकार से हलों का प्रयोग तथा व्यवहार करते समय समझ में आ सकती हैं। साधारणतया इस समय तक उपर्युक्त रीतियां ही कृषक समाज में तथा उन्नति-प्राप्त कृषि-क्षेत्रों पर में प्रचलित हैं। इसके सिवाय बहुत से किसान अपने खेतों को भली प्रकार से जोतने के लिये खेतों को तिर्छा, बेड़ा, आड़ा भी जोतते हैं। कोई कोई कोनों के पास ही से तिर्छा जोतते हैं। जिनके विषय में यहां पर मुझे कुछ भी लिखने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हो रही है। इसके सिवाय एक बात यह भी है कि जैसे २ नव-आविष्कृत हलों का व्यवहार दिनों-दिनों हमारे देश में बढ़ता जायगा। वैसे ही वैसे सुविधानुसार संभव है। कुछ नई रीतियां भी काम में लाई जाने लगेंगे, उसका साधारण ज्ञान लोगों को उस समय उन हलों के प्रयोग तथा व्यवहार से हो जायगा। इन रीतियों के सिवाय और भी कुछ आवश्यक बातें ऐसी हैं। जो कि इन रीतियों से घना सम्बन्ध रखती हैं। अब उन के विषय में यहाँ पर कुछ उल्लेख किया जायगा।

खेतों की जुताई करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि खेत बहुत ही गीला न हो अर्थात् – उसमें इतना गीलापन न पाया जाय। कि जुताई करने से खेत में ढेले ( डले ) पड़ जाँय। यदि खेत जल्दी के कारण गीला जोत डाला जायगा। तो खेत में डले तो पड़ ही जाँयगे। कि जिनका तोड़ना पटेले (हेंगे) इत्यादि से तो मुश्किल हो ही जायगा। साथ ही साथ हलवाहों और बैलों के चलने से भी खेत की भूमि भी ठोस हो जायगी। इस कारण जब खेत बहुत गीला न हो—अर्थात् ऐसी दशा में हो कि जुताई करने योग्य हो तभी खेतों को जोतना चाहिये।

यहाँ पर यह प्रश्न सहज ही उपस्थित हो सकता है। कि यह कैसे जाना जा सकता है कि खेत जोतने के योग्य है ? इस सम्बन्ध में इतना ही कह देना पर्याप्त है कि जब खेत जोतना हो तो उसकी थोड़ी मिट्टी हाथ में लेकर मलें। अथवा दबावें इस क्रिया से यदि खेत की मिट्टी के कण अलग विलग होकर के भुरभुरी दशा में हो जाँय। तो समझ लेना चाहिये कि खेत जुताई करने के योग्य है। यदि इसके विरुद्ध खेत की मिट्टी में गोली बँध जाय, और ज़मीन के कण छोटे छोटे हो करके अलग विलग न हो सकें। तो समझ लेना चाहिये कि खेत जोतने के योग्य नहीं है।

इस प्रकार से यदि खेत गीला होगा तो भी जुताई करने से डलों के पड़ जाने की संभावना है। जिस से बहुत ही हानि उठानी पड़ेगी। इस कारण खेत को उचित रूप से सूख जाने पर जब जुताई के योग्य हो जाय, तभी जुताई करनी चाहिये। यदि खेत

गीली दशा से भुरीभुरी दशा में न जोता जायगा, और खेत कुछ सूख जायगा तो भी हानि होगी। इस कारण सूखा और कड़ा खेत कभी न जोतना चाहिये। जब कड़ा यानी ठोस और सूखा खेत जोता जायगा तो खेत की गहरी जुताई न हो सकेगी।

इसके सिवाय संभव है। कि यदि खेत अधिक सूखा हुआ और ठोस हो तो हल की नोक भी टूट जाय या अधिक घिस जायगी। इस कारण यदि खेत सूखा तथा ठोस हो तो उसकी सिंचाई (पलेवा, फटक कर) करके जोतना चाहिये। इससे मालूम हुआ कि जुताई करना भी कितना दुस्तर काम है। क्योंकि गीली दशा में भी जोतने से हानि, और सूखी दशा में भी जोतने से वही बला! इस कारण जुताई के समय खेतों की दशा पर भली प्रकार से विचार कर लेना चाहिये। इसीसे इस बात पर अधिक ध्यान आकृष्ट किया गया है। कि जुताई उचित समय पर और ठीक रीति से होनी चाहिये। मेरे विचार से जिन दोनों बातों के विषय में ऊपर बहुत कुछ कहा जा चुका है। यह सब बातें ऐसी हैं कि खेतों को जोतते समय इन पर ध्यान देने से उत्तम फल की आशा की जा सकती है। इसके सिवाय कुछ और भी बातें हैं। जिन पर ध्यान देने से उत्तम जुताई हो सकती है। वह सब बातें ऐसी हैं। जो कि उत्तम जुताई से घना सम्बम्ध रखती हैं, और इस उत्तम जुताई के लिये कई एक बातों पर ध्यान रखना पड़ता है। इस कारण से उन सारी बातों का भी ज्ञान आवश्यक है। यद्यपि यह सब बातें अच्छी जुताई के सम्बन्ध की हैं। जिनको सब किसान नहीं करते हैं, और

इसीसे पैदावार में अन्तर भी पड़ जाता है। अच्छी—जुताई के सम्बन्ध में सारी आवश्यक बातों के ध्यान रखने से जिनका कि वर्णन आगे किया जायगा, फल यह होता है। कि जुताई के कारण खेत में किसी प्रकार से कोई खराबी नहीं आने पाती, और वे नवसिखिये हालवाह जो कि ट्रेंड यानी चतुर हलवाह बनना चाहते हैं। यदि उत्तम जुताई के नियमों तथा आवश्यक बातों पर ध्यान रक्खेंगे तो वे शीघ्र ही चतुर हलवाह बन जांयगे।

## उत्तम-जुताई

उत्तम श्रेणी की जुताई करने के लिये कई बातों पर ध्यान रखना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि देशी-हल से भी उत्तम श्रेणी की जुताई की जा सकती है। परन्तु इस देशी हल से उत्तम श्रेणी की जुताई करने के लिये खेत को कई बार जोतना पड़ेगा; इस कारण यदि मजदूरी पर दृष्टि फेरी जाय—तो आर्थिक-हानि की भी संभावना है। इसके साथ ही साथ प्रसंगानुसार यहाँ पर यह भी कहना पड़ रहा है कि जैसा ऊपर कहा जा चुका है। कि देशी-हल से भी बार-बार जुताई करके हम उत्तम—श्रेणी की जुताई अवश्य कर सकते हैं। परन्तु नवीन मिट्टी पलटने वाले हलों से देशी-हलों की अपेक्षा बहुत कम बार खेतों को जोत करके हम उत्तम-श्रेणी की जुताई कर सकते हैं। उत्तम—श्रेणी की अच्छी जुताई करने के लिये सब प्रकार के हलों के सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातें हैं कि जिनके बिना जाने हुये, और व्यवहार में लाये हुये; तथा साथ ही साथ अभ्यास किये हुये अच्छी जुताई नहीं हो

सकती। यह बात ठीक और सत्य है कि देशी-हलों से शीघ्र ही उत्तम जुताई का अभ्यास किया जा सकता है, और मिट्टी-पलटने वाले हलों की अपेक्षा देशी—हल से बहुत ही कम समय में अच्छी 'जुताई' की बातें सीखी जा सकती हैं। इसका मुख्य कारण यही है। कि देशी हलों की अपेक्षा मिट्टी-पलटने वाले नव-आविष्कृत हलों में कई एक भाग होते हैं जिनका व्यवहार जुताई के समय बड़ी सावधानी से करना पड़ता है; और अच्छी जुताई के सब नियमों का पालन करना पड़ता है। इन्हीं मिट्टी-पलटने वाले हलों का प्रयोग और व्यवहार यदि हलवाहों से नहीं बन पड़ता है। तो खेत में जुताई के कारण बहुत सी ख़राबियां पैदा हो जाया करती हैं। जिससे खेत भी ख़राब हो जाता है। और पैदावार भी कम हो जाती है। अतएव अच्छी जुताई के सम्बन्ध में कुछ विवेचन नीचे किया जाता है।

चाहे जुताई किसी हल से की जाय। इस बात पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है कि कूढ़ सीधी जाय। 'कूढ़' यदि सीधी जायगी। तो खेत उचित समय पर जुत जायगा, और खेत में बिना जुती हुई मिट्टी न छुटने पावेगी। इसके विरुद्ध यदि जुताई करते समय 'कूढ़' सीधी न जाकर के टेढ़ी-मेढ़ी अथवा तिर्छी जायगी तो खेत में अनेकों ख़राबियां पैदा हो जांयगी, और अच्छी जुताई न हो सकेगी।

यदि खेत हलाइयों में विभक्त करके जोता गया हो। तो सब हलाइयाँ बराबर लम्बी-चौड़ी होनी चाहिये। साधारणतया हला-

इयां बाइस गज़ के लगभग लम्बी होती हैं। इन हलाइयों में भी 'कूढ़ों' के सीधे होने के सिवाय इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिये। कि प्रत्येक हलाई में कूढ़ों की संख्या समान हो—अर्थात यदि किसी 'हलाई' में पचास कूढ़ बने हों। तो दूसरी हलाई में भी पचास कूढ़ के ही लगभग कूढ़ बनने चाहिये। हलाइयों में कूढ़ों की संख्या में विशेष अन्तर नहीं होना चाहिये। नहीं तो उत्तम-जुताई नहीं कही जा सकेगी।

जुताई के पश्चात् खेत देखने पर चौरस देख पड़ना चाहिये। धरातल ऊँचा-नीचा न होना चाहिये। यदि खेत चौरस जुता हुआ होगा, तो खेत का धरातल भी समतल होगा। यदि कूढ़ें सीधी होंगी तो खेत देखने में सुन्दर भी मालूम होगा, और इस प्रकार की जुताई उत्तम-श्रेणी की जुताई कही जायगी।

यदि मिट्टी पलटने वाले हलों से जुताई की गई हो तो। मिट्टी एक समान पलटी हुई होनी चाहिये। इसकी सब से उत्तम पहिचान की यही रीति है। कि यदि मिट्टी एक सी पलटी होगी तो खेत का धरातल ऊंचा-नीचा न होगा। प्रत्युत एक सी मिट्टी के न पलटने के कारण धरातल ऊँचा-नीचा हो जायगा, और खेत के चौरसपने में फ़र्क पड़ जायगा, और यह जुताई निम्न-श्रेणी की जुताई हो जायगी।

इन मिट्टी-पलटने वाले हलों से जो कूढ़ें बनी हों। वह सब दूसरे कूढ़ों की मिट्टियों से भरी हुई होनी चाहिये। सारे खर-पतवार घास-फूस कूढ़ के भीतर इस प्रकार से दबे हुये होना चाहिये कि उनका कोई भी तिनका दिखलाई न पड़े।

जब इन मिट्टी-पलटने वाले हलों से जुताई करके जुताई समाप्त कर दी जाय। तो उन दोनों किनारों पर जहां की कूढ़ समाप्त होती है। खेत का कुछ भाग बिना जुता हुआ शेष रह जाता है। जिसे अंगरेज़ी भाषा में हेड-लैन्ड (head-land)—अर्थात सिरे की भूमि कहते हैं। इस सिरे की भूमि को आड़ा-आड़ा भली प्रकार से जोत देना चाहिये। जिससे खेत की यह सिरे की भूमि खेत के समान ख़ूब अच्छी जुती हुई मालूम हो। दूसरा लाभ यह होगा कि किनारे की मिट्टी खेत के भीतर की तरफ़ उलट कर खेत की तरफ़ फिंक जावेगी। जिससे यदि खेत का किनारा ऊंचा होगा। तो खेत समतल हो जायगा। इस के साथ ही साथ खेत के कोनों को भी प्रत्येक जुताई के साथ ही साथ फावड़े से खोद कर के खेत की जुताई के साथ मिट्टी को बना देना चाहिये।

मिट्टी-पलटने वाले हलों का प्रयोग तथा व्यवहार करते समय इस बात पर अधिक ध्यान रखना चाहिये। कि जहांतक संभव हो खेत में नालियों की संख्या बहुत ही कम हो—अर्थात नालियाँ कम पड़ें, और जो नालियां पड़ें भी—वह या तो खेत के 'मेड़ों' के पास पड़ें। या ऐसी जगहों में पड़ें, जो कि पटेले की रगड़ से सरलता पूर्वक भरी जा सकें, और वह परिपूर्ण रूप से दब जायें। जिससे खेत के चौरसपने में अन्तर न पड़ने पावे। इस सम्बन्ध में यह नियम बहुत उपयुक्त होगा कि जब इन मिट्टी-पलटने वाले हलों से जुताई की जाय। तो बीच में जो पहली कूढ़ काटी जाय वह कूढ़

उन कूढ़ों की अपेक्षा कम गहरी हो, जो कि सारे खेत में होंगी, अर्थात् यदि खेत में लगभग आठ इञ्च गहरी जुताई करनी हो तो यह पहली कूड़ पांच-छः इञ्च से अधिक गहरी न होनी चाहिये। इस से खेत में नाली भी अधिक गहरी न होगी, और इसकी मिट्टी से ऊंची रागी (लकीर) भी न बन सकेगी। इस के सिवाय यदि खेत हलाइयों में विभक्त कर के जोता गया है, तो खेत जब तीसरी बार जोता जाय। तो इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि दूसरी बार की जुताई किस स्थान पर ख़तम हुई थी, जहां पर कि नाली पड़ गई है। तो इसी ख़तम होने वाले स्थान से जहां पर कि नाली पड़ी हुई है। खेत की तीसरी जुताई करना चाहिये इस से लाभ यह होगा कि दूसरी जुताई की सारी नालियां इन तीसरी जुताई से नष्ट हो जायंगी, और खेत समतल हो जायगा। इसी सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि तमाम खेत में कूढ़ों की गहराई एक समान हो, इससे खेत ऊंचा-नीचा नहीं हो सकता है।

इन सब बातों के सिवाय हल जोतते समय बलपूर्वक हल को दबा कर के चलाने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा ख़्याल करना ग़लत और मूर्खता है कि हल दबाने से गहरा जायगा प्रत्युत हल को दबा कर चलाने से फल यह होगा कि हल की नोक ऊपर को उठ जायगी और पिछला भाग खेत में गड़ जायगा, इस कारण उत्तम-श्रेणी की अच्छी जुताई न हो सकेगी। इस कारण इन बातों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है कि इन मिट्टी-पलटने वाले हलों को चलाते समय यह देख लेना चाहिये कि हल नोक पर

खड़ा तो नहीं है – अथवा इसका पिछला भाग खेत की सतह से उठा हुआ तो नहीं है। इन हलों की दशा जोतते समय ठीक वैसी ही होनी चाहिये। जैसी कि समतल भूमि पर रक्खे रहने से होती है।

उत्तम-श्रेणी की अच्छी जुताई करने के सम्बन्ध में ऊपर बहुत सी बातें कही गई हैं। यदि उपर्युक्त नियमों पर ध्यान रख कर और अच्छी-जुताई के चित्र को हृदय में अङ्कित करके जुताई की जायगी। तो अवश्य ही उत्तम जुताई होगी। मेरे विचार से अच्छी जुताई का होना अधिकतर चतुर ( trand ) हलवाहों के ही ऊपर निर्भर है। यदि हलवाह चतुर होगा। तो अवश्य ही अच्छी-जुताई होगी। ऊपर कहा जा चुका है, और फिर भी कहा जा रहा है। कि अच्छी-जुताई पर बहुत कुछ उत्तम पैदावार का होना निर्भर है, और अच्छी-जुताई करने से खेत की मिलकियत-अर्थात् उसके वास्तविक मूल्य में दिनों-दिन वृद्धि होती चली जायगी, और हरेक दृष्टि से खेत केवल अच्छी-जुताई ही के कारण उत्तम कहा जा सकता है।

जुताई के सम्बन्ध में अब तक विस्तार-पूर्वक भली प्रकार से विवेचना की गई है, और जहाँ तक सम्भव था। मैंने जुताई के सम्बन्ध की सारी आवश्यक बातों की चर्चा कर दी है। मेरे विचार से अब जुताई के प्रधान प्रधान अंगों का वर्णन करना शेष है। जिससे हम अब उसी के सम्बन्ध में कुछ विचार करेंगे।

प्रायः यह देखा जाता है। कि खेत में फ़सलों को बोने के लिये

और इन फ़सलों से अधिक से अधिक पैदावार हासिल करने के लिये, खेतों में हर मौसिम में, और हर समय भिन्न-भिन्न काम होते रहते हैं, और इन सब कामों का प्रभाव भी फ़सल की उपज पर पड़ा करता है। इन खेत के सारे भिन्न-भिन्न कामों के विषय पर चर्चा न करके हम केवल यहाँ पर यही कहेंगे। कि केवल फ़सलों की ही दृष्टि से खेतों में जुताइयां जो कि भिन्न-भिन्न ऋतुओं (मौसिमों) में की जाती हैं। वह भिन्न-भिन्न उद्देश्य से की जाती हैं। इन सब ऋतुओं की जुताइओं के सम्बन्ध में आजकल बहुत सी बातें नई-नई रीतियों से व्यवहार में आने लगी हैं। जिनसे प्रत्येक ऋतुओं की जुताइयों का ज्ञान-क्षेत्र बहुत ही विशद रूप से विस्तृत हो गया है। यहाँ पर हम इतना अवश्य कहेंगे। कि हमारे देश-वासी किसान इन ऋतुओं की जुताइयों के ज्ञान से अभी अधिकांश में अनभिज्ञ हैं। उनको इस बात का पता ही नहीं है। कि गर्मियों में खेतों की जुताइयां क्यों और किन किन ख़ास ख़ास उद्देश्यों के कारण से क जाती हैं? और इन जुताइयों को किस किस समय और किस क़िस्म के हलों से करनी चाहिये। जिससे गर्मी की जुताइयों से पूर्ण लाभ प्राप्त हो सके। वर्तमान काल में गर्मी की ऋतु में हमारे देश के किसानों द्वारा गर्मी की जुताइयों का नाम ही निशान एक दृष्टि से मिट सा गया है। इस जुताई के सम्बन्ध के लाभों को लोग जानते ही नहीं हैं। इस कारण जिस प्रकार से गर्मियों की जुताइयों के बारे में किसानों को ध्यान देना चाहिये था नहीं दिया। इस ऋतु की जुताई के बारे में आगे विस्तृत रूप से विवेचन किया जायगा।

जिस समय पानी बरस जाता है। उस समय यह देखा जाता है। कि सब से पहिले वे किसान खेतों की जुताई करने के लिये अग्रसर होते हैं। कि जिन के यहां धान की पैदावार अधिक होती है। ये किसान पानी के बरसते रहने पर ही अपने खेतों में मेड़ों को दुरुस्त करके, खेतों में पानी को रोक करके, जुताई आरम्भ कर देते हैं; और धान बोते तथा बेहन डालते हैं। इसके पश्चात् वे किसान जिनके यहां धान पैदा नहीं होता है। पानी के बरस जाने के पश्चात् जब खेत जोतने योग्य हो जाता है। तो खेतों की जुताई करना आरंभ कर देते हैं, और सब से पहिले उन खेतों की जुताई अपने देशी-हलों से करके ठीक कर लेते हैं। जिनमें कि खरीफ़ की फ़सलें बोना है। तत्पश्चात् उन खेतों की जुताई करते हैं। कि जिनमें 'रबी' की फ़सलें बोना है। इस कारण वश हमारे खेतों से अधिक से अधिक पैदावार फ़सलों के द्वारा नहीं मिल सकती है। क्योंकि हमारे किसानों के पास अभी तो केवल वेही देशी हल हैं। जिनसे जुताई करके खेत तय्यार किये जाते हैं। जिसका फल यह होता है कि जिन खेतों की जुताई वह समय पर कर पाते हैं। उनकी जुताई तो कर देते हैं, और जिनकी जुताई ठीक समय पर नहीं कर पाते। वह 'ठनक' (सूख) जाते हैं, और जुताई नहीं हो पाती है। इस कारण उनके लिये फिर वर्षा की राह जोहनी पड़ती है, और खेत ठीक प्रकार से जोता नहीं जा सकता।

परन्तु आजकल जुताई के लिये देशी-हल के सिवाय बरसात की जुताई के लिये ऐसे-ऐसे यंत्र (औज़ार) आविष्कृत किये गये हैं।

जिनके व्यवहार से थोड़े ही समय में अधिक क्षेत्रफल के खेतों की जुताइयाँ करके, उनकी नमी रोकी जा सकती है; और फ़सलों के लिये उत्तम प्रकार से खेतों को तैयार किया जा सकता है। इन जुताई के सारे यंत्रों का वर्णन और व्यावहारिक बातों का दिग्दर्शन स्थल-विशेष पर किया जायगा।

बरसात की जताइयों के पश्चात् 'रबी' की फ़सलों को बोने के लिये जब खेतों की जुताइयां इस दृष्टि से की जाती हैं। कि खेत भली प्रकार से कमा कर इस योग्य तैयार कर लिये जांय। कि खेत बोने योग्य हो जाय, और बीजों की बुवाई के समय तक 'नमी' भी पर्याप्त मात्रा में खेतों में स्थायी रहे। जिससे बीज भली प्रकार से अंकुरित हो सकें। इस 'रबी' की जुताई के सम्बन्ध में भी आज-कल के मौजूदा ज़माने में बहुत सी नई नई बातें व्यवहार में आने लगी हैं। जिनका जानना भी आवश्यक है, और उनका वर्णन भी यथोचित रीति से किया जायगा।

उल्लिखित तीनों मौसिमों की जुताइयां वास्तव में ही जुताइयां हैं। जो कि वर्तमान-काल में भी, देश में प्राचीन-काल की भांति होती चली आ रही हैं। इनकी रीति-रस्मों में किसी भी प्रकार का फेर-फार नहीं हो पाया है। न निकट भविष्य में होने की कुछ संभावना ही है। परन्तु तो भी इन तीनों मौसिमों की जुताइयों के विषय में हम अपने पाठकों के लाभार्थ भली प्रकार से विवेचन कर के इस बात का परिचय करा देंगे। कि वर्तमान-काल में इन ऋतुओं की जुताइयां विदेशों में किस प्रकार से की जा रही हैं, और किन-किन

नये नये यंत्रों का व्यवहार हमारे देशवासी किसान किस प्रकार से करके लाभ उठा सकते हैं।

इन तीनों ऋतुओं की जुताइयों के अलावा एक प्रकार की जुताई और हमारे खेतों में की जाती है। जो कि उस वक्त़ में की जाती है। जब कि बीज बो दिया जाता है; और फ़सलें खेत में खड़ी रहती हैं—अर्थात् खड़ी फ़सलों की जुताई। इस प्रकार की जुताई की रीति अत्यन्त प्राचीन-काल से ही हमारे देश में प्रचलित थी। जिसका अनुकरण आजकल भी होता है। हमारे देखने में यह बहुधा आया है। कि खरीफ़ की फ़सलों में ज्वार-बाजरे तथा मक्का के खेतों को जब यह खेतों में खड़े रहते हैं। तो देशी-हल से इनकी जुताई कर दी जाती है। इसको कृषक समाज में "बिदहना" कहा गया है।

परन्तु आजकल के समय केवल खरीफ़ की ही फ़सलों को नहीं, वरन् उन सारी खरीफ़ और 'रबी' की फ़सलों को जो कि क़तारों में बोई जाती हैं। जोतने का प्रबन्ध किया जाता है; और इसकी जुताई के लिये नूतन औज़ार आविष्कृत किये गये हैं। जिनसे लाभ भी होता है। फिर भी इन जुताइयों से वही अर्थ निकलता है। जो कि खेतों में खड़ी फ़सलों के समय निकाई—गुड़ाई करने से निकलता है। सारांश यह कि निकाई—गुड़ाई करने का काम भी एक प्रकार से हलकी जुताई करना है। अबतक यह काम मनुष्यों द्वारा खेतों में 'खुरपी' तथा इसी प्रकार के अन्य यंत्रों से किया जाता था। जिससे भली प्रकार से खेतों की निकाई-गुड़ाई नहीं हो पाती थी।

प्रत्युत इसके परिणाम यह होता था। कि अधिक समय में थोड़े ही क्षेत्रफल की निकाई-गुड़ाई हो पाती थी, और इस काम के लिये मज़दूरों की भी अधिक आवश्यकता पड़ती थी। जिससे मज़दूरी भी अधिक देनी पड़ती थी। इन सारी कठिनाइयों को दूर करके इस समय ऐसे यंत्र ( औज़ार ) आविष्कृत किये गये हैं; जो कि बैलों के द्वारा खड़ी फ़सलों में चलाये जा सकते हैं, और थोड़े ही समय में अधिक क्षेत्रफल की निकाई-गुड़ाई की जा सकती है, और इस रीति से व्यय भी कम पड़ता है। इन यंत्रों और रीतियों से अभी हमारे देशवासी किसान पूर्णरूप से परिचित नहीं हो पाये हैं। सरकारी कृषि-विभाग इन यंत्रों के प्रचार में दत्त-चित्त है। देखें ! ईश्वर उसे कैसी सफलता देता है।

इसमें संदेह नहीं कि खड़ी फ़सलों की जुताई भी वास्तव में जुताई का एक उपाङ्ग है, और जुताई के ही उद्देश्य को पूरा करता परन्तु फिर भी इसका नाम 'निकाई' और 'गुड़ाई' दिया जा चुका है। इस कारण जुताई के सम्बन्ध में इसका विवेचन करना प्रस्तुत-पुस्तक में मुझे असंगत सा प्रतीत हो रहा है। इस कारण इस विषय का विवेचन प्रस्तुत-पुस्तक में न करके हम इस विषय का विवेचन निकाई-गुड़ाई के ही प्रसंग में विस्तार-पूर्वक करेंगे। परन्तु इस निकाई-गुड़ाई के काम को भी हम लोगों को जुताई का एक उपाङ्ग ही समझना चाहिये। अब हम जुताई के प्रधान प्रधान अंगों पर विशेष रीति से विचार करेंगे।

भूमि से नहीं प्राप्त कर पाते हैं। जिसके फल स्वरूप उन्हें वर्तमान-काल में पेटभर अन्न और तनभर वस्त्र के लिये भी तरसना पड़ रहा है।

उपर्युक्त दुःखदायी समस्या का मुख्य कारण यही है। कि अभी तक भारतीय-किसान "ग्रीष्म-कृषि-कर्म्म" के लाभ तथा प्रयोग एवँ व्यवहार से पूर्ण-रूप से परिचित नहीं हो पाये हैं।

इस अपरिचितता की कमी का एक विशेष कारण यह भी है। कि अभी तक राजकीय तथा प्रान्तीय कृषि-विभागों के कर्म्मचारियों ने 'ग्रीष्म-कृषि-कर्म्म" तथा गरमी की जुताइयों एवं उनकी विशेषताओं का पूर्ण रूप से प्रचार भी नहीं कर पाया है। इसमें संदेह नहीं कि 'ग्रीष्म-कृषि-कर्म्म" के ऊपर कुछ पुस्तिकायें (Pamphelet) किसानों के हितार्थ प्रकाशित कर दी गई हैं, और यत्र-तत्र स्थानों पर यदा-कदा कृषिप्रदर्शकों द्वारा इनकी क्रियात्मक रीतियां भी कृषकों को दिखला दी गई हैं। परन्तु, इससे कुछ भी वास्तविक लाभ भारतीय किसानों को अभी तक नहीं पहुंच पाया है। बहुत से सरकारी कर्मचारियों का कहना है। कि भारत में गरमी की जुताइयों के लिये एक तो सिंचाई के उपयुक्त साधन ही नहीं प्राप्त हैं। दूसरे भारत के कृषक लकीर के फकीर हैं। वे सदैव गरमी की जुताइयों से उदासीन रहते हैं। वर्षा आरम्भ होने के साथ से ही खेतों की जुताइयां किया करते हैं। इन उपर्युक्त दलीलों के विषय में हम अभी केवल इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं। कि यह सारी दलीलें लिखने और कहने ही के लिये पर्य्याप्त हैं। वास्तव में कृषक

समाज में अभी तक इन जुताइयों का कोई लाभ-प्रद ज्ञान प्रत्यक्ष रूप में दिखलाया ही नहीं गया। क्योंकि यह देखने में नित्यशः आता है। कि भारतीय-कृषक गरमियों में भी कुछ न कुछ फसलें उगाते ही हैं। जैसे ईख तथा साँवा एवं जायद की फ़सलें, और इनके लिये सिंचाई का बप्रन्ध भी पूर्ण रूप से करते हैं। तो यह कैसे माना जा सकता है। कि वह उन फ़सलों के लिये कि जिन के लिये गरमी की जुताइयां अत्यंत ही आवश्यक ही नहीं अनिवार्य्य भी है, क्यों न सिंचाई कर के जुताई कर दिया करेंगे, और इन जुताइयों के प्रभाव से लाभ उठावेंगे।

इन उल्लिखित दलीलों के जो कि सरकारी कर्म्मचारियों द्वारा कही और लिखी जाती हैं। हम कभी भी क़ायल नहीं हो सकते। हमारा तो स्पष्ट शब्दों में यही कहना है। कि अभी तक भारतीय कृषकों को इस बात का ज्ञान ही नहीं है। कि हमें गरमी के दिनों में खेती के लिये किन-किन कर्म्मों को करना चाहिये—अथवा गरमी के दिनों में खेती के सम्बन्ध के कौन-कौन से कार्य्य ऐसे अनिवार्य्य और आवश्यक हैं। जिन पर हमें विचार करना चाहिये और उन्हें कार्य्यरूप में परिणित करके उन्हें पूर्ण करना चाहिये। जहाँ तक हमने पता लगाया है, और कृषकों के गरमी के दिनों के कामों की जाँच-परताल की है। तो हमें यही ज्ञात हुआ है कि साधारण-श्रेणी के किसान इन दिनों में विशेषतया अधिकाँश में फ़सलों से अन्न और भूसे को अलग करने में ही सपरिश्रम लीन रहते हैं। जहाँ उन्होंने खेतों से फ़सलों को काट कर खलिहान में

जमा किया। कि उसी समय से इन किसानों के भक्षक या तो महाजन या दूसरे क़िस्म के क़र्ज देने वाले लोग इनके खलिहानों का चक्कर लगाने लगते हैं. और मौक़ा पाते ही जिस तरह से हो सकता है। उसी तरह से इनसे अपना रुपया वसूल कर लेते हैं; इतना ही नहीं क़ानूनी न्याय की दृष्टि से महाजन तथा ज़मींदार किसानों के खेतों की खड़ी फ़सलों को ही कुर्क करा सकते हैं। और यह अपने भाग्य को ही कोसते रह जाते हैं। यह तो हुई कृषक-समुदाय के अधिकाँश कृषकों की दुःख कहानी।

अब हम अपने पाठकों को ! अन्य श्रेणी के किसानों की कथा सुनावेंगे। कि जिसके कारण वह गर्मी की जुताइयों के विषय में बिल्कुल ध्यान ही नहीं देते। जो किसान परमात्मा की असीम कृपा-से कर्ज़दार नहीं है। खाने-पीने से मज़े में हैं। वह फाल्गुन-चैत्र ( मार्च-अप्रैल ) में इसी फ़िक्र में लीन रहते हैं। कि किसी प्रकार से हमारी फ़सलें खेतों से कटकर खलिहान में जमा हो जाँय। येन केन प्रकारेण मजदूरों की क़िल्लतों के कारण आधे चैत्र तक (अप्रैल के पहिले सप्ताह तक) 'रबी' की सारी फ़सलें खलिहानों में जमा हो ती हैं। तब इन कृषकों को इससे अन्न-भूसे को अलग करने की धुन सवार होती है, और सपरिश्रम कुटुम्ब भर और मज़दूरों को लगा कर वैशाष (मई) तक खलिहान में अन्न और भूसा अलग कर लेते हैं।

इसी बीच में जो किसान किसान कहलाने योग्य हैं, और "जायद" की फ़सलें अर्थात - गन्ने और ईख इत्यादि की भी खेती

करते हैं। चैत्र के दूसरे पक्ष तक-अर्थात् नौरात्र (अप्रैल के दूसरे तीसरे सप्ताह) तक ईख इत्यादि की बुवाई कर देते हैं। इसके पश्चात् जब खलिहान में 'रबी' की फ़सलों से दाना और भूसा अलग-अलग हो जाता है। तो ज़मीदारों तथा ताल्लुक़ेदारों के सिपाही लट्ठ ले करके कृषकों की छाती पर सवार हो जाते हैं, और वैशाख (मई) में ही उनके अन्नों और भूसों को सस्ते-मंहगे बिकवा करके या स्वयं अपने स्वर्थानुसार ख़रीद करके उनसे मालगुज़ारी की वेबाकी की रक़म वसूल कर लेते हैं। तब ये बेचारे किसान ज्येष्ठ (जून) के महीने में या तो शादी-विबाहों में फंसकर अपना समय नष्ट कर देते हैं। या बहुत से किसान अपनी खेती-बारी-अर्थात् फल-फूल देने वाले बाग़-बग़ीचों के संरक्षण में अपना समय व्यतीत करके उससे तीन-चार महीने गुज़र-बसर करते हैं। क्योंकि भारतीय कृषकों की ज़िन्दगी का दारोमदार केवल कृषि-व्यवसाय पर ही नहीं है। कि इसी के ऊपर वह निर्भर रहते हैं; और अपना अधिकांश जीवन व्यतीत करते हैं। बल्कि भारतीय-कृषकों के जीवन व्यतीत करने का जितना सहारा "खेती" है। उतना ही सहारा "बारी" भी है। जो कि फल-फूल देने वाले बाग़-बाग़ीचों से घना सम्बन्ध रखता है। कुछ वर्षों से वर्तमान-काल में उत्तर भारत में खेती की भाँति "बारी" की फ़सल भी ख़राब होती चली जा रही है। इसी कारण से उत्तर-भारत के कृषक दिनों-दिन निर्धन होते चले जा रहे हैं। इसी प्रकार से कृषकों का कुछ समुदाय उपर्युक्त समस्यायों के उलझन में फँस कर, उसी के सुलझाने में दत्त

चित्त रहता है। उसे इस बात की खबर ही नहीं रहती। कि इन दिनों में भी खेती के लिये कुछ ऐसे कर्म्म करना चाहिये। जिससे अगली फ़सल से हमें उत्तम श्रेणी की पैदावार मिले। इसके सिवाय वे किसान जो कि ईख इत्यादि जायद की फ़सलों की तय्यारी में लग जाते हैं। गरमी की जुताइयों से अनभिज्ञ और उदासीन हो जाते हैं।

इसी कारण से उन्हीं के हितार्थ अब हम अपने किसान अथवा उन पाठकों को जो कि कृषि-विज्ञान से प्रेम रखते हैं—अथवा कृषि-व्यवसायी हैं—कुछ 'ग्रीष्म-कृषि कर्म्म' के बारे में बता करके तब विशद और विस्ताररूप में गरमी की जुताइयों का वर्णन करेंगे। जिससे 'ग्रीष्म कृषि-कर्म्म' की सारी बातों का ज्ञान हमारे पाठकों को हो जाय। जिससे इन कार्य्यों को व्यावहारिक रूप देकर के वे कुछ लाभ भी उठा सकें।

ग्रीष्म-ऋतु में चार महीनों की गणना की जाती है और उन महीनों के नाम अग्र लिखित हैं। फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ (मार्च से जून तक)। इन्हीं महीनों को ग्रीष्म-ऋतु कहते हैं। भारतीय सिद्धान्त और धर्म्मानुसार इन्हीं महीनों से—अर्थात् चैत्र के शुक्ल पक्ष से ही भारतीयों का नव वर्ष भी आरम्भ हो जाता है। इन ग्रीष्म-ऋतु के दिनों में हमारे किसानों के ऊपर इतने आवश्यक कार्य्यों का बोझ लद जाता है। कि यह बेचारे इन काम के बोझों से दब जाते हैं, और अपने कार्य्यों का उचित वर्गीकरण (बंटवारा) न कर सकने के कारण, बहुत से अनिवार्य्य कार्य्यों की ओर बिलकुल

ध्यान ही नहीं देते। उनकी समझ में जो कुछ आता है। वही कार्य्य करने लगते हैं।

इस सम्बन्ध में हम अपने कृषि-व्यवसायी कृषक पाठकों को यही सम्मति देना अपने विचारानुसार श्रेयस्कर समझते हैं। कि हिन्दू वर्ष के अन्त फाल्गुन (मार्च) मास में ही वर्तमान साल के आय-व्यय का एक चिट्ठा बना डालें। कि इस वर्ष में कृषि-व्यवसाय में हमारा कितना व्यय हुआ। और कितनी आय हुई, और इस आय को हमने किस प्रकार से व्यय किया। हमारा कोई व्यय (ख़र्च) ऐसा तो नहीं हुआ। जो कि व्यर्थ कहा जा सकता है। इस प्रकार से इस वर्तमान वर्ष के आय-व्यय के ऊपर भली प्रकार से विचार करना चाहिये; और अपने परिवार के राय देने वाले कुटुम्बियों से तथा अन्य व्यावहारिक पुरुषों और मित्रों से राय लेनी चाहिये, और उनको अपने आय-व्यय के चिट्ठे को दिखाकर जिस मद में कम करने की आवश्यकता हो, उस मद में व्यय को कम करके आय को निरन्तर बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिये। इस प्रकार से वर्तमान वर्ष के आय-व्यय का एक ख़ुलासा चिट्ठा फाल्गुन मास से आधे चैत्र मास तक में तय्यार करके जान लेना चाहिये। कि कितना धन धान्य हमें औरों को देना, अथवा कितना धन-धान्य हमें औरों से लेना है। इस प्रकार से अपनी आय और व्यय का एक खाता बना कर वर्तमान साल की सारी आमदनी और ख़र्च का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् हमारे कृषकों को चाहिये कि वे सारे धार्मिक कार्य्यों (जैसे विवाह उत्सव इत्यादि प्रबन्ध) को परिवार के

किसी आदमी अथवा अपने मित्र के हवाले कर दें, कि इन उत्सवों का भार आप के ऊपर है, और इससे अधिक खर्च करने की इन उत्सवों में आवश्यकता नहीं है। जब इस प्रकार से सारे धार्मिक तथा परिवार सम्बन्धी अन्य आवश्यक कार्यों का प्रबन्ध फाल्गुन (मार्च) मास में किसी एक पुरुष के हवाले हो जाय। तो कृषि कर्म्म में प्रवीण किसी पुरुष के हवाले कृषि कर्म्म का सारा आवश्यक कार्य्य सौंप देना चाहिये। कि तमाम 'रबी' की फ़सलों को खलिहान में मा करके वैशाष ( आधी मई ) तक हमें इस बात का विवरण मिल जाना चाहिये। कि 'रबी' की किन किन फ़सलों से हमें कितना कितना अन्न और भूसा मिला। अन्न और भूसे से इस बात का पता लगा लेना चाहिये। कि कितनी आय हुई, और कितना ख़र्च हुआ। यह सब होते रहने के साथ ही साथ कुछ हलवाहों तथा अन्य कृषि-सहायकों को इस बात की पहिले ही से ख़बर ( फाल्गुन में ही ) दे देनी चाहिये। कि अमुक-अमुक खेतों में यह-यह फ़सले बोई जाँयगी। जिससे वे गन्ना, ईख तथा इसी प्रकार की अन्य फ़सलों के लिये खेतों को तय्यार करते रहें, और समय पर इन फ़सलों को बो दिया करें। इसी प्रकार कुछ आदमियों के सुपुर्द करते हुये जो कि खेती ही के काम के लिये चुने गये हैं। इस बात की भी ताक़ीद कर देनी चाहिये। कि फ़सल के कटने, और खेतों के साफ़ हो जाने के बाद से ही, उनका यह काम होगा। कि वह खेतों में गरमी की जुताइयां आरंभ कर दें, और चैत्र से लेकर ज्येष्ठ तक "सीर" के सारे खेतों की जुताई कम से कम चार बार तो अवश्य ही कर

हैं. और साथ ही उन्हें इस बात की भी हिदायत रहनी चाहिये। कि अमुक-अमुक खेतों में अमुक-अमुक फ़सलें बोई जाँयगी इसलिये इन खेतों की जुताइयाँ इस रीति से इन दिनों में इतनी इतनी बार करनी चाहिये। जब इस प्रकार से खेती का सारा काम और साथ ही परिवार का सारा काम पहिले ही से बँटा रहेगा। तो सब काम नियमानुसार होता चला जायगा। किसी भी कार्य्य में विघ्न-बाधा उपस्थित न होगी। इन तमाम कामों के सिवाय परिवार प्रधान (आला मालिक) का यह भी कर्त्तव्य होगा। कि वह सरकारी मालगुज़ारी ठीक समय पर अदा कर दे। जिससे किसी अदालती कारवाई में वह न फँस सके; और साथ ही साथ अन्य अदालती कारवाइयों का भी उचित प्रबन्ध कर दें। जिससे कृषि-व्यवसाय के कामों में कोई अड़चन न पड़ सके। इस प्रकार से जब कुटुम्ब का तथा खेती का काम पहिले ही से बांट दिया जायगा; और सब लोग अपने अपने कर्तव्यों पर डट जाँयगे। तो इस नूतन वर्ष से ही वह परिवार सुखी और धन-धान्य से सम्पन्न होने लगेगा, और उस का पारिवारिक जीवन सुख से व्यतीत होगा। इस के सिवाय परिवार-प्रधान का यह भी कर्तव्य होगा। कि जब 'रवी की फ़सलों का फल प्राप्त हो जाय—अर्थात् भूसे और अन्न की उपज तथा आय-व्यय का चिट्ठा बन जाय। तो उन समग्र लेन-देन के व्यवहारों को भी समझ लेना चाहिये, कि हमें कितना बीज औरों को देना या लेना है इस प्रकार का सारा हिसाब साफ़ कर के, और लेन-देन का सारा

मामला तथा झमेला निपटा कर के तब यह देखना चाहिये कि हमें वास्तव में खेती से कितना लाभ हुआ। जब वास्तविक लाभ का पता लग जावे। तो इन सब बातों पर विचार करना चाहिये कि इस लाभ से हमारे परिवार का सारा खर्च निभ सकता है। या कि हमें वर्ष के भीतर ही क़र्ज़ लेना पड़ेगा। इसका ठीक ठीक पता लगा कर, हरेक कृषक यह जान सकता है। कि हमारी कृषि के व्यवसाय की दशा उत्तम है अथवा मध्यम—तब उसे अपने मध्यम दर्जे के कृषि व्यवसाय को उतम दर्जे के बनाने की फिक्र में कृषि विशारदों के पास जाना चाहिये, और उनसे अपनी कहानी कह कर के उनसे राय लेनी चाहिये। कि हमें ऐसी तरकीब बताइये कि हम अपने इसी व्यवसाय के द्वारा अपने परिवार का पालन-पोषण करते हुये सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें। मेरे विचारानुसार मेरी समझ में यही "ग्रीष्म कृषि कर्म्म" है। जिसे करने से हरेक कृषि-व्यवसायी कृषक अपना जीवन सुखमय तरीकों से बिता सकता है। अन्यथा कोई भी दूसरा तरीक़ा नहीं है। न हो सकता है। जो कि कृषक-जीवन को सुखमय बना सके।
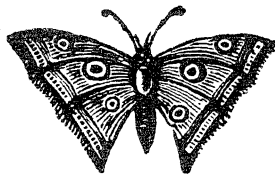
# गरमी की जुताई

गले अध्याय में हमने इस बात पर विचार किया था। कि ग्रीष्म-ऋतु में किसानों का वास्तविक कर्तव्य क्या है। जिसके करने से उनका कृषि-व्यवसाय सुगमता से लाभ-दायक हो सकता है। अब हम अपने पाठकों को गरमी की जुतइयों के विषय में उन वैज्ञानिक बातों की कथा सुनावेंगे, जो कि वैज्ञानिक-संसार के कृषि-क्षेत्रों में आश्चर्य्य-जनक परिवर्तन करके फ़सलों की उपज को दुगुना-तिगुना कर दिया है। साथ ही बीजों की बनावट तथा पुष्टता में एवं उनके प्रत्येक अंगों में आवश्यक सुधार कर दिया है। जिससे कृषि-सम्बन्धनी सारी बनस्पतियों का बानस्पतिक शास्त्रानुसार उचित सुधार हो गया है। जिससे भारतीय-बनस्पति संसार में भी अनेकों लाभदायक कार्य्य पूर्ण रूप से सफलीभूत हुये हैं।

बहुत से विदेशी तथा स्वदेशी कृषि-विज्ञान विशारदों का यह अटल तथा पक्का विश्वास था। कि भारतीय कृषकों को गरमी की जुताइयों के लाभ और उसकी अमूल्यता मालूम ही नहीं है। परन्तु यह भ्रम-पूर्ण विश्वास कृषकों के सहवास से तथा उनसे बात चीत करने से और उनके कृषि-सम्बन्धी कार्य्यों को तुलनात्मक

दृष्टि से आलोचना करने से जाता रहा। क्योंकि यह अधिक-तर देखने में सदैव आता है। कि जिस-जिस वर्ष जब कभी जाड़े के महीनों ( पूस-माघ ) में पानी बरस जाता है, तो बहुत से किसान अपने पलिहार ( Fallow ) खेतों को जोतते हुये देखे जाते हैं।

इतना ही नहीं, जब संयोग-वश जाड़ों में वर्षा नहीं होती। वरन् चैत्र-वैशाख के महीनों में पानी बरस जाता है। तो भी अधि-कतर कुछ किसान अपने खेतों को जुतवा दिया करते हैं। यह रिवाज़ भारत के कृषकों में अभी तक प्रचलित है। हमारा स्वयं अनुभव है। हमने अपने प्रान्त के भी कृषकों को ऐसे समयों पर जब कभी उल्लिखित महीनों में पानी बरस गया है। तो खेतों को जोतते हुये देखा है। इस सम्बन्ध में हमने जब इन किसानों से बातचीत करते हुये पूछा कि इन महीनों की जुताइयों में क्या खूबी अथवा विशेष लाभ है। जो तुम खेतों की जुताइयां किया करते हो। तो उन किसानों ने साफ़-साफ़ शब्दों में उत्तर में यही कहा कि आजकल यदि एक बार भी खेत जोत दिया जाय। तो खेत की मिट्टी बन जाती है—अर्थात खेत में फ़सलों की उपज बढ़ाने के लिये अथवा अच्छी पैदावार हासिल करने के लिये खेत में खाद डालने की आवश्यकता बहुत ही कम पड़ती है। क्योंकि इस जुताई के कारण खेत की जुती हुई मिट्टी स्वयं खाद स्वरूप हो जाती है। इस प्रकार की बातचीत से यह साफ़ ज़ाहिर है। कि भारतीय किसान-समुदाय भी गरमी की जुताइयों के लाभों से अभिज्ञ और परिचित है। परन्तु साधन-हीन होने से तथा वैज्ञानिक शिक्षा के

अभाव से अभी तक वह गरमी की जुताइयों की कुछ परवाह नहीं करता। किसानों की इसी उदासीनता के कारण बहुत से स्वदेशी विदेशी कृषि-वैज्ञानिक भारतीय कृषकों को लकीर के फ़क़ीर मूर्ख जाहिल इत्यादि कहा करते हैं।

परन्तु पाठकों! को यह स्मरण रखना चाहिये, और हमारी इस बात पर अवश्यमेव विश्वास करना चाहिये कि जब भारतीय-किसान 'कृषि कर्म्म' को व्यावसायिक रूप दे देंगे, और कृषि-कर्म्म को व्यावसायिक तरीक़ों पर करने लगेंगे, और सांसारिक-व्यावसायिक देशों के बीच घोर संघर्षण होने लगेगा। तो बाजी मार ले जाने की अथवा अपने व्यवसाय को स्थायी रखने की चेष्टा तथा धुन में गरमी की जुताइयों का ही क्या! समग्र वैज्ञानिक रीति-रिवाजों का क्रियात्मक-व्यवहार और प्रयोग करने लगेंगे।

वर्तमान-काल में अधिकांश भारतीय-किसान-समुदाय गरमी की जुताइयों से बिलकुल ही उदासीन रहते हैं। वह सांसारिक अन्यान्य कार्य्यों में फंस कर गरमी की जुताइयों की ओर कुछ ध्यान ही नहीं देते। अधिकतर, जब बरसात आरम्भ हो जाती है तब भारत के किसान खेतों की जुताई आरम्भ करते हैं। सबसे पहिले उन खेतों की जुताई किया करते हैं। जिनमें उन्हें खरीफ़ की फ़सलें बोना है। अपने इस नियमानुसार जब वह जुताई करके खरीफ़' की फ़सलों की बुवाई कर चुकते हैं। तब अवकाश पाने पर 'रबी' की फ़सलों के खेतों की जुताई किया करते हैं। परन्तु वर्तमानकाल में वैज्ञानिक सिद्धान्तानुसार यह प्रथा अथवा रीति-रिवाज त्याज्य और

हानिकारक सिद्ध हो गई हैं। इसीसे तमाम सभ्य देशों के कृषकों ने इस अनिष्टकारी प्रथा का त्याग करके वैज्ञानिक-प्रथा का अनुकरण कर लिया है। और इसी प्रथा के अनुकरण के प्रभाव से आज वह संसार में अपने कृषि-व्यवसाय की सत्ता तथा स्वत्व को स्थायी रक्खे हुये हैं।

भारतीय किसानों से हमारा यही कहना है। कि अब उन्हें भी जगना चाहिये। और आखें खोल कर संसार की कृषि-व्यवसायिक प्रगति का अवलोकन करके कृषिक्षेत्रों के सुधारार्थ कर्म्म-क्षेत्र में पदार्पण करना चाहिये। साथी ही अपनी उन प्राचीन प्रथाओं तथा रीति रिवाजों को त्याग कर देना चाहिये। जो कि वर्तमान काल में हानिकारक सिद्ध होगई हैं, और जो हमारी कृषि की उपज में दिनों दिन घटती ही क ती चली जा रही हैं। इसके सिवाय भारतीय किसानों से मेरा यह भी कहना है। कि यदि वे लकीर के फ़कीर तथा मूर्ख एवं अशिक्षित शब्दों से दिली घृणा करते हैं तथा इन शब्दों से सम्बोधित करने वालों को यह दिखला देना चाहते। हैं कि तुमने आज तक इन शब्दों का व्यर्थ में मेरे नाम के साथ व्यवहार किया है। तो आपका सर्व प्रथम यह कर्तव्य होना चाहिये कि आप प्रान्तीय अथवा राजकीय एवं स्थानीय कृषि-विशारदों की रायों तथा शिफारसों पर विश्वास करके उनको कार्य्य रूप में परिणित करके उनका प्रयोग करिये। कि वह आपके लिये लाभदायक हैं—अथवा हानिकारक। यदि वे आपके लिये आपके प्रयोगों और अनुभवों से लाभदायक सिद्ध हो जांय। तो उनको

ग्रहण कर लीजिये, यदि वह हानिकारक सिद्ध हो जांय, तो उनको व्यवहार में न लाकर के सदैव के लिये वहिष्कार कर दीजिये।

उपर्युक्त पंक्तियों में अब तक हमने यही वतलाने का प्रयत्न किया है। कि गरमी कि जुताइयों के लाभ से हमारे देशवासी किसान भी परिचित हैं। इसमें संदेह नहीं है। परन्तु तो भी आजकल की वैज्ञानिक खोजों की जानकारी न होने से तथा साधन-हीन होने से वे इन जुताइयों को करते ही नहीं हैं अब हम अपने पाठकों को यह वतलाने का प्रयत्न करेंगे। कि किन किन तरीक़ों से गरमी की जुताइयां करनी चाहिये।

साधारणतया हमारे देखने में यही आया है। कि अधिकतर भारतीय कृषक समुदाय सिवाय गन्ने की फ़सलों के अन्य फ़सल के लिये बहुत ही कम खेतों को पलिहर ( Fallow ) रखते हैं। कहने का मतलब यह है। कि वह ग्रीष्म-ऋतु को छोड़ कर अन्य मौसिमों में खेतों से कोई न कोई फ़सलें लिया ही करते हैं। वह सरकारी फ़ार्मों की भांति ज्वार, कपास, बाजरा (खरीफ़) की फ़सलें लेने के पश्चात् 'रबी' की फ़सल के समय इन खेतों को छोड़ नहीं रखते। बल्कि इन खेतों से अरहर या मटर तथा चने की कोई न कोई फ़सल 'रबी' के मौसिमों में भी लिया करते हैं। जिससे किसानों के गन्ने वाले खेत को छोड़ कर अन्यान्य तमाम खेतों में 'रबी' के मौसम में भी कोई न कोई फ़सल खड़ी रहती है। इस कारण वश पूस, माघ, फाल्गुन में वर्षा हो जाने पर भी किसान समुदाय गरमी की जुताइयां नहीं कर सकता। गरमी की जुताई रबी की

फ़सलों के कट जाने के बाद ही हो सकती है, और वास्तव में चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ की ही जुताइयां गरमी की जुताइयां भी कही जा सकती हैं, और इन्हीं महीनों की जुताइयों से गरमी की जुताइयों का मक़सद भी पूरा हो सकता है।

कई वर्षों के लगातार अनुभवों से समस्त देश के कृषि-वैज्ञानिकों ने यह मत निश्चित रूप से पक्का कर लिया है। कि हरेक फ़सलों के कट जाने के पश्चात् जितनी जल्दी हो सके, खेतों को शीघ्र से शीघ्र तुरन्त जोत देना चाहिये। इन शीघ्र की जुताइयों से उन जुताइयों की अपेक्षा जो देर में की जाती हैं। फ़सलों से अधिक पैदावार मिलती है। इस बात के अनेकों अनुभव तथा प्रयोग हमारे देश के राजकीय ( the imperial department of agriculture in India ) तथा प्रान्तीय कृषि विभाग के अधिकारियों ने अपने अपने आधीनस्थ फार्मों पर करके यह सिद्ध कर दिया है। कि जल्दी की जुताइयों से देर की जुताइयों की अपेक्षा फ़सलों से अधिक उपज मिलती है। जैसा कि निम्न लिखित अनुभवों से प्रत्यक्ष प्रकट होता है।

यह अनुभव युक्त-प्रान्तीय कृषि-विभाग की मध्यमी सरकिल के कल्यानपूर फार्म पर किया गया था। 'रबी' की फ़सल के कट जाने पश्चात् खेत की शीघ्राति शीघ्र जुताई बैशाष के महीने में की गई थी और देर वाली जुताई ज्येष्ठ के महीने में की गई थी। इन खेतों की जुताई करके ज्येष्ठ महीने के अन्तिम दिनों में दोनों खेतों में कपास बोई गई थी। जिनका फल निम्न लिखित है।

शीघ्राति शीघ्र जुते हुये खेत से—८ मन ४ सेर कपास प्रति एकड़ उपजी।

देर में जुते हुये खेत से—५ मन २६ सेर कपास प्रति एकड़ उपजी।

इस अनुभव से स्पष्ट है। कि खेतों में से जब फ़सल कट जाय। तो जितनी जल्दी हो सके खेत को जोत डालना चाहिये। क्योंकि इस शीघ्राति शीघ्र की जुताई का प्रभाव अगली बोई जाने वाली फ़सलों की उपज तथा अन्यान्य बातों पर अच्छा पड़ा करता है। अस्तु, यह आवश्यक बात तो सब पाठकों को विदित हो गई। अब रह गई यह बात कि गरमी की जुताइयों को किस प्रकार से और किस रीति से करना चाहिये। जिससे अधिक से अधिक उपज प्राप्त करने की आशा हो सके।

इस सम्बन्ध में अनेकों स्वदेशी-विदेशी कृषि-वैज्ञानिकों ने अपने अपने विचार अनेकों तरीकों से प्रकट किये हैं। जिसका सारांश यही है, कि जिस प्रकार से हो सके, उसी प्रकार से किसानों को गरमियों के दिनों में अवश्य खेतों को जोतना चाहिये। क्योंकि इससे सर्वांश में लाभ ही है, हानि नहीं। परन्तु यह सब होते हुये भी गरमी की जुताइयों के विषय में हमारा एक ख़ास निजी अनुभव और राय है। उसी के आधार पर हम अपना निम्न-लिखित अनुभव, वक्तव्य-रूप में उल्लेख करता हूं। जिससे पाठक-गण भली भांति समझ जायंगे कि गरमी की जुताइयों के विषय में हमने कितनी छान-बीन कर के तब निम्नलिखित राय क़ायम

की है; और उसी राय के भरोसे पर अपने देश भाइयों से यह कहने का दावा करता हूं। कि यह मेरी अनुभव की प्रणाली देश के कृषि-व्यवसायी किसानों के लिये लाभ प्रद है। इस कारण इस कार्य्य प्रणाली का प्रयोग और व्यवहार करके लोगों को इस प्रणाली को कसौटी पर कसना चाहिये। यदि कसौटी पर कसे जाने पर यह प्रणाली खरी निकले। तो इसे देशवासी कृषकों को ग्रहण कर लेना चाहिये। वरना इस खोटी प्रणाली को खोटी सिद्ध करके त्याग देना चाहिये। परन्तु इस अनुभूत प्रणाली को एक बार अवश्य सब किसानों को कसौटी पर कसना चाहिये।

जब से मुझे कृषि-कर्म्म से तथा इस व्यवसाय से श्रद्धा उत्पन्न हुई। तभी से मैंने इस कार्य की ओर अपना अधिकाधिक समय देकर इसकी बारिकियों को देखने और जानने का प्रयत्न करके तमाम वे बातें लगभग साधारणतः जान लीं। जो कि किसान अथवा खेती का व्यवसाय करने वाले एवं जमींदारों के बच्चों को जानना चाहिये। तत्पश्चात् मैंने वैज्ञानिक कृषि-कर्म्म के अध्यानार्थ अपना हौसला बढ़ाया। ईश्वर की कृपा से तथा पिता जी के धर्म्म से मैं ने प्रान्तीय कृषि-कालेज कानपुर में अपना प्रवेश येन केन प्रकारेण करा करके भली प्रकार से वैज्ञानिक कृषि-कर्म्म की व्यावहारिक और सैद्धान्तिक बातों की जानकारी प्राप्त करके और कालेज की अन्तिम वार्षिक परीक्षा पास करके अपने कर्म्म-क्षेत्र में अवतीर्ण हो गया।

कालेज-जीवन के समय में ही जब मुझे कृषि-विज्ञान की नव-

आविष्कृत विभूतियों का आश्चर्य्यजनक अभिनय दिखलाई पड़ता था। तो मुझे अत्यन्त आनन्द और खुशी प्राप्त होती थी जिसका वर्णन करने में सचमुच में मेरी लेखनी असमर्थ है।

इसका प्रधान कारण यह है। कि कालेज-जीवन में मेरे सहपाठी योरोपीय वैज्ञानिकों की आविष्कृत कृषि विभूतियों को देख कर चकित हो जाते थे। और उन्हीं को वैज्ञानिकों का परमेश्वर समझ कर वह से कृषि-विज्ञान की उन्नति की पाराकाष्ठा की इति श्री समझ लिया करते थे। परन्तु हम सदैव यही समझते रहे हैं कि इनमें संदेह नहीं कि इन योरोपीय वैज्ञानिकों ने सचमुच में वर्तमान काल में लोकोपकारी बातों का अनुसंधान तथा आविष्कार किया है। इस कारण यह श्रद्धा के पात्र हैं। इतने पर भी मेरा यह अटल विश्वास था, और है कि वह समय दूर नहीं है। शीघ्र ही आयेगा। जब कि भारत में भी वैज्ञानिक खोजों तथा आविष्कारों का प्रति दिन ढेर लग जाया करेगा, और उसे पढ़कर लोग आश्चर्य्य के गर्त में पड़ जाया करेंगे, खैर।

इन बातों को छोड़ कर हम अपने पाठकों को तथ्य बातों की ओर आकर्षित करता हूँ। जब मैं कालेज-जीवन में नित्य खेतों को नये नये प्रकार के हलों से जोतते देखा तो सब से पहिले मेरा ध्यान खेतों की जुताइयों पर ही आकृष्ट हुआ। इसहेतु मैंने अपने कालेज-जीवन में खेतों की जुताइयों पर तथा भिन्न भिन्न प्रकार के हलों पर भली प्रकार से अध्यवसाय द्वारा अध्ययन किया। जब तमाम बातें जुताइयों के सम्बन्ध की मेरे ध्यान में आगईं, तो मैंने

भारतीय कृषकों और विदेशी कृषकों की जुताइयों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करना प्रारंभ कर दिया।

कुछ दिनों तक मैं इसी तुलनात्मक दृष्टि के आलोचनात्म विचार में उलझा पड़ा रहा। कि इतने ही में कालेज-जीवन समाप्त हो गया और मैं अन्तिम वार्षिक परीक्षा में उत्तीर्ण होकर अपने कृषि क्षेत्र रामगढ़ में वापिस चला आया। परन्तु यहाँ आने पर भी हम यहाँ अधिक दिन तक ठहरना उचित न समझ करके, इसलिये इस कृषि क्षेत्र को कुछ दिनों के लिये छोड़ दिया। क्योंकि यहाँ के विषय में मुझे समग्र बातों की जानकारी पहिले ही से थी। इस स्थान को छोड़कर ग्रीष्म ऋतु की जुताइयों पर (hot weather cultivation) व्यावहारिक अनुभवात्मक ज्ञान प्राप्त करने के लिये सन् १९२३ ई० की ग्रीष्म ऋतु में हिन्दू युनीवर्सिटी बनारस के कृषि क्षेत्र पर चला। गया। वहां पर मैं लगभग डेढ़ मास तक डेयरी फार्म में ठहर कर गरमी की जुताइयों का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करता रहा। यह अनुभव मैंने केवल विश्वविद्यालय के कृषिक्षेत्र पर ही नहीं किया। वरन् कृषक-समाज के बीच अच्छे अच्छे किसानों की सहायता से किसानों के खेतों पर भी करता रहा। इससे हमें इस प्रान्त के पूर्वीय सरकिल की जुताइयों के विषय में अनेकों ज्ञातव्य बातें मालूम हो गईं। तब मैंने उस स्थान को भी छोड़ दिया और प्रान्त में भ्रमण करने लगा। इस काम के हेतु मैं लगभग तीन चार मास तक प्रान्त के भिन्न भिन्न स्थानों में भ्रमण करके जुताई का ज्ञान प्राप्त करता रहा। इसी बीच में हम इस प्रान्त के मुख्य कृषि-स्थान

कानपूर में अनेकों बार जाकर के और महीनों ठहर कर बहुत सी बातें मालूम की।

इस प्रकार हमने इसी प्रान्त में बरसात की जुताइयों के विषय में भी बहुत कुछ अनुभव प्राप्त किया। तत्पश्चात् हम पूर्वीय विभाग के मुख्य स्थान परतापगढ़ के एक्सपेरिमेंटल फ़ार्म पर आना-जाना आरम्भ किया, और हमने यहां पर गरमी की जुताइयों का तथा बरसात की जुताइयों का फल प्राप्त किया, और 'रबी' की जुताइयों के विषय में भी बहुत कुछ जानकारी प्राप्त कर के फिर अपने कृषि-क्षेत्र रामगढ़ पर चला आया। सन् २४ और २५ के अप्रैल मास तक कृषि-क्षेत्र रामगढ़ पर इसी विषय पर निरीक्षण परीक्षण करता रहा। इसके पश्चात् मिरज़ापूर के जंगली भागों का निरीक्षण करने के लिये ग्रीष्म-ऋतु में चला गया। यहां कि दशा निराली देख पुनः 'रबी' की तय्यारी के लिये हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, हिन्दी विद्यापीठ (महेवा) प्रयाग में लगभग ६ मास ठहर कर 'रबी' की जुताइयों का अन्तिम परीक्षण करता रहा तत्पश्चात् इस पुस्तक में अपनी जानकारी को व्यक्त कर दिया। तीनों मौसिमों की जुताइयों का फल और ज्ञान जो कुछ कि मैं ने प्राप्त किया है। उसीके आधार पर तथा अन्यान्य कृषि-वैज्ञानिकों की राय पर इन तीनों मौसिमों की जुताइयों पर हम स्वतंत्र रीति से इस लेख माला का उल्लेख कर रहे हैं। संभव है मेरे विचार और अनुभव तथा अन्यान्य समग्र बातों में कुछ त्रुटियां वैज्ञानिकों की दृष्टि में हो गई हों। पर मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यह बातें

यदि बताई हुई रीतियों पर व्यवहार में लाई जांयगी। तो हमारे देश के किसानों को कभी भी हानि होने की संभावना नहीं है। इसी कर्तव्य-परायणता के कारण मैंने इस परस्तुत-पुस्तक में जुताई के सम्बन्ध की सारी आवश्यक बातों पर अपना स्वतंत्र विचार प्रकट कर दिया है। आशा है कि हमारे देशवासी किसान अवश्य ही एक बार मेरे कहे हुये रास्ते पर चल कर के अपने खेतों की जुताई करेंगे।

फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ की ही जुताइयां वास्तव में गरमी की जुताइयां कही जा सकती हैं। इसमें संदेह नहीं है कि जैसा कि अधिकतर सरकारी फार्मों पर तथा कुछ किसानों के खेतों पर होता है। कि 'खरीफ़' की कुछ फसलों के कट जाने के पश्चात्, जैसे कपास और ज्वार इत्यादि के खेतों को खाली ( Fallow ) ( पलिहर ) छोड़ दिया जाता है—अर्थात उन खेतों में से कोई 'रबी' की फ़सल नहीं ली जाती है इसलिये यदि इन खेतों को फ़सलों के कट जाने के पश्चात् चाहे पलेवा ( सिंचाई ) करके अथवा महावट के हो जाने से शीघ्र से शीघ्र जोत दिया जाय और इन खेतों को गरमियों के दिनों में हवा, धूप इत्यादि के भाव से प्रभावित होनेके लिये छोड़ दिया जाय। तो यह जुताइयाँ भी गरमी की जुताइयाँ कही जा सकती हैं, और इन जुताइयों से भी वही लाभ तथा फल प्राप्त हो सकता है। जो चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ के महीनों में की जांयगी। परन्तु इसमें संदेह नहीं है कि इन जुताइयों के आगे पीछे होने के कारण उपज में अवश्य घट-बढ़

हो जायगी। इसका प्रधान कारण यही है। कि जो खेत शीघ्र जोता गया है, और उस खेत के धरातल की मिट्टी पर भली प्रकार से भौतिक-शक्तियों का आघात-प्रघात हुआ है। जिसके कारण से धरातल की मिट्टी में अनेकों प्रकार के रासायनिक और भौतिक परिवर्तनों के हो जाने के कारण से पौधों की खूराक अधिक मात्रा में जमा हो गई है। जिसके खाने से पौधे अधिक पैदावार अपनी फ़सलों द्वारा दे सकते हैं। जिनकी कि जुताई चैत्र, वैशाष या जेष्ट में की गई है।

पर इतने पर भी हम अधिकतर यही देखते हैं। कि अधिकांश भारतीय किसान खरीफ़ की फ़सलों के पश्चात् भी कोई न कोई 'रबी' की फ़सल अवश्य ही अपने खरीफ़ वाले खेतों से लिया करते हैं। इस कारण वे 'रबी' की फ़सलों की कटाई के पहिले पूर्ण रूपेण गरमी की जुताइयों को नहीं कर सकते। परन्तु जिनके खेत फाल्गुन, चैत्र के पहिले ही फ़सलों के कट जाने के पश्चात् खाली हो जाँय। उन्हें गरमी की जुताइयों के ही उद्देश्यानुसार अपने खेतों की जुताइयाँ कर देनी चाहिये। इससे महान लाभ है; और इन महीनों की जुताइयों में अनेकों प्रकार के लाभदायी पदार्थ भरे हुये रहते हैं। जिन्हें हम अगली बोई जाने वाली फ़सल के उपज के रूप में देख सकते हैं।

जिन किसानों का खेत रबी की फ़सलों के कारण खाली नहीं रहता है। उनका यही कर्तव्य है। कि जब रबी की फ़सलें कट जांय, और खेत खाली हो जांय। तो जितनी जल्दी हो सके उतनी

ही जल्दी इन तमाम खेतों को एक बार अवश्य किसी न प्रकार से जोत दें। उस समय यह ख्याल कभी भी नहीं करना चाहिये कि अभी अमुक काम पिछड़ा हुआ है। उसे करके तब इस खेत को जोतेंगे। अभी तो असाढ़ तक खेतों को जोतने का समय है। यह राय, ख्याल, विचार तथा प्रथा भारतीय किसानों के लिये क्या समग्र संसार के किसानों के लिये हानिकारक तथा अनिष्ट-कारी है।

इस सम्बन्ध में यह प्रश्न सहज ही उठ सकता है कि रबी कि फ़सलों के कट जाने पश्चात् यदि गरमी की जुताइयों को करना ही है। तो क्यों न गरमी की जुताइयों के नियम तथा उद्देश्यानु-सार जुताइयाँ की जाँय। जिससे पूर्णांश में गरमी की जुताइयों का फल प्राप्त हो सके। इस वाद-विवाद के पक्ष में हम अभी इतना ही कह देना पर्य्याप्त समझते हैं। कि यदि भारतीय किसान गरमी की जुताइयों को गरमी की जुताइयों के ही नियम तथा उद्देश्यानुसार वैज्ञानिक रीति रिवाजों पर कर दें। तो कहना ही क्या है। तब तो 'सोने में सुहागा वाली' भारतीय कहावत का अर्थ चरितार्थ ही हो जाये। परन्तु, अभी तक तो मेरा यही विश्वास है कि निकट-भविष्य में वैज्ञानिक-प्रणालियों तथा पद्धतियों द्वारा भारतीय कृषक-समुदाय कभी भी गरमी की जुताइयों के करने में समर्थ नहीं हो सकता।

इसका मुख्य तथा प्रधान कारण यही है। कि गरमी की जुताइयों के करने के लिये खेतों का पलेवा ( सिंचाई ) कर लेना अत्यन्त ही

आवश्यक है। क्योंकि जब खेतों को पलेवा ( सिंचाई ) करके खेतों को जोता जायगा। तो उससे अधिक लाभ होगा, और खेतों में हल भी आसानी तथा सुगमता से चल सकेगा, और साथ ही बैलों को भी हलों के खींचने में सूखी भूमि का की अपेक्षा कम शक्ति (ताक़त) लगानी पड़ेगी। इसके सिवाय सिंचाई कर के खेतों को जोतने से खेत के धरातल की मिट्टी में अनेकों प्रकार के परिवर्तन होंगे। जिससे बहुत से अनघुलनशील पदार्थ घुलनशील हो जायंगे, और गरमी के मौसिम के प्रभाव से पौधों की ख़ूराक़ बन जांयगे। जो कि फ़सलों की उपज को अवश्य ही बढ़ा देंगे इसलिये 'रबी' की फ़सलों के कट जाने के पश्चात् अवश्य ही खेतों को सब से पहिले पलेवा (सिंचाई) कर देना चाहिये। तत्पश्चात् खेतों की जुताई करनी चाहिये। क्योंकि सूखे खेत की जुताई करने की अपेक्षा सिंचाई किये हुये गीले खेत की जुताई करना अत्यन्त ही लाभप्रद है।

एक बार कानपूर के एक्सपेरीमेंटल-फार्म पर गन्ने की मेड़ों की खुदाई करने के पश्चात् बिला पलेवा किये ही हुये पंजाब हल से खेत की जुताई की जाने लगी। गन्ने की मेड़ें इतनी सख़्त थीं कि बैलों ने ज़ोर से हल को खींचा परन्तु हल का फार (फल) किसी कारण से रुक गया, और बैल तिर्छे पड़ कर लौट पड़े। जिससे हल की हरीस टूट गई। इसी कारण संभव है, बिला पलेवा के और भी अनेकों हानियाँ किसानों को उठानी पड़ें। इसलिये यदि खेत की सिंचाई करके तब खेत की जुताई की जाय। तो सभी प्रकार से लाभ है। यही सारे

कृषि वैज्ञानिकों का मत है जो कि ठीक और व्यवहार में लाने योग्य है।

परन्तु, यह बात भारत के समग्र देश के किसानों के लिये ठीक नहीं उतर सकती है। क्योंकि सभी खेतों की भूमियों में खिंचाई के साधन प्राप्त नहीं है। इस कारण से ऐसे स्थानों के विषय में सहज ही में यह प्रश्न उठ खड़ा होता है। कि ऐसे स्थानों के लिये गरमियों की जुताइयों के लिये कौन सी रीति अथवा उपाय सफलीभूत हो सकता है? इस विषय में मेरा तो यही कथन है कि प्रायः सभी लोग किसी न किस प्रकार से रबी की फ़सलों की सिंचाई अवश्य ही किया करते हैं। इससे जब खेत की फ़सल पक जाती है। उस समय में भी खेतों में अवश्य ही कुछ न कुछ नमी रहती है। इसलिये फ़सलों के पक जाने के पश्चात् उसे तुरन्त ही काट कर खेतों को जोत देना चाहिये। इससे मेरे विचारानुसार सिंचाई के झंझटों को झेलने की आवश्यकता नहीं है। न सिंचाई कर के खेतों के जोतने की धुन ही में मस्त होकर के पलेवा करने के समानों के जुहाने की ही कठिनाइयों का सामना करना चाहिये।

इस समस्या के हल हो जाने के पश्चात् भी एक और समस्या हल करनी शेष है। जिसके विषय में कुछ न कुछ विवेचन करना मुझे यहां आवश्यक प्रतीत हो रहा है। संसार तथा भारत में बहुत से ऐसे स्थान भी हैं। जहां की खेती के लिये सिंचाई का साधन दुःसाध्य ही नहीं असंभव हैं। तब प्रश्न उपस्थित होता है कि यहां कैसे फ़सलों के कटने पश्चात् जुताइयां की जांय। इस सम्बन्ध में मेरा

यह विचार है। कि प्रत्येक किसानों को चाहिये कि अपने स्थानीय कृषि-विभाग के अधिकारी कर्म्म-चारियों से राय लें। मेरे विचार से उन अधिकारियों की राय समयानुसार उचित और लाभकारी होगी।

पर, तो भी मैं प्रस्तुत-पुस्तक में उन स्थानों की जुताइयों के विषय में अपना मन्तव्य प्रसंगानुसार अवश्य प्रकट करेंगे। इतना ही नहीं मेरा यह विश्वास है। कि मेरी राय उन स्थानों की जुताइयों के विषय में सर्वांश में नहीं तो अधिकांश में अवश्य ही लाभकारी सिद्ध होगी। ऐसे स्थानों की गरमी की जुताइयों के बारे में भिन्न भिन्न कृषि-वैज्ञानिकों की भिन्न-भिन्न रायें हैं। परन्तु मैं सब का विस्तारिक वर्णन न करके सब के मतों का सारांश में वर्णन कर दूंगा। जो कि वास्तव में उस स्थान की गरमी की जुताइओं के विषय में उपयुक्त होंगी।

लोकोपकारी वैज्ञानिक सिद्धान्तों के विषय में वर्तमानकाल में यह कह देना कि अमुक वैज्ञानिक सिद्धान्त जगत स्थित अमुक देश के लिये लाभदायक नहीं सिद्ध हो सका "भारीभ्रम" है। क्योंकि वर्तमान-काल में केवल विज्ञान की ही सर्वांश बातें सभी देशों के लिये एक सी लाभदायक सिद्ध हो रही हैं, और भविष्य में भी ऐसी ही लाभकारी सिद्ध होने का पूर्ण विश्वास है। संभव है, भविष्य में तमाम देशों के वैज्ञानिकों के नवीन आविष्कारों के कारण कुछ ऐसी नई बात पैदा हो जाँय, जो संसार के किसी किसी देश के लिये लाभप्रद हों, और किसी किसी देश के लिये हानिकारक। पर,

अभी तक तो ऐसा पढ़ने, देखने, तथा सुनने में वैज्ञानिक-संसार से कोई अजीब बात नहीं आई है।

हमने गरमी की जुताइयों के ऊपर बहुत से विदेशी-वैज्ञानिकों के विचारों का अध्ययन तथा मनन किया है। इन लोगों ने जो कुछ विचार भारतीय-कृषि पर गरमी की जुताइयों के विषय में प्रकट किये हैं, वह प्राय: योरोपीय और अमेरिकन कृषि-व्यवसायियों के वर्तमानकाल की प्रचलित रीति-रिवाजों तथा प्रथाओं के आधार पर लेख रूप में व्यक्त किये गये हैं। इसमें संदेह नहीं कि विदेशियों के ये सारे विचार वास्तव में ही भारत की कृषि के लिये भी लागू हो सकते हैं। पर, यह उसी समय हो सकता है। जब भारत भी उन देशों की भांति वैज्ञानिक विभूतियों से सराबोर हो जाय।

इसके सिवाय इन विदेशी कृषि वैज्ञानिकों ने भारत के सम्बन्ध में बहुत सी आवश्यक बातों का कहीं ज़िक्र भी नहीं किया। मेरी समझ में तो यही आता है। कि इन समग्र बातों का ज्ञान विदेशी कृषि-वैज्ञानिकों को था ही नहीं। नहीं तो अवश्य ही कुछ न कुछ विचार भारत के कृषि-सम्बन्धी इन विषयों पर अवश्य प्रकट करते। इसका मुख्य कारण यही है कि अभी तक भारत की तथा अन्यान्य देशों की कृषि-सम्बन्धी रीति-रिवाजों में इतना अन्तर है कि उसका सारा ज्ञान विदेशी कृषि-वैज्ञानिकों को हो ही नहीं पाया है। इसमें उनका कोई दोष नहीं है, क्योंकि जो कुछ वह जान सके, उस पर अपना विचार प्रकट कर दिया। इसके सिवाय वह कर ही क्या सकते थे?

इस समय भी भारत में जितनी वनस्पतियां भूमि पर उगती हैं। उतनी अमेरिका आदि अन्य देशों की भूमियों पर नहीं उगतीं। इसके साथ ही साथ कृषि सम्बन्धी रीति-रिवाजें भी जो कि किसी देश में प्रचलित हैं। वह उसी देश में प्रचलित रहेंगी। अन्य देशों में उनका प्रचार यदि वे किसी देश के लिये लाभप्रद हैं, तो उनका प्रचार धीरे ही धीरे होगा—अन्यथा उन रीति-रिवाजों का प्रचलन होना मुश्किल ही नहीं असंभव सा है। अधिकतर भारत के तमाम सरकारी फार्मों पर 'ख़रीफ़' की फ़सलों के कट जाने के पश्चात् अगले साल की 'रवी' की ही फ़सलों के लिये गरमी की जुताइयों का प्रयोग और व्यवहार किया जाता है।

उदाहरणार्थ जैसे गेहूँ ( रवी ) की ही फ़सल के लिये गरमी की जुताइयों की सिफ़ारिश की जाती है। ख़रीफ़ की फ़सलों के लिये कपास इत्यादि की फ़सलों को छोड़ कर शेप अन्य फ़सलों के लिये बहुत ही कम शिफ़ारिस की जाती है। इन तमाम बातों के अनेकों कारण हैं। जिनके जानने की आवश्यकता तो अवश्य ही भारतीयों को है। परन्तु इसका उल्लेख प्रस्तुत-पुस्तक में हम करना नहीं चाहते। फिर कभी किसी बहाने से हम आप लोगों को इसका कारण बतलावेंगे।

मुख्य मतलब तो यह है कि जिसका जिस पदार्थ से अधिक मतलब रहता है—अथवा जो जिस शिक्षा-पद्धति के ढङ्ग से शिक्षित हुआ है। वह उसी का अनुकरण करेगा। इसी कारण अधिकतर आप को सरकारीफार्मों के अधिक अनुभव गे त

पर ही मिलेंगे। शेष अन्य फ़सलों पर कम। क्योंकि अन्यान्य उन भारतीय फ़सलों के बारे में इन फार्मों पर तजरुबे कम किये जाते हैं। जो कि देश के कृषि-व्यवसायी किसानों के लिये अनिवार्य्य हैं। इस कारण हमने लगभग सभी क़िस्म की फ़सलों के बारे में गरमी की जुताइयों के प्रभावों के देखा तथा जांचा है। उसी के आधार पर हम आप लोगों को यह बतलाना चाहते हैं। कि गरमी की जुताइयों का वास्तविक प्रभाव प्रत्येक फ़सलों पर कैसा पड़ता है।

यह तो जानी और मानी हुई बात है। कि किसी भी फ़सल के कट जाने के पश्चात् तुरन्त ही उस खेत को जोत देना चाहिये। चाहे वह खेत ख़रीफ़ की फ़सलों के कट जाने के पश्चात् पूस, माघ में ही क्यों न महावट अथवा पलेवा करके जोत दिया जाय। चाहे 'रबी' की फ़सलों के कट जाने के बाद चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ में पलेवा करके अथवा आंधियों के पीछे हलकी वर्षा हो जाने के बाद जोत दिया जाय। लाभ दोनों ही दशा में है। अन्तर केवल इतना ही है। कि "ख़रीफ़" के खेतों का पलेवा 'रबी' के खेतों के पलेवा की अपेक्षा आसानी से किया जा सकता है। कारण यह कि इन दिनों किसानो को चैत्र, बैशाष की अपेक्षा काम कम रहता है, और जाड़े के दिनों में कुवें अथवा नहर तथा अन्य ज़रियों से पलेवा करने में उतनी कठिनाई नहीं उपस्थित होती। जितनी कि चैत्र इत्यादि गर्मी और काम के दिनों में पलेवा करने से उपस्थित होती है। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जिन ख़रीफ़

के खेतों को पलेवा करके अथवा महावट के बाद जुताई की गई है। उनकी अन्य जुताइयां जो कि पानी के बरसने के पहिले अर्थात् ज्येष्ठ तक में की जांयगी। फिर पलेवा करने की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार से 'रबी' की फसलों के कट जाने के पश्चात् चैत्र मास में कष्ट और खर्चे का विचार त्याग करके सभी खेतों में पलेवा (सिंचाई) कर के शीघ्र से शीघ्र खेतों को जोत देना चाहिये। इसके बाद जो जुताइयां खेतों में पानी के बरसने तक की जांयगी। उनके लिये पलेवा करने की कुछ विशेषावश्कता नहीं है।

खरीफ़ अथवा 'रबी' की फ़सलों के कट जाने के पश्चात जो खेत पलेवा करके जोत देने के पश्चात् गरमी के दिनों में भौतिक-शक्तियों के आघात-प्रघात को सहन करने के लिये छोड़ दिये जाते हैं, उनसे निम्न-लिखित लाभ होते हैं।

जिस फ़सल के कट जाने के पश्चात् खेत पलेवा करके जोत दिया जाता है। उस फ़सल की तमाम जड़ें भली भांति उखड़-पुखड़ करके ऊपर आ जाती हैं। चाहे वह फ़सल 'खरीफ़' की हो, चाहे 'रबी' की। इन जड़ों के ऊपर आने से वैसे तो बहुत से लाभ हैं। परन्तु सब से विशेष लाभ यह है कि फ़सलों को हानि पहुँचाने वाले अनेकों प्रकार के कीड़े हैं जो कि सदैव हमारी फ़सलों को नष्ट कर दिया करते हैं। जैसे, कपास, ईख, पौंडा, ज्वार इत्यादि फ़सलों की सूंड़ी। जो कि इन फ़सलों को हर साल बहुत ही हानि पहुँचाया करती है। इन फ़सलों के कट जाने के बाद ये सारे कीड़े इन्हीं फ़सलों के पौधों की जड़ों में धरातल तथा गर्भतल में छिपे

पड़े रहते हैं। बरसात में जोते जाने वाले खेतों में बोई जाने वाली अगली फ़सल को तथा खेत के आस-पास की फ़सलों को हानि पहुंचाया करते हैं। इनके लिये सर्वोत्तम उपाय यही है। कि इन फ़सलों के कट जाने के बाद पलेवा तथा जुताई करके इन बीमारी वाली फ़सलों की जड़ों को खेतों में से बीन करके खेत को जड़ रहित कर देना चाहिये, और इन जड़ों को इकट्ठा करके वहीं पर आग से जला करके ख़ाक कर देना चाहिये। इस उपाय से अधिकांश कीड़े जल कर नष्ट-बर्बाद हो जाँयगे। शेष जो कीड़े जड़ों से अलग हो करके, खेत के धरातल की मिट्टी पर पाये जाँयगे। उन्हें उन कीड़ों के शत्रु अनेकों प्रकार की चिड़ियायें और जानवर चुनकर खा जाँयगी। इस प्रकार यह कीड़े चिड़ियाओं का 'बीट' बनकर अथवा जड़ों के साथ जल कर राख के रूप में हमारे खेत की खाद बनकर उपज में वृद्धि किया करेंगे। इसके सिवाय जो कीड़े चिड़ियाओं के चुगे जाने पर भी शेष रह जाँयगे, वह और उनके अंडे-बच्चे फालगुन, चैत्र, वैशाख, जेठ की जुताइयों के होने से धरातल पर आते जाँयगे, और उन्हें चिड़ियायें चुगती जाँयगी, और जो शेष रह जाँयगे, वह ग्रीष्म-ऋतु की प्रखर धूप तथा लूह के झकोरों से जल कर निर्जीव हो जावेंगे। चाहे वह गर्भतल में ही क्यों न लुके रहें। इस उपाय से सारे हानिकारक कीड़ों से तथा उनके अंडे-बच्चों से हमारा खेत साफ़ और सुरक्षित हो जायगा। जिससे आगे बोई जाने वाली फ़सल से हानि होने की बहुत ही कम संभावना रहेगी।

इस प्रकार जब खेत खरीफ़ तथा 'रबी' की फ़सलों के कट जाने के बाद माघ, पूस, फाल्गुन, चैत्र इत्यादि किसी भी महीने में पलेवा करके जोत दिये जावेंगे, और उनमें से जड़ों को साफ़ कर दिया जावेगा। तो गरमी के दिनों में सूरज की किरणों तथा हवा को धरातल की मिट्टी में जाने का अच्छा मौक़ा मिलेगा, और ये दोनों भौतिक-शक्तियाँ बख़ूबी धरातल और गर्भतल में घुसकर वहाँ की मिट्टी पर अपना काम भली प्रकार से कर सकेंगी।

जब यह भौतिक-शक्तियां धरातल तथा गर्भतल में अपना प्रभाव पहुँचा देंगी। तो मिट्टी के कणों में अनेकों भौतिक और रासायनिक परिवर्तन होने लगेंगे। जिसका फल यह होगा कि बहुत से अनघुलन शील पदार्थ इन शक्तियों के प्रचण्ड प्रकोप से छीज ( पिघल ) जाँयगे। जिनके द्वारा पौधों के लिये पर्य्याप्त मात्रा में ख़ूराक तैयार हो जायगी। जिसे ग्रहण करके हमारी फ़सल के पौधे उत्तम श्रेणी की पैदावार दे सकेंगे।

इसके सिवाय जब पहिली वर्षा होगी तो उसका सारा पानी हमारे गरमी के जुते हुये खेत पी ( सोख, ) लेंगे। जिससे अनेकों लाभ हैं। कुछ लाभों का दिग्दर्शन निम्न-लिखित पंक्तियों में किया जा रहा है।

पहिली वर्षा के पानी में 'नाइट्रिक ऐसिड' अर्थात नत्रेत की की घुलित तथा मिश्रित मात्रा अधिक रहती है, और इस क़िस्म का पानी खेती की सभी फ़सलों के लिये बहुत ही लाभदायक है। जो बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है। वह सब का सब गरमी के जुते

हुये खेतों में सोख जाता है। जिससे कृषि-सम्बन्धी फ़सलों के के लिये नत्रजन सम्बन्धी ख़ूराक़ की पर्याप्त मात्रा हमारे खेत की भूमि में जमा हो जाती है, और उन खेतों का पानी बह जाता है। जो कि जुते हुये नहीं होते, इससे उन खेतों को वर्षा के इस पहिले पानी के लाभ से वंचित रहना पड़ता है।

इतना ही नहीं हम आगे कहीं लिख चुके हैं कि पहिली वर्षा के पश्चात् "नत्री-भवन" की क्रिया खेत के धरातल तथा गर्भतल में बड़े ज़ोरों से हुआ करती है। अतएव, ऐसा समझना चाहिये कि जिन खेतों में जुताई गरमी के दिनों में हुई होगी। उसमें 'नत्रीभवन' की क्रिया करने वाले जीवाणुओं के लिये सारी सामयिक आवश्यकतायें पर्य्याप्त मात्रा में परिपूर्ण होंगी। जिससे जीवाणुओं को 'नत्रीभवन' की क्रिया करने में सुगमता होगी, और फ़सलों के लिये खेत के धरातल तथा गर्भतल में 'नत्रेत' की अधिक मात्रा उन खेतों के धरातल और गर्भतल की मिट्टी की अपेक्षा संचय हो जायगी, जिनकी कि जुताइयाँ गरमी के दिनों में नहीं की गई थीं। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिये कि जिन खेतों में गरमी की जुताइयों के कारण वर्षा का पानी अधिक सोख जायगा। उन खेतों में फ़सलों की आवश्यकता के लिये पर्य्याप्त मात्रा में पानी जमा रहेगा। जिससे फ़सलों के उगने तथा उग कर बढ़ने में बड़ी सहायता मिलेगी, और फ़सलों की सिंचाई भी गरमी में बिना जुते हुये खेतों की अपेक्षा कम करनी पड़ेगा। इस कारण गरमी के दिनों की जुताइयों का कष्ट और खर्च इधर जाड़े के दिनों की

सिंचाइयों के खर्च में वसूल हो जायगा—अर्थात गरमी में जुते हुये खेतों में जो फ़सले 'रबी' में बोई जांयगी। उनकी सिंचाई में बिला जुते हुये खेतों की अपेक्षा कम पानी खर्च होगा।

कभी कभी ऐसा भी होता है। कि वर्षा काल के आरम्भ में एक या दो लहरा पानी जोरों से बरस जाता है। बाद को वर्षा कुछ दिनों के लिये बन्द हो जाती है। उस समय बारिश की कमी से भी जिन लोगों ने गरमी की जुताइयां की हैं। उनके खेतों में इतना पानी जमा रहता है कि वे विना पलेवा (सिंचाई) किये हुये खेतों की बुवाई कर सकते हैं। पर वे लोग जो कि गरमी की जुताइयां नहीं करते, उन्हें विना खेतों को पलेवा किये हुये बुवाई करना दुःसाध्य ही नहीं, असंभव सा हो जाता है, और उन्हें पलेवा करके तभी खेतों को बोने का अवसर प्राप्त होता है।

वे तमाम खर-पतवार तथा खर-पतवारों के बीज जो कि जाड़े के दिनों में नमी के पाते रहने के कारण खेतों में जीवित रहते हैं। गरमी की जुताइयों के कारण जड़ सहित उखड़-पुखड़ जाने से गरमी की तेज़ धूप तथा लूह से सूख कर जल-भुन जाते हैं। जिसका फल यह होता है कि अगले साल खेतों में खर-पतवारों का भी अधिकांश में नामो-निशान नहीं पाया जाता। इस कारण ऐसा कहने में कोई भी त्रुटि नहीं है। कि गरमियों की जुताइयों के प्रभाव से खेत खर-पतवार से रहित हो जाते हैं। जिससे फ़सलों की निकाई-गुड़ाई में भी अधिक धन और समय नहीं खर्च करना पड़ता।

भारतीय किसानों के खेत अधिकतर टेढ़े-मेढ़े ऊँचे-खाले होते हैं अर्थात खेतों का धरातल समतल यानी एकसाँ नहीं होता। इस से फ़सल की उपज पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। गेहूं के वर्ग की फ़सलों पर धरातल की अ-समतलता का बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा करता है। परन्तु इतने पर भी हमारे देश के किसान खेतों के चौरसपने अर्थात समतलता की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते। पर, वर्तमान काल में तमाम कृषि-वैज्ञानिकों ने अपने अपने देश के कृषकों को यह सलाह दी है कि अपने अपने खेतों का धरातल समतल कर लें। क्योंकि इनसे कृषकों की आर्थिकावस्था का सुधार हो जायगा। कृषि-वैज्ञानिकों की इस लाभकारी सलाह को अधिकांश देशों के किसानों ने पूर्ण कर लिया है—अर्थात अपने अपने खेतों को समतल बना लिया है।

पर, हमारे देश भारत के अधिकांश खेतों का 'लेविल' बहुत ही ख़राब है। जिससे फ़सलों की उपज पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ रहा है। इसलिये हमारे देश के किसानों को चाहिये कि वे या तो ख़रीफ़ की फ़सलों के कट जाने के बाद पलेवा तथा जुताई करके—अथवा चैत्र, बैशाप, ज्येष्ठ में रबी की फ़सलों के कट जाने के बाद पलेवा—जुताई कर के खेतों का 'लेविल' यानी समतलता ठीक करलें। क्योंकि इन दिनों में बैल तथा आदमी एवं खेत सब खाली रहते हैं।

अब तक हमने अपने पाठकों को गरमी की जुताइयों के बारे में अनेकों जानने योग्य बातों का दिग्दर्शन काराया है। इस अन्ति-

वाग्यें दिग्दर्शन से हमारे पाठकगण ! गरमी की जुताइयों के सारे आवश्यक और महत्त्वपूर्ण तथा लाभकारी प्रणालियों, रीति-रिवाजों, प्रथाओं की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर ली होगी। पर इतनी बातों के बताने पर भी एक ऐसी आवश्यक बात अभी बतानी है। जिसके बिना जाने हुये और जानने के बाद भी बिना उसका प्रयोग और व्यवहार किये हुये हमारे पाठकगण—अथवा कृषि-व्यवसायी कृषक-सम्प्रदाय पूर्ण रूप से गरमी की जुताइओं से लाभ नहीं प्राप्त कर सकते।

पाठकवृन्द ! अब इस बात के जानने के लिये अत्यन्त ही उत्सुक होंगे ! कि वह कौन सी ऐसी बात है, जो अभी तक नहीं कही गई है। जिसके बिना प्रयोग और व्यवहार के गरमी की जुताइयों के वास्तविक मक़सद के पूर्ण न होने से गरमी की जुताइयों द्वारा पूर्ण लाभ भी नहीं प्राप्त हो सकता।

पाठको ! अभी तक हमने आप लोगों को गरमी की जुताइयों के विषय में ऐसी बहुत सी बातें बताई हैं। जिनका जानना बहुत ही आवश्यक था। साथ ही यह भी था कि इन बातों को पहिले ही से जान लेने की आवश्यकता भी थी। अब जो बात शेष है, वह है जुताई करने वाले औज़ारों—अर्थात् हलों के सम्बन्ध की। क्योंकि इस वैज्ञानिक-युग में अब अनेकों प्रकार के हल आविष्कृत हुये हैं।

जो कि ख़ास करके विशेष कामों के ही लिए आविष्कृत किये गये हैं। इन गरमी की जुताइयों के लिये यदि इनसे पूर्ण लाभ

प्राप्त करने की इच्छा हो, जो कि आवश्यक भी है। तो वैज्ञानिकों के बताये हुये ही हलों से हम लोगों को गरमी की जुताइयाँ करनी चाहिये। क्योंकि वर्तमान-काल में वैज्ञानिकों ने अनेकों अनुभव करके इस बात को सिद्ध कर दिया है। कि गरमी की जुताइयाँ उन हलों से करनी चाहिये जो कि खेत की मिट्टी को खोद करके उलट पलट दें। इस काम को करने के लिये हमारे देशी-हलों की बनावट ऐसी नहीं है। जो कि खेत के धरातल तथा गर्भतल की मिट्टी को खोद करके उलट पलट कर सके। इस काम के लिये अधिकतर नव-आविष्कृत विदेशी वैज्ञानिक पद्धतियों से तय्यार किये हुये हल ही बड़े ही उपयुक्त और उपयोगी हैं। इस कारण तमाम किसानों और ज़मीदारों तथा कृषि-व्यवसाइयों को चाहिये कि खेत के पलेवा करने के बाद इन्हीं मिट्टी-पलटने वाले 'मोल्ड-बोर्ड' हलों का प्रयोग तथा व्यवहार गरमी की जुताइयों में किया करें। क्योंकि इन्हीं के प्रयोग से वास्तविक लाभ हो सकता है, देशी-हलों से नहीं। परन्तु जो लोग इन हलों से जुताइयां करने में असमर्थ हैं। उनके लिये यही उचित है कि जब उन्हें यह हल मिल ही नहीं सकते। तो अपने देशी-हलों से ही गरमी की जुताइयाँ किया करें।

वरना अपने स्थानीय कृषि-विभाग के 'डिमांस्ट्रेटरों' से इन हलों को 'डिमांसट्रेशन' के लिये दो एक जुताइयों के लिये मांग लावें, और जुताइयाँ करके इनके लाभों को जाँच लें। तब इन हलों को ख़रीद लें। यदि एक किसान इन हलों को न ख़रीद सके, तो दो चार किसानों को मिलकर एकाध मिट्टी-पलटने वाला हल अवश्य

सम्बन्धी यन्त्रों के काम करने वाले विभाग में एक भारतीय मिस्त्री (लोहार या बढ़ई) भी काम करता था। उसका नाम "बल्देव
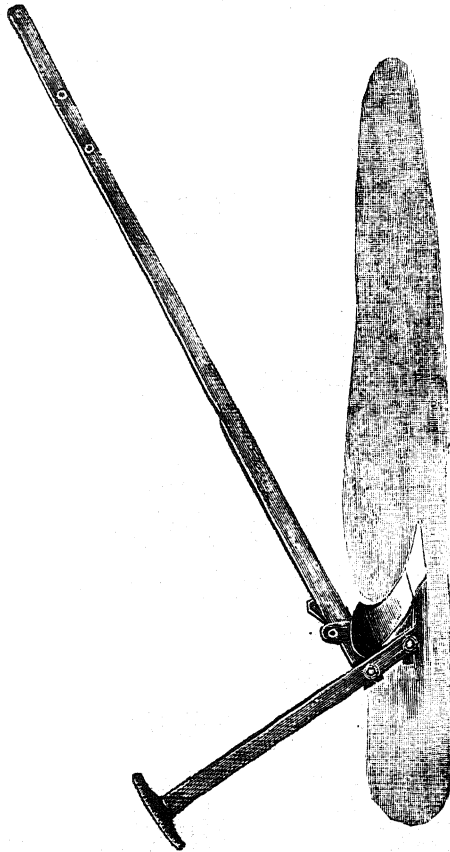
मेस्टन-हल

मिस्त्री" था। वह बड़ा चतुर, बुद्धिमान तथा होनहार मिस्त्री था। उसने अनेकों विदेशी हलों तथा मशीनों की मरम्मत अपने

हाथों से करते करते इतना ज्ञान-लाभ कर लिया था। कि उसने अपने प्रान्त के देशी-हलों की त्रुटियाँ तुलना करके जान लीं, कि हमारे देशी-हलों में तथा इन विदेशी-हलों में केवल इतना ही अन्तर है। इसी त्रुटि को दूर करके उसने इस हल को इस ढङ्ग से बनाया। जो कि सारे कामों में तथा बनावट की दृष्टि से भी देशी हल के समान है। इसमें केवल विशेषता यही है कि यह हल विदेशी नवीन हलों की भाँति खेत के धरातल की मिट्टी को खोद कर उलट पुलट देता है। इसी काम को देशी-हल नहीं कर सकते हैं। बल्देवमिस्त्री ने जब यह हल इस प्रान्त के लिये आविष्कार करके उस काल के कृषि-अध्यक्ष श्रीमान् "जेम्स मेस्टन साहब" को दिखाया। तो वह बड़े प्रसन्न हुये; इसीसे बल्देवमिस्त्री ने इसे, 'मेस्टन-हल' नाम दे दिया, तब से इस प्रान्त के कृषि-विभाग की सारी कृषि-यन्त्र बनाने वाली दुकानें इस हल को बना करके बेचने लगी हैं, और यह हल इस प्रान्त के किसानों के लिये इसलिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो गया है, कि इस हल को हमारे किसानों के बैलों की एक साधारण जोड़ी (गोई) भी सरलता से खींच लेती है। वैसे तो इसके खींचने का बोझ, बैलों की शक्ति तथा ज़मीन की हालत पर निर्भर है—अर्थात् जैसी दोमट—मटियार भूमि होगी अथवा सशक्त और बलहीन बैल होंगे; वैसी ही शक्ति भी लगानी और खींचनी पड़ेगी। पर कानपूर में इस हल के खींचने की शक्ति का जो अनुभव किया गया है। उसका वर्णन निम्न-लिखित है।

हमने ऊपर इस बात का ज़िक्र किया है। कि यह हल बैलों की

खिंचाई में देशी-हल के समान ही शक्ति चाहता है, अधिक नहीं। इस बात की जाँच के लिये कानपूर स्थान में दूमट-भूमि में इस हल में बैलों को जोतकर "डिनामोमीटर" के द्वारा जब जाँच की गई तो ज्ञात हुआ कि इसके खींचने में बैलों को साढ़े तीन मन के लगभग खींचने की ताकत लगानी पड़ती है। साथ ही इसी साधारण दूमट जमीन में जब कि कानपूर के देशी-हल के खींचने में बैलों को साढ़े चार मन के लगभग शक्ति लगानी पड़ती है। इसके चित्र के देखने से मालूम होता है। कि तमाम उन्नति-प्राप्त हलों में केवल 'मेस्टन हल' ही ऐसा है। जो कि सब से छोटा और हलका है। जिसमें देशी हल की भाँति साल के लकड़ी की एक लम्बी हरीस है, और लकड़ी का एक परेथा (कुढ़ा) है। जो कि बनावट में देशी—हल के सदृश है। केवल इसका जुताई करने वाला लोहे का भाग (फार-फल) ऐसी दशा में परिवर्तित कर दिया गया है। जैसा कि नवीन अंगरेजी-हलों का लोहिया भाग होता है। जिसे अंगरेजी में 'मोल्ड बोर्ड' यानी मिट्टी— पलटने वाला भाग कहते हैं। देशी – हलों की इस कमी को इस हल ने सर्वांश में दूर कर दिया है; इस कारण से यह हल स्वदेशी है। क्योंकि इसे हमारे देश के ही मिस्त्री ने आविष्कृत किया है, और वह उसी की बुद्धि का का एक नमूना है। इसके सिवाय उसने अपने नाम से सिंचाई के लिये "बल्देव-बाल्टी" भी आविष्कृत (ईजाद) किया है। जो कि सिंचाई के काम में आती है।

इस मेस्टनहल से जुताई भी उसी प्रकार से की जाती है। जिस

प्रकार से देशी हल से। केवल इसकी पारिवार्तनिक बनावट के कारण जोतते समय कुछ बातों में परिवर्तन कर देना आवश्यक है। जैसे जब इस हल से जुताई की जाय; तो उस समय इस बात का ध्यान रहे। कि बाहरी (दाहिने) बैल सदैव कूढ़ में चलता रहे, और हल चलाते समय परेथे (कुढ़े) को बाईं ओर नाम मात्र के लिये झुकाये रहना चाहिये। इससे 'कूढ़' सीधी जायगी, और हल जमीन में भली भाँति घुसेगा, और खेत के धरातल की मिट्टी को चीर-फाड़ कर के उलट-पलट देगा। इस उपर्युक्त हिदायत के अनुसार मेस्टन हल की जुताई से 'कूढ़ों' की चौड़ाई भी सदैव समान रहेगी। जुताई करते समय हलों को कभी भूल कर के भी दबाना नहीं चाहिये। न किसी प्रकार का जोर ही लगाना चाहिये। इस हरकत से 'कूढ़' उथली हो जायगी, और उत्तम-श्रेणी की जुताई न हो सकेगी।

जब इस हल से जुताई की जाय। तो हल जोतने वाले को सदैव इस बात पर ध्यान रखना चाहिये। कि 'हराई' का लम्बान-चौड़ान ठीक हो, और जो 'कूढ़' कट रहा हो, उसकी मिट्टी पहिले कटे हुये 'कूढ़' में उलट-पलट कर भरती जावे, जिससे खेत की सतह हमवार रहे। इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि कटते हुये 'कूढ़' की मिट्टी तभी उलट-पुलट कर पहिले कूढ़ में भर जायगी। जब कि कूढ़ों की लकीरें समान दूरी पर होते हुये भी समानान्तर रहेंगी।

मेस्टनहल की हरीस का प्रभाव कूढ़ की उथलाई और गहराई

पर उसी प्रकार से पड़ेगा। जैसा कि प्रायः देशी-हल की हरीस का पड़ा करता है। इस हल की जुताई में और देशी-हल की जुताई में केवल अन्तर यही है। कि इस हलसे मिट्टी खुदकर उलट-पलट हो जाने के सिवाय खेत का सर्वांश भाग एक ही जुताई में जुत जाता है, कुछ शेष नहीं रहता। मेस्टनहल से कूढ़ की गहराई लगभग ५ इञ्च गहरी होती है, और चौड़ाई लगभग ४ इञ्च के होती है। इस हल से जब कि दिन में ९ घंटे जुताई की जाय, और बैल तथा आदमी चतुर तथा सशक्त हों, तो एक बीघे अथवा $\frac{3}{4}$ एकड़ जोत डालने में कोई संदेह नहीं है। इस एक दिन की जुताई में आदमी की मजदूरी वग़ैरह तथा बैलों की ख़ूराक की सम्मिल्लतावस्था में लगभग दो २) प्रति जुताई पड़ा करता है।

इस हल से सूखी भूमि में जुताई न करनी चाहिये। अधिकर खेतों को पलेवा करके तभी इस हल से खेतों को जोतना चाहिये। इस हल की हरीस टेढ़ी-मेढ़ी अथवा गँठीली नहीं होनी चाहिये। नहीं तो अधिकतर हरीस जल्दी टूट जाती है, और नुक़सान उठाना पड़ता है। इस कारण ऐसे हलों को खरीदते समय खूब देख भाल कर के तभी हलों को ख़रीदना चाहिये।

यह हल प्रायः सभी कृषि-सम्बन्धी मशीनों की दुकानों में तथा सरकारी कृषि-फार्मों की दुकानों में मिल सकता है। इसका दाम हरेक दुकानों पर भिन्न-भिन्न है। परन्तु न तो ८) से कम है न २१) से अधिक।

अधिकतर "रेनसम" के कारख़ाने का बना हुआ मेस्टनहल

आजकल बहुत ही उत्तम समझा जाता है। परन्तु इसमें संदेह नहीं है कि इसका लोहे वाला भाग अब विलायत से बन कर आता है, और लकड़ी वाला सारा भाग प्रथम श्रेणी की साल की लकड़ी का होता है। जिन सज्जनों को जहाँ से पसन्द हो वहाँ से मंगाये, और काम में लायें।

यह हल इसलिये और भी हमारे देश के किसानों के लिये उत्तम है। कि इसे साधारण बुद्धि का भी लोहार, बढ़ई, या मिस्त्री खोल तथा जोड़ सकता है, और टूटने-फाटने पर देशी-हल की भाँति मरम्मत भी कर सकता है। इसके सिवाय इसके सारे आवश्यक भाग जैसे, हरीस, हरेनी, बेज, परेथा तथा लोहिया भाग जैसे नोक व मिट्टी-पलटने वाले भाग अलग अलग दाम में भी मिलते हैं: इससे यह लाभ है कि जब जौन सा हिस्सा टूट जाये—वा घिस जाये—अथवा नष्ट-वर्बाद हो जाये। उसी हिस्से को खरीद कर हल को अपने काम के लिये बना लेना चाहिये। दो एक कम्पनियों का मूल्य इस हल के लिये जो लिया जाता है। उसका विवरण पाठकों की जानकारी के सुविधार्थ दिया जाता है।

मेस्टन हल—रेन्सम के कार्यालय का बना हुआ लोहिया भाग ऐसे हलों का इङ्गलैंड के कार्य्यालयों से मंगाया जाता है। लकड़ी के सारे भाग उत्तम-श्रेणी की साल की लकड़ी के बने हुये होते हैं।

हल के सम्पूर्ण भागों का मूल्य जिसमें लकड़ी का भाग भी विलायती होता है २०)

" " " " " देशी होता है १८)

| | |
|---|---|
| केवल लोहिया भागों का मूल्य ... ... | १५) |
| एक नोक का मूल्य ... ... ... | ।॥) |
| उस कड़े का मूल्य जिससे हरीस हल में कसी रहती है | २=) |

कलकत्ते की 'वर्नकम्पनी' का बना हुआ मेस्टन-हल

| | |
|---|---|
| पूरे हल का मूल्य ... ... | १३) |
| केवल लोहिया भागों का मूल्य ... | १०) |
| *एक नोक का मूल्य ... ... | ॥-) |

इस बात की चर्चा हम कर चुके हैं। कि गरमी की जुताइयाँ जहां तक हो सके, खूब गहरा जोतने वाले नवीन वैज्ञानिक हलों से करनी चाहिये। इस विषय में संयुक्त-प्रांत के सर्व साधारण किसानों के लिये 'मेस्टन हल' के प्रयोग और व्यवहार की सलाह हमने अग्र लिखित पृष्टों में दी है। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यह हल अन्यान्य प्रान्तों के लिये उपयुक्त ही नहीं है। जिन्हें इच्छा हो वह इस हल को गरमी की जुताइयों के लिये व्यवहार और प्रयोग में ला सकते हैं। पर, सब से उत्तम और ठीक यह होगा कि लोग इस विषय में देश कालानुसार अपने स्थानीय कृषि-विशारदों-

---

*व्यापारिक-संसार में सदैव मशीनों का दाम घटता-बढ़ता रहता है। इसलिये इस मूल्य सरिणी को हरेक काल में ठीक न समझना चाहिये। बल्कि कम्पनियों से सदैव पूंछ-तांछ करके ठीक-ठीक दाम मालूम कर लेना चाहिये। स्थानीय कृषि-फार्मों पर इससे भी कम दाम में यह हल मिल सकते हैं। किसानों को अपने स्थानीय कृषि-फार्मों से ही खरीदने में लाभ होगा।

अथवा सरकारी कृषि-विभाग के अधिकारियों से सलाह और राय ले लिया करें। क्योंकि उक्त सज्जनों की राय अपने अपने स्थानीय कृषि-क्षेत्रों के लिये अवश्य ही उपादेय होगी।

हम देश के किसानों और ज़मीदारों तथा कृषि-व्यवसाइयों को यह वतलाना चाहते हैं। कि जो हल ऊपर चित्र में दिखाया गया है; यह सर्व-साधारण—अर्थात अमीर ग़रीव सव के लिये उपयोगी है। परन्तु जो धनी हैं। और कृषि-व्यवसाय की उन्नति के हेतु खुले दिल रुपया ख़र्च करते हैं—अथवा ख़र्च करने के लिये तैयार हैं। उनसे मेरा कहना है कि वे उन हलों का प्रयोग तथा व्यवहार गरमी की जुताइयों के लिया किया करें। जो कि इन हलों कि अपेक्षा अधिक गहरा जोतते हैं, और सर्वांश में देश के लिये उपादेय सिद्ध हुए हैं। इन हलों से देश के प्रत्येक भागों में गरमी की जुताइयां की जा सकती हैं। इन हलों का चित्र और वर्णन निम्न-लिखित है।

इस हल का नाम-पंजाब-हल (punjab plough) है। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि यह केवल पंजाब के ही लिये अधिकतर लाभदायक है। इसमें संदेह नहीं कि यह हल ख़ास करके पंजाब के ही लिये बनाया गया है। इसलिये यह पंजाब के लिये तो निसन्देह ही उपयुक्त है। परन्तु इतना होते हुये भी यह हल देश के अन्यान्य प्रान्तों के लिये भी उसी प्रकार से उपयुक्त तथा उपादेय है। जिस प्रकार से पंजाब प्रान्त के लिये। संयुक्त प्रान्त में भी यह हल कृषि-फार्मों के प्रयोग तथा व्यवहार से उपयुक्त तथा तथा पूर्ण रूपेण लाभदायक सिद्ध हो गया है।

इस कारण अब हम इसका सम्पूर्ण वर्णन पाठकों की सुविधार्थ दिये देता हूँ। साथ ही कहे भी देता हूँ कि देश के समस्त प्रान्त के

चित्र सं० २

पंजाबहल
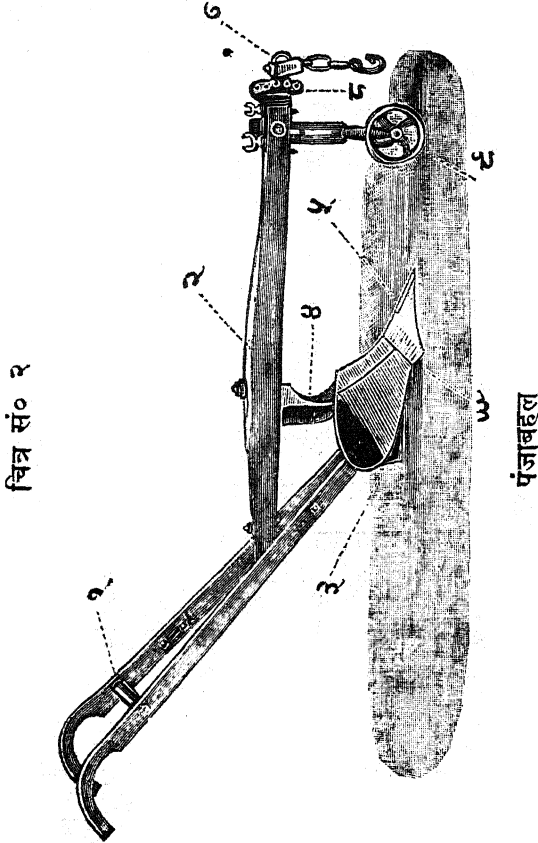
के किसानों को इस हल को अवश्य ही प्रयोग तथा व्यवहार में लाकर के लाभ उठाना चाहिये।

इस हल के चित्र से ही प्रकट हो रहा है। कि इसमें दो परेथा (कुढ़ा) है; और इसकी बनावट भी हमारे देशी-हलों की अपेक्षा अत्यन्त ही अजीब क़िस्म की है। साथ ही इस हल में अन्यान्य हलों की अपेक्षा बहुत से नये-नये भाग भी उपयुक्तता की दृष्टि से लगाये गये हैं। जो कि बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह हल देशी-हलों की अपेक्षा सरलता पूर्वक जोता नहीं जा सकता। जब तक कि इसके हलवाह और बैल किसी ऐसे फार्म पर 'ट्रेंड' अर्थात् चतुर न कर लिये जाँय। जहाँ कि यह हल प्रयोग और व्यवहार में लाये जा रहे हों। इस हल के व्यावहारिक बातों की जानकारी बहुत थोड़े ही दिनों में चतुर किसान और बैल सरकारी फार्मों पर कर सकते हैं। जो किसान उन्नति प्राप्त हलों को व्यवहार में ला रहे हैं। जैसे मेस्टन हल वे सरलता पूर्वक इस हल का प्रयोग और व्यवहार कर सकते हैं। कुछ ही दिनों की मिहनत से हरेक किसान और मिस्त्री ( लोहार-बढ़ई ) इस हल की जोड़ाई और खुलाई भी सीख सकता है। जिससे वक्त़ ज़रूरत पर यह गाँव के ही मिस्त्रियों द्वारा मरम्मत भी कराया जा सकता है। और यदि कोई एकाध भाग टूट जाये अथवा घिस जाये, काम न दे सके, तो वह बदल भी दिया जा सकता है।

( १ ) इस हल के भाग एक (१) का नाम मुठिया (Handles) है। इसी को पकड़ कर हलवाहा हल को सीधा रख सकता है—अथवा इधर-उधर घुमा सकता है—तथा अन्यान्य आवश्यक कार्य्य भी कर सकता है।

( २ ) दूसरे भाग का नाम हरीस ( beam ) है—इसी हरीस के अगले भागों में बैल जोड़े जाते हैं, और इसी के द्वारा हल खींचा जाता है।

( ३ ) इस तीसरे भाग का नाम "मोल्डबोर्ड" ( mould-board ) अर्थात मिट्टी-पलटने वाला भाग है। यही भाग अधिकतर हमारे देश के हलों में नहीं पाया जाता। इस भाग से जो कुछ खेत के धरातल की मिट्टी खुदती—अथवा जुतती है। वह उलट-पुलट जाती है।

( ४ ) चौथे भाग का नाम बाडी ( body ) अर्थात अंग है, जिसमें हलके अन्यान्य भाग जुड़े रहते हैं।

( ५ ) इस पाँचवे भाग का नाम फार ( share ) है। इसी भाग के द्वारा हल खेत के धरातल तथा गर्भतल की मिट्टी को खोदता है।

( ६ ) इस छठे भाग का नाम तली ( slade and sole ) है। इसी भाग पर हल रगड़ता हुआ चलता है। इस भाग की रगड़ से जो ज़मीन नीचे दब जाती है उसीको ( plough pan ) प्लाऊ-पैन कहते हैं।

( ७ ) इस सातवें भाग का नाम "कड़ा" है। जब हल जुताई के समय जोड़ा जाता है। तब इसी भाग में जंज़ीर को लगा करके तब जंज़ीर को जुये में लगाते हैं, तो हल जुड़ जाता है।

( ८ ) आठवां भाग हेड-पीस (Head piece) है। बैलों की ऊंचाई के अनुसार, सातवें भाग यानी कड़े को इस "हेडपीस" के

सूराखों में ऊपर अथवा नीचे लगा दिया करते हैं। यदि बैल छोटे होते हैं। तो 'कड़े' को नीचे के सूराखों में अन्यथा जब बैल बड़े होते हैं। तो ऊपर के सुराखो में 'कड़े' को लगाना चाहिये।

जब खेत को गहरा जोतना हो तो, कड़े को ऊपर के सुराखों में अन्यथा जब उथला जोतना हो तो नीचे के सुराखों में लगाना चाहिये। इस विवेचन से "हेडपीस" की वास्तविकता का पता लोगों को चल गया।

(९) पहिया—इसका काम यह है कि 'कूढ़' की गहराई एक सी रक्खे, और जब खेत को गहरा जोतना हो तो पहिये को खोल कर ऊंचा फ़िट कर देना अर्थात जोड़ देना चाहिये। इस हल के सारे भागों का आवश्यक विवेचन मैंने पाठकों की जानकारी के हेतु कर दिया। जिससे पाठक भली भांति परिचित हो गये होंगे। अब हम इसके सम्बन्ध की अन्यान्य बातों की व्याख्या करेंगे।

जितने मिट्टी-पलटने वाले नवीन वैज्ञानिक हल बनाये गये हैं। उन तमाम हलों की हरीस (baem) प्रायः छोटी होती है। इसी कारणवश हल को खेत में जोतने के समय इन हलों की हरीस देशी हलों की बड़ी हरीस की भांति एकदम जुये में जोड़ी नहीं जा सकती। बल्कि एक लोहिया जंज़ीर के द्वारा इन हलों की हरीस जुये में जोड़ी जाती है। जुये के महादेवा वाले भाग के नीचे एक 'कड़ा' लगा हुआ रहता है। इसी कड़े में लोहिया जंज़ीर का एक सिरा अटका अथवा जोड़ दिया जाता है। क्योंकि इस लोहिया का दूसरा सिरा हल के सातवें भाग अर्थात कड़े में लगा रहता है।

चित्र सं० ३

जुआ या मांची
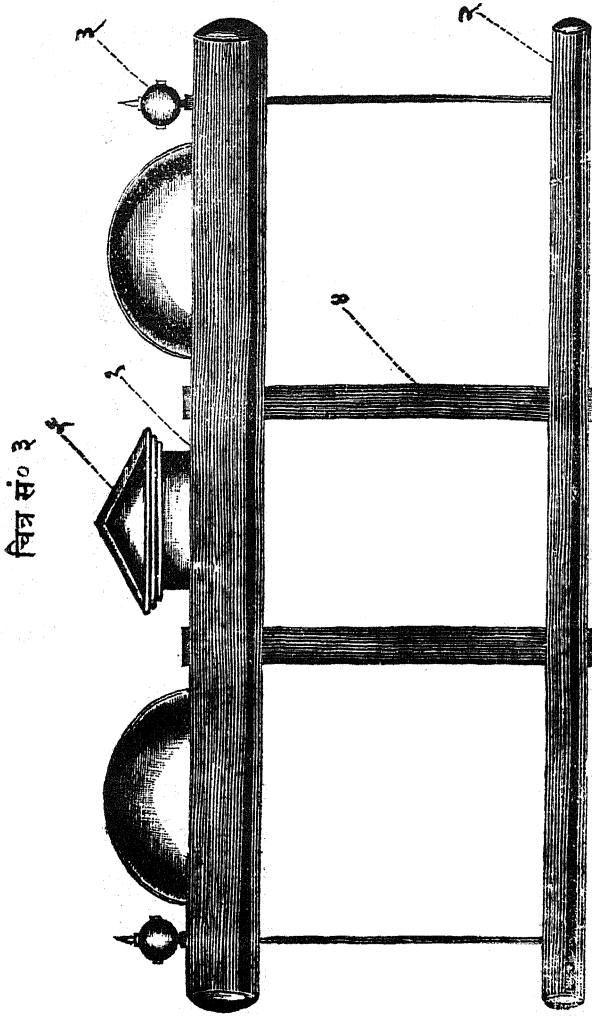
इस चित्र के भाग —[१] जुआ [२] तरमांची [३] सैला [४] गतार [५] महादेवा

किसी क़िस्म की आवश्यकता पड़ने पर जंजीर घटाई तथा बढ़ाई भी जा सकती है—अर्थात छोटी-बड़ी भी की जा सकती है।

इस बात का सदैव ध्यान रहे, कि जब यह हल जोता जाय, तो इसकी पहिया खेत के धरातल पर घूमती हुई चलती रहना चाहिये। घिसती हुई नहीं। इस क़िस्म के हलों से जुताई करने के दो तरीक़े हैं। जिनका वर्णन हम स्यात् प्रस्तुत-पुस्तक के अग्र भाग में कर आये हैं। परन्तु तो भी हम पाठकों की सुविधा के लिये यहां भी थोड़ा सा वर्णन इस हल के प्रयोग तथा व्यवहार के विषय में कर देना आवश्यक समझते हैं।

चित्र सं० ४
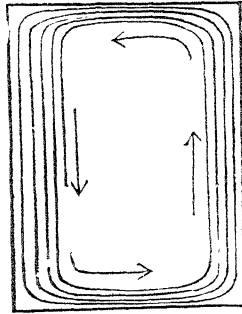
छोटे क्षेत्रफल के खेत की जुताई।

(१) एक तो इस हल से जुताई खेत के मेड़ की ओर से खेत के बीच की ओर की जाती है। दूसरे (२) खेत के बीच की ओर से खेत के मेड़ की ओर। जब खेत की जुताई मेड़ की ओर से बीच की तरफ़ करना होता है। तो खेत की जुताई देशी-हल की ही

तरह कर दी जाती है। जब कभी कोई खेत क्षेत्रफल में छोटा होता है। तब वह सारा खेत एक ही बार में जोत डाला जाता है। यदि खेत बड़ा होता है तो, जैसा कि आगे कह आये हैं। खेत हलाइयों में विभाजित कर के जोता जोता है; ऐसी अवस्था में इन हलों से प्रत्येक 'हलाई' के बीच में एक नाली पड़ जाती है। इस कारण जब खेत की दूसरी जुताई करना हो, तो खेत को इन्हीं हलों से इन्हीं नालियों पर से जोतना चाहिये। इसी प्रकार की जुताई को मध्य से मेड़ की ओर की जुताई कहते हैं। इस जुताई

चित्र सं० ९
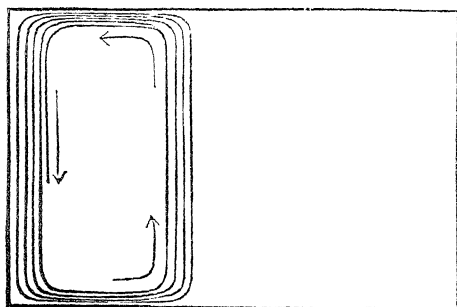
बड़े क्षेत्रफल के खेत में 'हलाई' भर के जुताई।

से हलाइयों के बीच की नाली तो नई मिट्टी के खुद कर भर जाने से नष्ट-बर्बाद हो जाती है। जिससे खेत समतल हो जाता है। परन्तु खेत के किनारों पर एक नाली अवश्य ही पड़ जाती है।

इस प्रकार की जुताई करते समय 'कूढ़' के अन्त में ही उसी

स्थान पर बैलों को दाहिनी ओर घुमा देने का रिवाज़ साधारणतया सभी स्थानों में प्रचलित है।

ऐसे हलों का प्रयोग करते समय सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिये। कि जहाँ तक हो सके खेत में नालियाँ पड़े ही नहीं यदि पड़ें भी तो 'मेड़ों' के पास पड़ा करें। जो कि पटेला (सरावन) देते समय मिट्टियों के भर जाने से नष्ट-बर्बाद हो जाँय। शेष इन हलों के प्रयोग के सम्बन्ध में वही बातें हैं, जो कि मिट्टी-पलटने वाले हलों के विषय में प्रस्तुत-पुस्तक के अगले पृष्ठों पर स्थानानुसार कही गई हैं।

चित्र सं० ६
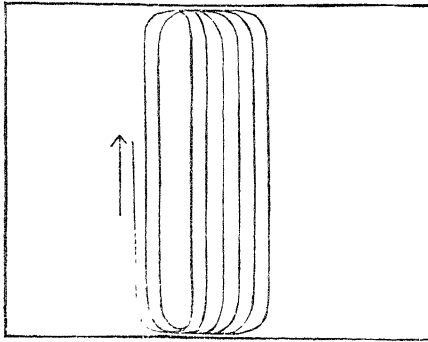
मध्य से मेंड़ की जुताई

इस हल की कूढ़ लगभग १५ अंगुल के चौड़ी और १० या ११ अंगुल के गहरी होती है। आवश्यकतानुसार इसके भागों के द्वारा 'कूढ़ों' की लम्बाई-चौड़ाई घटाई-बढ़ाई भी जा सकती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है। इसके व्यवहार तथा प्रयोग के लिये

मज़बूत बैलों की, जो कि ऐसे हलों के जोतने के आदी हो गये हों तथा दो चतुर (ट्रेंड) हलवाहों की आवश्यकता होती है। तभी इन हलों से वास्तविक जुताई हो सकती है, और इच्छित फल प्राप्त किया जा सकता है। अन्यथा किसी अन्य प्रकार से इन हलों से उत्तम-श्रेणी की जुताई करने का मंसूबा करना व्यर्थ है।

इस हल के खींचने में बैलों को लगभम ४३ मन बोझ के बराबर खींचने के समान शक्ति लगानी पड़ती है। अब हम पाठकों की सुविधार्थ इसकी जोड़ाई तथा खोलाई का भी वर्णन संक्षेप में में किये देते हैं। जिससे लोग आवश्यकता पड़ने पर इस हल को खोल और जोड़ सकें।

प्रायः ऐसे हल कम्पनियों से बक्सों में बन्द होकर के आते हैं। ऐसी दशा में इसका सारा भाग अलग-अलग होता है। तो सब से पहिले इस हल के जोड़ने की ही आवश्यकता हुआ करती है।

जोड़ाई—सब से पहिले फार (share) के अगले नोकीले हिस्से में एक कील को जो साथ ही में आती है। ठोंक कर के 'फार' को ठीक कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् 'फार' को 'बाडी' (body) अर्थात् हल के पांचवें भाग में जोड़ देना चाहिये। इसके बाद मिट्टी पलटने वाले तीसरे "मोल्ड-बोर्ड" (mould board) के भाग को "बाडी" (body) में जोड़ देना चाहिये। फिर "मोल्ड-बोर्ड" में इसी के अंग 'कटर' को जोड़ कर मोल्ड-बोर्ड के भाग को पूर्ण रूप से तैयार कर लेना चाहिये।

बाद को "परेथा यानी मुठिया ( handle ) तथा उसके भाग "ब्रेकेट" को जोड़ देना चाहिये। तब हरीस (beam) को मुठिया अर्थात हैन्डिल के "ब्रेकेट" पर सीधी रख करके उसको हल के मुठिया (handle) और बाडी (body) वाले भाग से कस देना चाहिये। जब हल के ये तमाम भाग जोड़ दिये जावें। तब पहिया और उसके तमाम भागों को जोड़ करके, उसे भी ठीक जगह पर हरीस में कस देना चाहिये। तब अन्त में "हेडपीस" को हरीस के सिरे पर कस करके उसमें "हेक" वाले भाग को लगा देना चाहिये। तत्पश्चात् 'हेक' में "योकिङ्ग रिंग" को लगा देना चाहिये तब हल पूर्ण रूप से जुड़ जायगा।

जुड़ जाने पर हल को भूमि पर सीधा रखना चाहिये। यदि भूमि पर रखने पर हल चित्रकी भांति खड़ा रहे, और किसी क़िस्म की खराबी हल में दिखाई न पड़े, तो समझ लेना चाहिये कि हल बिल्कुल ठीक जुड़ गया है। तब इसे काम में लाना चाहिये। वरना नहीं।

जिस सिलसिले से हल जोड़ा गया है उसी सिलसिले से आवश्यकता पड़ने पर खोला भी जा सकता है, और साफ़ करके अथवा खराब भाग को बदल करके काम में लाया जा सकता है।

इस पंजाब-हल सम्बन्धी तमाम उन आवश्यक बातों का संपूर्ण वर्णन हमने इस प्रस्तुत-पुस्तक में पाठकों की जानकारी के हेतु दे दिया है। अब हम इसके मूल्य का भी परिचय पाठकों को कराये देते हैं। देश कालानुसार बाज़ारों में तमाम चीज़ों की भांति इन हलों का दाम भी घटता-बढ़ता रहता है। इसलिये इसे ठीक मूल्य

न समझ करके एक तखमीना समझना ही पाठकों के लिये उचित होगा।

| | |
|---|---|
| पंजाब-हल के सम्पूर्ण भागों का मूल्य | ४२) |
| मूल्य एक अधिक नोक का | १॥=) |
| मूल्य एक अधिक पतली नोक का | ॥—) |
| मूल्य मिट्टी-पलटने वाले मोल्डबोर्ड की | १०॥) |
| मूल्य लोहिया जंजीर का | ७) |

गरमी की ही जुताइयों के लिये उपयुक्त तथा उपादेय समझ कर अब तक हमने मिट्टी-पलटने वाले दो ( मेस्टन तथा पंजाब ) हलों का सविस्तार वर्णन पाठकों को सुनाया है। जिससे पाठकों को मिट्टी-पलटने वाले हलों का कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य होगया होगा। अब हम पाठकों की ही जानकारी के हेतु कि जिससे उनका अनुभव तथा ज्ञान-क्षेत्र इन हलों की उपयोगिता के विषय में बढ़ जावे, एक और तीसरे प्रकार के मिट्टी-पलटने वाले हल का वर्णन करूंगा। जिसका कि चित्र नीचे चित्रित किया जा रहा है।

इस हल का नाम "टर्नरैस्ट-हल" (Turn wrest plough) है। यह तमाम देशों के खेतों की जुताइयों के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसी कारण इसका प्रयोग तथा व्यवहार हमारे देश-भारत के कृषि-वैज्ञानिकों ने भी करके इसके गुण-दोषों की खूब छान-बीन करके यह सिद्ध कर दिया है। कि यह हल भारत के लिये भी बहुत ही उपयोगी है। इसलिये इसका प्रयोग तथा व्यवहार भारत के सभी प्रान्तों के किसानों को अवश्य करना चाहिये, और इस

हल के गुणों से लाभ उठाना चाहिये। यह हल ख़ास-ख़ास कामों के लिये बनाया गया है। इस हल के प्रयोग से वे अन्यान्य बातें जो कि

चित्र सं० ७
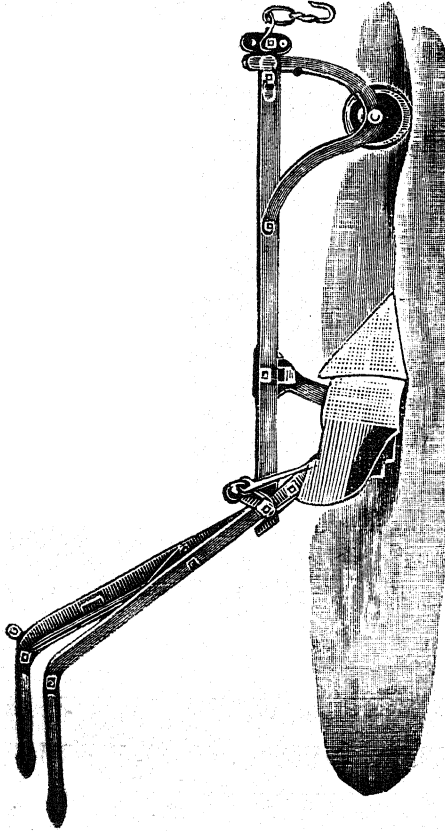
ए. डी. टर्न रैस्ट हल

दूसरे मिट्टी-पलटने वाले हलों में दोष-रूप से पाई जाती हैं। वह इस हल में नहीं पाई जातीं—अर्थात बहुत से मिट्टी-पलटने वाले

हलों में अब तक जो अवगुण पाये जाते थे; वह इस हल के आविष्कार से बहुत कुछ दूर हो गये हैं। इस कारण यह हल बहुत ही उत्तम-श्रेणी का समझा जाता है। इतना ही नहीं इसकी उपयोगिता तथा आवश्यकता के विचार से इस हल की तीन क़िस्में बनाई गई हैं। जिससे इस हल की उपयोगिता बहुत ही चढ़-बढ़ गई है। आगे जिस हल का चित्र चित्रित किया गया है। उसका नाम 'ए. टी. टर्न रैस्ट-हल' (A. T. Turn wrest Plough) है।

यह विशेष कर के हल्की ज़मीनों के खेतों की जुताई के लिये बनाया गया है। जो कि वास्तव में ही हल्की ज़मीनों की जुताई के लिये बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। यह हल किसी भी देश के थोड़ी पूंजी वाले किसानों के लिये बड़े काम का है। क्योंकि यह एक जोड़ी बैलों की सहायता से खेत में जोता जा सकता है। इसका मुख्य कारण यह है। कि इसके खिंचाव की ताक़त "मेस्टन" अथवा देशी-हलों की ताक़त की अपेक्षा कुछ ही अधिक है।

उपर्युक्त उल्लेख में इस हल के "ए. टी टर्न रैस्ट हल" की क़िस्म का वर्णन किया गया है। अब हम नीचे इस हल के सब से बड़ी क़िस्म का अर्थात् सी॰ टी॰ टर्न रैस्ट" का चित्र देता हूँ। तब उसके विषय की अनेक ज्ञातव्य बातों का उल्लेख करूंगा। क्योंकि इसके बीच की एक और क़िस्म है, जिसका नाम बी. टी. टर्न

रैस्ट हल है। जो कि इन दोनों के बीच का यानी मध्यस्थ है। जिसका काम प्रायः इन्हीं दोनों हलों के समान है। क्योंकि उसकी बनावट इत्यादि सारी बातें इसी हल के समान है; और इसका प्रयोग और व्यवहार उसी रीति-रिवाज़ के अनुसार किया जाता है कि जिस रीति-रिवाज़ और नियम के अनुसार ए. टी तथा सी. टी टर्न रैस्ट हल का किया जाता है।

'टर्न रैस्ट हल' के तीसरे क़िस्म—अर्थात (C. T Turn-wrest) सी. टी. टर्न रैस्ट का चित्र नीचे चित्रित किया गया है। यह हल ए. टी. तथा बी. टी. अर्थात दोनों क़िस्मों से बड़ा है। इस कारण इस हल से मटियार तथा इसी प्रकार की कड़ी ज़मीनों में भली प्रकार से उत्तम-श्रेणी की जुताई की जा सकती है। अन्य प्रकार की हल्की ज़मीनों में यदि गहरी जुताई करना हो तो भी यह हल प्रयोग में लाये जा सकते हैं। क्योंकि इन ज़मीनों में बहुत ही गहरी जुताई इन हलों से की जा सकती है। इन्हीं कारणों वश इस हल के खींचने के लिये दो जोड़ी बैलों की आवश्यकता पड़ा करती है। यदि दोनों जोड़ी बैल मज़बूत और मिट्टी-पलटने वाले हलों के खींचने के आदी बन गये होंगे। तो खेत की जुताई इन हलों से सरलता पूर्वक की जा सकेगी।

मिट्टी-पलटने वाले हलों की क़िस्मों में से यह हल उत्तम-श्रेणी के हलों में से है—इसकी बनावट में ऐसी चतुरता की गई है। कि तमाम मामूली मिट्टी-पलटने उन हलों से जो कि बैलों के द्वारा

जोते जा सकते हैं। एक नवीन विशेषता यह है। कि इसका (५) पांचवा भाग (आंकड़ा या हुक) पहिनने वाले कोट के पितली के

चित्र सं० ८
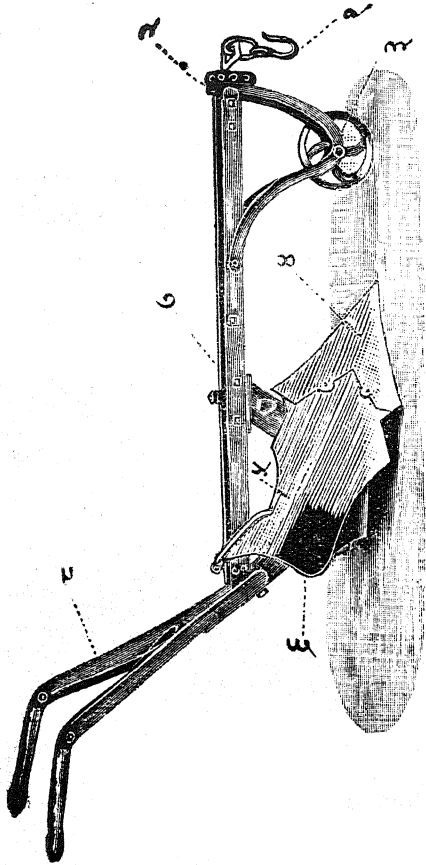
इस हल के भागों का नाम —(१) कड़ा (yoking ring) (२) हेड पीस (Head piece) (३) पहिया (wheel) (४) फार (share) (५) आंकड़ा (Hook) हुक (६) मिट्टी पलटने वाला भाग (mould board) (७) हरीस (Beam) (८) मुठिया (Haondles)

हुकों की भाँति अपने जोड़ी वाले दूसरे हुक से जिस प्रकार से

अलग किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार से इस हल का हुक यानी आंकड़ा मिट्टी-पलटने वाले भाग के सूराख़ से निकाला जा सकता है। ऐसी दशा में हुक को 'मोल्ड-बोर्ड' के छिद्र से अलग करने के बाद इस हल का (६) छठवाँ भाग—अर्थात् मिट्टी-पलटने वाला भाग हल की दाईं ओर से बाईं ओर को—अथवा बाईं ओर से दाईं ओर को पलटा जा सकता है। बनावटकी इसी विशेषताके कारण इस हल द्वारा जुताई करने से खेतों में नालियाँ नहीं पड़ती हैं, और खेत की जुताई खेत के किसी सिरे से आरम्भ करके दूसरे पर समाप्त कर दी जा सकती है। इसी क़िस्म की जुताई को अँगरेज़ी में (side to side) अर्थात् अगल-बगल की जुताई कहते हैं। जब इस हल द्वारा सारा खेत जोत डाला जायगा। तो अन्त में एक नाली मेड़ के पास आकर के पड़ेगी, जो कि पाटा (हेंगा, सरावन) के देने से मिट्टी से भरकर बराबर हो जायगी—अर्थात् इस नाली का भी नामो निशान मिट जायगा।

इस हल से जब किसी खेत को किसी ओर से जोता जाय, तो जब पहिला कूढ़ जहाँ जाकर के समाप्त हो। वहीं पर बैल हाँकने वाले को चाहिये कि बैलों को रोक दे; और हलवाहे को चाहिये कि आँकड़े—अर्थात् हुक को मोल्ड-बोर्ड के सूराख़ से निकाल कर मोल्ड-बोर्ड और फार के भाग को पलट कर दूसरी ओर कर दे, तब फिर आंकड़े (हुक) को लगा दे, और बैलों को उसी जगह पर यदि उनका मुख उत्तर की तरफ़ हो तो दाहिनी ओर से घुमाते हुये

दक्षिण की ओर करलें, और यदि पूर्व की ओर हो तो दाहिनी ओर से घुमाकर पच्छिम की ओर कर लें।

जब हल का आंकड़ा निकाल कर हल का मोल्डबोर्ड तथा फार वाला भाग उलट करे फिर से जोड़ लिया जावे, और बैल घुमा करके दूसरी ओर को कर लिये जावें, तो पहिली ही 'कूढ़' के पास ही उससे मिली हुई; उस के विपरीत—अर्थात् जब पहिली कूढ़ दक्खिन की ओर से उत्तर को गई हो, तो उत्तरी सिरे पर पहुँच कर दाहिनी ओर से बैलों को मोड़ कर दक्खिन की ओर उसी कूढ़ से बराबर चला कर दूसरी कूढ़ कटना चाहिये, और बैलों को उचित रीति से हांकना चाहिये। कि जिससे इस दूसरे कुढ़ की जो मिट्टी फार के द्वारा खुद कर के मोल्डबोर्ड के द्वारा पलटी जाय। वह पहिली कूढ़ में भरती चली जावे, जिससे खेत में नालियों का नामो निशान तक न पाया जाय।

इस हल से जुताई करने के लिये बैलों की जोड़ी मजबूत और मिट्टी पलटने-वाले हलों के जोतने के आदी होने चाहियें साथ ही हलवाहा और बैलों का हांकने वाला भी चतुर तथा सिखा हुआ होना चाहिये। तभी खेत की जुताई में उत्तम-श्रेणी की जताइओं के वे गुण पाये जावेंगे। जिनका कि वर्णन प्रस्तुत पुस्तक के अगले पृष्टों में करा दिया गया है।

इस प्रकार की जुताई से खेत जब उत्तम-श्रेणी की जुताई से जुत जायगा, तो खेत हमवार और सुन्दर मालूम होगा। जिससे खेत में सिंचाई इत्यादि अन्य व्यावहारिक कर्म्मों के करते समय

किसी प्रकार की अड़चन न पड़ेगी। यदि जुताइयाँ इन नियमों के विरुद्ध करके इन हलों से निम्न-श्रेणी की जुताइयाँ की जाँयगी। तो खेत की तमाम बातों में ख़राबी पैदा हो जायगी। जिसका बुरा प्रभाव फ़सलों की उपज पर पड़ा करेगा, और थोड़े ही दिनों में खेत ख़राब हो जायगा। अतएव, यदि इन हलों से जुताई करना मंजूर हो और लोग खरीदें तो सबसे पहिले इस हल के चलाने का तथा अन्यान्य बातों का व्यावहारिक काम किसी चतुर हलवाहे को किसी सरकारी-फार्म में अथवा कम्पनी में सीख लेना चाहिये। जिससे इन हलों को प्रयोग में लाते समय देहातों में किसी प्रकार की अड़चनें न पड़ें। जब इन हलों का प्रयोग तथा व्यवहार हमारे देश के कृषक-गण बहुतायत से करने लगेंगे तो आपही आप हमारे देश के मिस्त्री तथा लोहार इन हलों की मरम्मत करने में विज्ञ हो जायेंगे, और सारे हलवाह इस प्रकार की जुताई करने में 'ट्रेंड' यानी सिखे हुये पासुदा हो जावेंगे। नव-सिखिया हलवाहों से कभी भी इन हलों से जुताई न कराना चाहिये।

इसके सिवाय इन हलों द्वारा जुताई करने से अनेकों और भी लाभ हैं। जो कि अन्य हलों के द्वारा नहीं प्राप्त किये जा सकते। उनका संक्षेप में थोड़ा सा वर्णन नीचे किया जाता है।

( १ ) इस हल से अगल-वगल ( side to side ) की जुताई होने के कारण बैलों को खेतों के चारों ओर नहीं चलना पड़ता। बल्कि अगल-बगल चलने से समय भी कम लगता है; और बैलों को चलना भी कम पड़ता है। इससे समय की बचत के साथ साथ

बैलों को, हलवाहे को और हांकने वालों को भी बहुत ही कम चलना पड़ता है। जिससे बैल तथा हलवाहे और हँकवाहे को जल्दी थकावट नहीं लग सकती है। इससे सहज ही फल निकाला जा सकता है। कि इन विशेषताओं के ही कारण अन्य हलों से हमारे हलवाह और हंकवाह थोड़े ही समय में अधिक क्षेत्रफल के खेतों को उत्तम रीति से जोत सकते हैं—तथा साथ ही उन तमाम जुताइयों की आवश्यक बातों को भी पूर्ण कर सकते हैं। जो कि देशी-हलों से कभी भी की जाने की आशा पाई नहीं जाती। इस कारण हमारे देश के किसानों को या तो स्वयं या सहयोग-समितियों की सहाहता से अपने काम में लाकर के इस प्रकार के हलों का देश में प्रचार करना चाहिये।

इसमें सन्देह नहीं है। कि इन हलों का मूल्य अब तक के बताये हुये हलों से कुछ अधिक है। परन्तु हमारे देश के बड़े किसानों के लिये अथवा ज़मींदारों की 'सीर' की जुताई के लिये कुछ अधिक नहीं है। उन्हें अवश्य ही इसे ख़रीद कर के इसका प्रचार अपने आस-पास के किसानों में करना चाहिये।

---
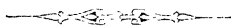
ए. टी. टर्नरैस्ट हल लोहिया जंज़ीर के साथ, लकड़ी की हरीस मूल्य ७५)

" " " " " लोहिया हरीस का " ६०)

सी. टी. " " " " लकड़ी की " " ९६॥)

" " " " लोहे की हरीस का मूल्य ११७)

ए. टी टर्नरैस्ट के जायद नोक का मूल्य ३॥)

✻ सी. टी ,, ,, ,, ,, ५)

"टर्नरैस्ट" हल का ठीक करना तथा उसका जोड़ना और खोलना ठीक उसी प्रकार से है; जिस प्रकार से कि "पंजाब हल" की जोड़ाई तथा खोलाई करना है। केवल 'पंजाबहल' की अपेक्षा टर्नरैस्ट हल' की हरीस अधिक पुष्टता से कसी हुई होती है। सब से ही अधिक ध्यान रखने योग्य बात इस हल के सम्बन्ध में यह है कि हल तथा जुये को जोड़ने वाली लोहिया जंजीर 'खारदार कुन्दे" के बीच से दायें या बायें जितनी है। उतनी ही दूर बीच से बायें या दाहिने ओर दूसरी 'कूढ़' में आने से पहिले जंजीर को हटा लेना चाहिये। इस हल में इस "खारदार कुन्दे" की बनावट इस ढंग से की गई है। कि जंजीर को जिधर चाहें उधर ही दम भर में हटा सकते हैं।

हमने अपने विचारानुसार अब तक गरमी की जुताइयों के सम्बन्ध में प्रयोग तथा व्यवहार में लाने योग्य इस देश के उपयुक्त तथा लाभदायक कुछ हलों का वर्णन कर दिया जिससे पाठक ! इस किस्म के नवीन हलों के व्यावहारिक प्रयोग के विषय में बहुत सी जानने योग्य बातों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। अब हम अपने वादे के अनुसार उन भूमियों की गरमी

---

नोट—मंगाने के पहिले कम्पनियों तथा सरकारी फार्मों से दाम के विषय में पूंछ-पांछ कर लेनी आवश्यक ही नहीं अनिवार्य्य है।

की जुताइयों के सम्बन्ध में कुछ चर्चा करेंगे; जहां कि पलेवा (सिंचाई) करने के साधन उपस्थित नहीं हैं।

जैसा कि प्रसंगानुसार ऊपर कह आये हैं। कि उन स्थानों की गरमियों की जुताइयाँ करनी सचमुच में बहुत ही कष्टप्रद है। जहाँ कि सिंचाई के साधन उपस्थित तथा पर्याप्त नहीं है। ऐसे स्थानों की गरमी की जुताइयों के विषय में हमारे तथा विदेश के कृषि-वैज्ञानिकों ने अनेकों जाँच-पड़ताल करके यह राय क़ायम की है। कि इन जगहों के लिये गरमी की जुताइयों के समय में यदि निम्न-लिखित हलों का व्यवहार किया जाय। तो सिंचाई की सारी अड़चनें दूर हो जाँयगी, और अन्य स्थानों की भाँति इन स्थानों में भी गरमी की जुताइयाँ सरलता-पूर्वक की जा सकेंगी।

जिस हल का चित्र आगे चित्रित किया गया है। उसका नाम पत्थर-तोड़ हल है। इस हल द्वारा उपर्युक्त वर्णित क़िस्मों की भूमियों में गरमी की जुताइयाँ की जा सकती हैं।

यदि फ़सलों के काटने के पश्चात् चाहे फ़सल 'रबी' की हो अथवा ख़रीफ़ की। महावट अथवा चैत्र-वैशाख में आने वाली आंधियों के पश्चात् कुछ वर्षा हो जावे, तो कहना ही क्या है। उसी समय उक्त वर्णित हलों से या इस पत्थर-तोड़ हल से गरमियों की जुताइयाँ कर देनी चाहिये। दैवात् यदि महावट अथवा वर्षा न भी हो, तो फ़सलों के काटने के पश्चात् देश के किसानों, जमीदारों तथा कृषि-व्यवसाइयों का यह कर्तव्य होगा। कि वह अपने खेतों को इसी प्रकार के हलों से अवश्य जोता करें।

पत्थर-तोड़ नामी हल एक विशेष क़िस्म का नवीन हल है। वह ऐसी ही ज़मीनों की जुताई करने के लिये बनाया गया है।

चित्र नं० ४
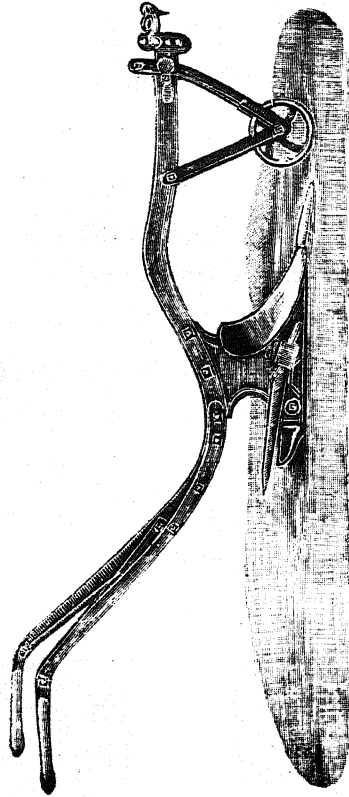
पत्थर तोड़ हल

जहाँ कि सिंचाई के साधन प्राप्त न हों—अथवा अन्य कारणों वश मटियार क़िस्म की भांति की ज़मीनें अग्र वर्णित हलों से न

जोती जा सकें। ऐसी ही क़िस्म की ज़मीनों के लिये यह हल बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। देश भारत के सभी प्रान्तों के किसानों को जो कि ऐसी ज़मीनों में काश्त करते हैं। जिनका कि ऊपर ज़िक्र किया जा चुका है। ऐसे हलों का प्रयोग तथा व्यवहार अवश्य ही अनिवार्य्य रूप से करना चाहिये।

क्योंकि इस हल में अन्य मिट्टी-पलटने वाले हलों की अपेक्षा "स्पात" की एक छड़दार नोक लगी रहती है। यदि इस हल की यह नोकीली छड़ ठीक रीति से हल में 'फ़िट' होगी। तो कड़ी से कड़ी ज़मीन भी सरलता पूर्वक जोती जा सकेगी। इस हल का मिट्टी-पलटने वाला भाग अन्य मिट्टी-पलटने वाले हलों की अपेक्षा छोटा होता है। जिससे 'कूढ़' भी अन्य हलों की अपेक्षा पतली और कम चौड़ी होती है। जिसके कारण इसकी खिंचावट की शक्ति भी अन्यान्य हलों की अपेक्षा कम है। ख़रीफ़ की फ़सलों के जैसे कपास के कट जाने के बाद चैत्र-वैशाख के महीने में जब कि ज़मीन वास्तव में ही कठोर हो गई थी। इसकी खिंचावट की शक्ति साढ़े चार मन पाई गई है

इस हल की जोड़ाई तथा खोलाई ठीक उसी प्रकार से है। कि जिस प्रकार से पंजाब तथा टर्न रैस्ट हल की है। केवल इसके स्पाती छड़दार नोक को ऐसी दशा में रखना चाहिये। जिससे हल खेत के धरातल में जम कर चले। साधारणतया खेतों को जोतते समय इसकी छड़दार नोक को लगभग तीन इंच के अगाड़ी की तरफ़ निकाले रहना चाहिये। यदि खेत का धरातल अधिक

कठोर हो तो आवश्यकतानुसार नोक को और भी बढ़ा लेना चाहिये। नोक को बढ़ा लेने के पश्चात् नोक के नीचे वाली 'कील' को मज़बूती के साथ ठोंक करके ठीक रीति से फिट कर देना चाहिये जिससे नोक को हिलने-डुलने का अवसर ही जुताई करते समय न प्राप्त हो सके।

इस हल के पहिये की ऊँचाई धरातल से इतनी ऊँची रखनी चाहिये। कि जिससे हल की नोक खेत के धरातल में पर्याप्त गहराई तक घुस कर चले। साधारणतः इस हल की नोक उतनी ही निकली हुई होनी चाहिये। जितने से कि हल खेत के धरातल में जमकर चल सके। क्योंकि नोक जितनी ही अधिक लम्बी होगी उतनी ही अधिक शक्ति बैलों को इस हल के खींचने में लगानी पड़ेगी। इन हलों को व्यवहार तथा प्रयोग में लाने की उत्तम तथा ठीक रीति यह है। कि हल का सारा भाग खेत के धरातल में हमवार दशा में चले—अर्थात जुताई करते समय इन हलों की 'परिहारी' खेत के धरातल के बराबर रहे। इन मिट्टी- पलटने वाले नवीन वैज्ञानिक हलों को भूल से भी देशी-हलों की भाँति जोतते समय परेथा पर (handles) ज़ोर देकर के नोक को दबाना नहीं चाहिये।

यदि इन हलों से अधिक गहराई तक जुताई करनी आवश्यक हो तो एक परेथा अर्थात् कुढ़ा वाले हलों के मोल्ड-बोर्ड वाले भाग में 'पाट' या फन्नी बाँध कर के जुताई करना चाहिये। और दो परेथा वाले हलों को पहियों के द्वारा घटा बढ़ाकर खेत की गहरी तथा उथली जुताई करनी चाहिये। इस हल का दाम लगभग

१२०) रुपये के है। अतएव, हमें उन तमाम देशों तथा स्थानों के किसानों से यही कहना है। कि उन्हें अवश्य इस हल द्वारा अपने खेतों को गरमियों के दिनों में जोत करके छोड़ देना चाहिये। जहाँ कि सिंचाई के साधन प्राप्त नहीं है—अथवा जहां के किसान सिंचाई के साधनों के प्राप्त होते हुये भी किसी कारण वश पलेवा कर के खेतों को जोतने में असमर्थ हैं।

गरमियों में खेतों की जुताइयाँ करके उन्हें छोड़ देना चाहिये—अर्थात इन दिनों की जुताइयों का यही अभिप्राय है। कि खेत जोत कर छोड़ दिये जाँय। जिससे खेत के धरातल तथा गर्भतल में भौतिक-शक्तियाँ—अर्थात् धूप, वायु, लूह आदि का भली भाँति आघात-प्रघात हो। जिसके कारण अनेकों प्रकार के रासायनिक तथा भौतिक परिवर्तन हो सकें। जिससे खेत के धरातल की मिट्टी मे पौधों के लिये पर्य्याप्त मात्रा में उत्तम-श्रेणी की खूराक संचय हो जाय। जिससे फ़सलों के पौधे इन खूराकों को खाकर अधिक से अधिक पैदावार दे सकें।

पाठकों! की जानकारी के हेतु "ग्रीष्म-कृषि-कर्म्म" के वर्णन में हमने अनेकों आवश्यक बातों की चर्चा कर दी है। जिसके व्यवहार और प्रयोग से निस्सन्देह पूर्ण सफलता हमारे देश के कृषि-व्यवसायी कृषक प्राप्त कर सकते हैं। हमारी समझ में तो सब से ठीक यही मूल-मंत्र है कि—

**एको देवो केशवः विश्वासम् फलदायकम्।**

जिन सज्जनों को हमारी कही तथा लिखी हुई बातों पर विश्वास

है; और यदि वह उसको कार्य्य रूप में परिणित कर के इन तमाम बातों का अनुभव करना आरंभ कर देंगे। तो उन्हें वैसे ही तमाम बातों की असलियत और नक़लियत का पता चल जायगा। क्योंकि असल वात असल ही है, और नक़ली बात नक़ली ही है।

हमारी समझ में तो सब आवश्यक बातें गरमियों की जुताइयों के सम्बन्ध में बता दी गई हैं। परन्तु इतने पर भी हमारी समझ से एक बाता शेष है; और वह यह है कि गरमी की कितनी जुताइयां खेतों में करनी चाहिये। इसका वास्तविक विवेचन अभी तक नहीं हुआ है। इस सम्बन्ध में हमारा इतना ही कहना है कि शरबत बनाने में जितनी ही शक्कर डाली जायगी। शरबत उतना ही मीठा होगा।

इसी भारतीय कहावत के सिद्धान्तानुसार गरमी की जितनी ही जुताइयाँ जितनी ही बार खेतों में की जाँयगी, उतना ही अच्छा होगा। इतने पर भी मेरा कहना है कि 'ख़रीफ़' और 'रबी' की तथा 'जायद' की फ़सलों के कट जाने के पश्चात् पलेवा करके खेतों को तुरन्त ही जोत देना चाहिये। इसके पश्चात् जो खेत चैत्र, बैशाष, जेष्ट में खाली रहें—अर्थात् उसमें कोई फ़सल न बोई हुई हो तो इन तीनों महीनों में अवश्य ही किसानों को अपने तमाम खेतों को जोत देना चाहिये। इस प्रकार से गरमी के चारों महीनों में पलेवा वाली जुताई को लेकर चार जुताइयाँ नहीं, तो तीन जुताइयाँ गरमी के दिनों में खेतों की कर देना जरूरी है॥

यदि यह तीनों जुताइयाँ उपर्युक्त वर्णित रीत्यानुसार की जाँयगी। तो हम इस बात को दृढ़ता से कह सकते हैं। कि यदि उन खेतों में बोई जाने वाली खरीफ़ अथवा 'रबी' की फ़सलों की पैदावार तिगुनी-चौगुनी न होगी। तो दुगनी और ड्योढ़ी तो अवश्य ही होगी; और लगातार प्रत्येक वर्षों में यदि इसी प्रकार गरमी के दिनों में खेतों की जुताइयाँ होती रहीं। तो परमात्मा की असीम कृपा से भारतीयों को वह दिन अवश्य ही प्राप्त हो जायगा। जब कि उनके खेतों से फ़सलों की उपज भी अन्य देश के खेतों के समान दुगुनी-चौगुनी मिलने लगेगी क्योंकि;

"हिम्मते मरदाँ मददे खुदा"

वाली कहावत भारतीयों को सदैव से ही विश्वासनीय सिद्ध हो गई है। अतएव, अब शीघ्रता से हमारे देश के कृषक-समुदाय के आला क़ौमों को (ब्राह्मण, क्षत्री, कायस्थ तथा सैय्यद, मुग़ल, पठान) कर्म्मक्षेत्र में कमर कस कर के उतर पड़ना चाहिये; और विदेशी कृषक-समुदाय की आला क़ौमों की भाँति अदना क़ौमों की सहायता (मज़दूर-विभाग) लेकर अपने कृषि क्षेत्रों को सुधार लेना चाहिये। क्योंकि वर्तमान-काल में आला क़ौमों के किसान इतने आराम तलब हो गये हैं। कि वह घर में बैठे रहते हैं, और फ़ज़ूलियात की गप्पे छाना करते हैं; और अपने शिकमी असामियों के हाथ अपनी 'सीर' की सारी ज़मीनें सौंप कर उनसे लगान वसूल कर के अपने परिवार का उदर पोषण किया करते हैं। इसका फल

यह हो रहा है। कि "तरक़्क़ीये हैसियत आराज़ी" के क़ानून के कारण ये तमाम अदना क़ौमें आराज़ी की हैसियत में तरक़्क़ी करने से वंचित रह जाती हैं। इस कु-परिणाम से खेतों की दशा दिनों-दिन अत्यन्त ख़राब होती चली जा रही है। इसी कु-प्रथा का यह दुष्परिणाम है। कि भारतीय भूमि की प्राकृतिक उर्वरा-शक्ति (Natural fertility) दिनों-दिन घटती चली जा रही है। जिससे फ़सलों की उपज में निरन्तर कमी हो कमी हो रही है। यदि अब भी ऐसे पारिवार्तनिक काल में हमारे देश के किसानों की आला क़ौमें सचेत होकर के अपने कर्तव्यों पर न डट जांयगी, तो देख लीजियेगा कि थोड़े ही दिनों में इन आला क़ौमों का सारा हक़ देश-कालानुसार अदना क़ौमों को आप से आप प्राप्त हो जायगा। जिससे यह हाथ ही मलते-मलते अपनी हस्ती को इस संसार से मिटा देंगे।

ऐसी दशा में इन्हीं क़ौमों की आने वाली संतान इन्हें घृणा की दृष्टि से देखकर, इनकी बुद्धि की विलक्षणता पर दो बूंद आँसू टपका कर कर्म-क्षेत्र में उतर पड़ेगी, और अपना मतलब सिद्ध कर लेगी। परन्तु इन बुड्ढों के मस्तक पर इस वैज्ञानिक-युग के "कलंक का टीका" अवश्य लग जायगा।

# वर्षा कृषि-कर्म्म

ब तक हमने प्रस्तुत-पुस्तक के पिछले प्रक-रण में भारतीय "ग्रीष्म कृषि-कर्म्म" पर स्वतंत्रता पूर्वक वैज्ञानिकों की अनुमति के अनुसार अपना विचार प्रकट किया है। अब हम "वर्षा कृषि-कर्म्म" की कुछ आवश्यक बातों की विवेचना करके तत्पश्चात् वर्षा-ऋतु की जुताइयों के विषय में अपने देश के किसानों के हित की बात करूँगा।

यद्यपि इसमें संदेह नहीं है। कि हमने "ग्रीष्म कृषि-कर्म्म" की एक तरह से इति श्री कर दी है। परन्तु तो भी एक ऐसी बात कहनी है। जो कि वर्षा तथा ग्रीष्म दोनों ऋतुओं के कामों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। "जायद" की जितनी फ़सलें बोई जाती हैं; उनके खेतों की तय्यारी इसमें सन्देह नहीं है। जैसा कि हम अगले पृष्ठों में कह भी आये हैं। कि शिशिर तथा बसंत ऋतु में ही कर ली जाती है। जिससे वे ज्येष्ठ तक अवश्य ही बो दी जाती हैं; इन (जायद) फ़सलों की बुवाई फ़रवरी मार्च से ही आरम्भ हो जाती है और ज्येष्ठ तक अवश्य हुआ ही करती है। इस कारण इन जायद

इस प्रकार से जब परिवार-प्रधान ( आला-मालिक ) कुटुम्ब के एक गिरोह के ताल्लुक़ ख़रीफ़ की फ़सलों का तमाम चार्ज सौंप देगा; तो उसका यह कर्त्तव्य होगा कि अब वह इन खेतों में बरसात की जुताइयों का भी काम परिवार के किसी चतुर पुरुष के हाथों में सौंप दें। कि जिसमें 'रबी' की फ़सलें बोना है। क्योंकि जिस प्रकार से 'ख़रीफ़' और 'रबी' की फ़सलों के लिये गरमी की जुताइयाँ आवश्यक ही नहीं अनिवार्य्य हैं। उसी प्रकार से 'रबी' की फ़सलों के लिये बरसात की जुताइयाँ भी अनिवार्य्य ( ज़रूरी ) हैं।

इन जुताइयों का करना 'रबी' की फ़सलों के लिये उतना ही हितकर है। जितना कि गरमियों की जुताइओं का करना। इन जुताइयों के करने की अनेक वैज्ञानिक प्रणालियाँ तथा रीति रिवाजें और प्रथायें हैं। जिनका कि सदुपयोग हमारे देश के किसानों को भी अन्य देश के किसानों की भांति करना वर्त्तमान काल में अनिवार्य्य रूप से आवश्यक हो गया है। अब हम तमाम वैज्ञानिक प्रथाओं तथा रीति रिवाजों का वर्णन करूंगा। जो कि बरसात की जुताइयों के लिये लाभदायक तथा अनिवार्य्य हैं।

पहिले ही लहरा के पड़ते ही—अर्थात् वर्षारम्भ के साथ ही वे तमाम खर-पतवारों के बीज जो कि खेतों में किसी प्रकार से जीवित रह जाते हैं, नमी के पाते ही जम आते हैं; इनके उगने और उग कर बढ़ने से खेतों के धरातल हरे-भरे होकर के लहलहा उठते हैं; जिससे वर्षा-ऋतु के आगम का संदेश सांसा-

रिक प्राणियों को मिल जाता है; और वे अपने-अपने कामों पर डट जाते हैं। ऐसे समय में उन किसानों का यह काम है। कि जिनके सुपुर्द 'रबी' की फ़सलों की बुवाई के लिये खेतों को तय्यार करने के हेतु "बरसात की जुताइओं" का काम उनके सुपुर्द कर दिया गया है। वे झटपट खेतों की जुताइयां बर्षा-ऋतु में आरम्भ कर दें। जिससे खेतों के सारे खर-पतवार जड़ सहित उखड़-पुखड़ कर जड़ हीन हो जावें, और धरातल की मिट्टी में दब कर सड़ गल कर हरी खाद का काम दें। यदि ऐसा न किया जायगा; अर्थात् इन खर-पतवारों के जमते ही इनको बाल्यकाल में ही नष्ट बर्बाद न कर दिया जायगा। तो यह हमारी फ़सलों को अनेकों प्रकार से हानि पहुंचावेंगे। क्योंकि ये सारे खर-पतवार, घास-फूस जो कि खेतों में उगा करते हैं। वनस्पति शास्त्रानुसार हमारी फ़सलों के कुटुम्बी होने के कारण खेत में जमा की हुई खूराक के हक़दार हो जाते हैं, और फ़सलों के बीजों के बोने से पहिले ही खेतों की मिट्टी से खूराक ग्रहण करके (१) एक तो फ़सलों की खूराक को ही कम करने लगते हैं, जिसका फल यह होता है कि खेतों में बोई जाने वाली फ़सल के लिये पर्य्याप्त मात्रा में खूराक नहीं मिलती और वे कमज़ोर ही दशा में उगते हैं, और अपनी शैशवास्था से ही जब कमज़ोर हो जाते हैं, तो यौवनावस्था में भी इतने सशक्त नहीं हो सकते। कि उन खर-पतवारों के जवान पौधों से लड़-भिड़ कर पूर्णमात्रा में खेतों से खूराक़ ग्रहण कर सकें। जो कि बरसात के ही आरम्भ में खेतों में उगकर के

भरपूर्ण खूराक ग्रहण करके सशक्त और नौ जवान हो गये हैं।

दूसरे ऐसी ही अवस्था के कारण जिन खेतों की जुताई वर्षा ऋतु में करके उन के खर-पतवारों को नष्ट-बर्बाद नहीं कर दिया जाता है। वह बलवान होने के कारण अपनी नव जवानी में कार्तिक में बोई जाने वाली 'रबी' के बच्चा फ़सलों की खूराकों को खा कर अपना कुटुम्ब बढ़ाने के लये अपने तमाम हिस्सों को बलिष्ट बना कर के खूब उत्तम तथा मज़बूत बीज पैदा किया करते हैं। जिससे 'रबी' की फ़सलों के पौधे इन खर-पतवारों के फ़सलों के पौधों के सामने कमज़ोर हो कर के पीले पड़ जाते हैं, जिससे उनसे उत्तम पैदावार हासिल हो नहीं हो सकती। ऐसी दशा में गरमियों की जुताइयों का किया हुआ श्रम भी व्यर्थ हो जाता है; ऐसी दशा में किसानों का यही कर्त्तव्य है कि वर्षारम्भ के साथ ही 'रबी' के उन तमाम खेतों को एक बार शीघ्राति शीघ्र जोत दें, जिन खेतों से कि "रबी" की फ़सलों द्वारा उत्तम-श्रेणी की पैदावार लेने की आशा कर रहे हों।

बहुत से हमारे किसान पाठक ! इस बात के जानने के लिये उत्सुकता पूर्वक लालायित होंगे। कि लेखक महोदय मुझे शीघ्र बताइये कि हम लोग इन दिनों की ( बरसात ) जुताइयां किस प्रकार के हलों से करें। क्योंकि आपने गरमी की जुताइयों की चर्चा में यह साफ़ साफ़ शब्दों में कह दिया है। कि इन दिनोंमें—अर्थात गरमी की जुताइयाँ मिट्टी-पलटने वाले 'मोल्ड-बोर्ड" (mould Board) हलों से ही करने में सर्वांश में लाभ है। इसी प्रकार से कृपया

शीघ्र बतलाइये कि हम लोग वर्षा की जुताइयों को किन किन प्रकार के हलों से करें। जिसकी वजह से हम गर्मी की जुताइयों की भांति बर्षा की जुताइयों से भी पूर्णतः लाभ उठा सकें। ऐसी अतुरता के समय पर चटपट हम अपने क़िसान पाठकों को यही राय देंगे। कि आप लोग अपने सारे खेतों को उन्हीं मिट्टी-पलटने वाले हलों से जोतना आरंभ कर दीजिये। कि जिन हलों को आपने गरमी की जुताइयों के दिनों में अपने प्रयोग और व्यवहार में लाया है—तथा साथ ही उन हलों से जुताई करने की तमाम रीति रिवाज़ें आपने लगभग चार महीने जुताई करके सीख ली हैं। यही राय तमाम कृषि वैज्ञानिकों ने अपने-अपने देश के क़िसानों को ऐसे मौक़ों पर दी है। यही मेरी भी राय है, मेरा जहां तक ख़्याल है। यही राय भारत के तमाम कृषि—वैज्ञानिकों की भी होगी, और इसी राय के अनुसरण तथा अनुकरण में भारतीय किसानों का कल्याण है।

इसमें सन्देह नहीं है कि ग्रीष्म-ऋतु की भांति वर्षा-ऋतु की जुताइयों के लिये भी वर्तमानकाल में अनेकों प्रकार के यंत्र आविष्कृत होकर के कृषि संसार के व्यवहार में प्रचलित हो गये हैं। जिससे तमाम देश के किसान इन यंत्रों के व्यवहार से लक्षों रुपया का लाभ उठाया है, और उठा रहे हैं, और इनकी संताने भी उठावेंगी। क्योंकि वे वैज्ञानिक-साहित्य के अध्ययन में दत्त-चित हैं, और वैज्ञानिक-साहित्य का अध्ययन भली भांति कर रहे हैं। परन्तु हमारे देश वासियों का वैज्ञानिक-साहित्य की ओर अभी तक ध्यान ही आकृष्ट नहीं हुआ है, अस्तु।

जैसा कि हमने कहा है कि गरमी की जुताइयों में जिन हलों का प्रयोग और व्यवहार किया गया है। उन्हीं हलों का प्रयोग तथा व्यवहार भारतीय किसानों को बरसात की जुताइयों के आरंभ काल से ही करना चाहिये। इससे यथोचित रूप से पूर्णतया हमारे किसानों को लाभ ही होगा। हानि तिल मात्र की भी नहीं होगी। क्योंकि ये मिट्टी-पलटने वाले हल खर-पतवारों की जड़ों को काट देंगे, और धरातल की मिट्टी को उलट-पुलट करके गर्भतल के पास पहुंचा देंगे। जिससे ये सारे खर-पतवार सड़-गल कर हरी खाद का काम दे जावेंगे—अर्थात् हमारी ख़रीफ़ या रबी की फ़सलों के पौधों की ख़ूराक न छीन सकेंगे। वरना आप ही सड़-गल कर हमारे पौधों की ख़ूराक़ बन जावेंगे।

प्रिय पाठको! गरमी की जुताइयाँ करने के लिये हमने जिन-जिन हलों के व्यवहार करने की राय दी है। वे वास्तव में ही बरसात की जुताइयों के लिये भी लाभदायक हैं। पर, तो भी कुछ ऐसे और भी हल हैं। जिनका वर्णन हमने पाठकों से नहीं किया। इन हलों की भी बनावट मिट्टी-पलटने वाले हलों के ही समान है; केवल अन्तर इतना ही है। कि यह हल "मेस्टन-हल" से कुछ बड़े हैं, और अधिक गहराई तक खेतों को जोत सकते हैं। क्योंकि 'मेस्टन हल' देशी हल के ही सदृश काम करता है, और धरातल की ही मिट्टी को उलट-पुलट सकता है। परन्तु ये हल जिनका कि वर्णन आगे किया जायगा। 'मेस्टन हल' से अधिक गहरे जाने वाले हैं। इसके सिवाय "मेस्टन हल" हल्की क़िस्म की ही (light soil) ज़मीनों

के लिये अधिक लाभकारी सिद्ध हुआ है। परन्तु अग्र चित्रित हल हल्की ज़मीनों के सिवाय कठोर भूमियों के लिये भी लाभकारी सिद्ध हुये हैं। दूसरी मुख्य बात यह भी है कि गरमियों में धरातल के खुले रहने से खेत के गर्भतल में भी धरातल के ही द्वारा सूर्य्य की प्रखर किरणों का तथा लूह का प्रभाव भली प्रकार से जम सकता है। इसलिये यदि ऐसे समय में (गरमी के दिनों में) खेतों का धरातल ही खोल दिया जाय। तो भी भारतीय किसानों के लिये बहुत कुछ लाभ फ़सलों की पैदावार के रूप में हो सकता है।

बरसात के दिनों में इस बात की आवश्यकता हुआ करती है कि खेतों में जमे हुये खर-पतवारों के तथा घास-फूस के सारे पौधे जड़ से ही उखाड़-पुखाड़ कर ज़मीन में दबा कर गाड़ दिये जांय। जिससे ये पौधे सड़-गल कर हरी खाद का काम दे जावें। इस काम के लिये हमें इस बात की भी आवश्यकता होगी। जो कि खेत के धरातल के सिवाय गर्भतल तक की मिट्टी को भी खोदकर उलट पलट दें। जिससे खर-पतवारों के पौधे समूल उखड़ कर गर्भतल की नमी से सड़गल कर खाद बन करके निर्मूल हो जावें। इस काम के लिये हमारे देश के किसानों को भी गरमी के दिनों में जुताई करने वाले हलों की अपेक्षा कुछ ऐसे बड़े हलों का प्रयोग तथा व्यवहार करना पड़ेगा। जो कि अग्र वर्णित ( गरमी की जुताइयों के सम्बन्ध में ) हलों के मुक़ाबिले में गहरी जुताई कर सकते हों। जिससे खर-पतवारों के समूल नष्ट होने के सिवाय खेत के गर्भतल तक में पर्य्याप्त मात्रा में बरसात का जल सोख (ज़ज्ब)

जाय। यह तभी होगा जब कि खेत के गर्भतल का भी कुछ भाग खुद कर पोला हो जायगा, और वहां पर पानी भली प्रकार से मिट्टी के ज़र्रों में जज्ब हो सकेगा। यदि पानी भली प्रकार से इन हलों की जुताइयों के कारण खेत के धरातल तथा गर्भतल में जज़्ब हो जायगा तो देख लीजियेगा फ़सलों के बीज उत्तम तथा ठीक रीति से जमकर फूल फल देंगे।

अतएव, अवश्य ही हमारे देशवासियों को इन हलों को अपने खेतों की जुताइयों के व्यवहार में लाना चाहिये। हमारे देश के सर्वसाधारण किसानों के लिये जो हल बरसात की जुताइयों के लिये उपयुक्त होंगे, उनका वर्णन नीचे किया जा रहा है। संयुक्त प्रान्त वासियों के लिये तो यह हल अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध हुये हैं। इसलिये हमारे प्रान्त तथा देश के उन निवासियों को चाहिये कि बरसात में "वाट्स' (wats) हल का व्यवहार तथा प्रयोग अवश्य ही करें। कि जिन्होंने गरमी की जुताइयों में "मेस्टन-हल" का प्रयोग और व्यवहार किया है।

इस हल का नाम जिसका कि चित्र आगे चित्रित किया गया है वाट्स हल ( wats plough ) है। यह हल "मेस्टन हल" से कुछ हां भारी है। इसकी बनावट को देखने से ही पता चलता है कि इसकी बानवट बहुत कुछ 'मेस्टन-हल' से मिलती-जुलती हुई है। अन्तर केवल इन हलों के मिट्टी-पलटने वाले भाग (mould board) में तथा वाडी ( body ) में ही है, और इसी अन्तर के कारण यह हल मेस्टन-हल से बड़ा कहा जाता है। यह हल

इस देश तथा प्रान्त में बहुत दिनों से प्रयोग तथा व्यवहार में आ रहा है। जिससे इस हल की उपयोगिता भारत देश तथा संयुक्त प्रान्त के किसानों के लिये बहुत कुछ सिद्ध हो गई है। तमाम संयुक्त
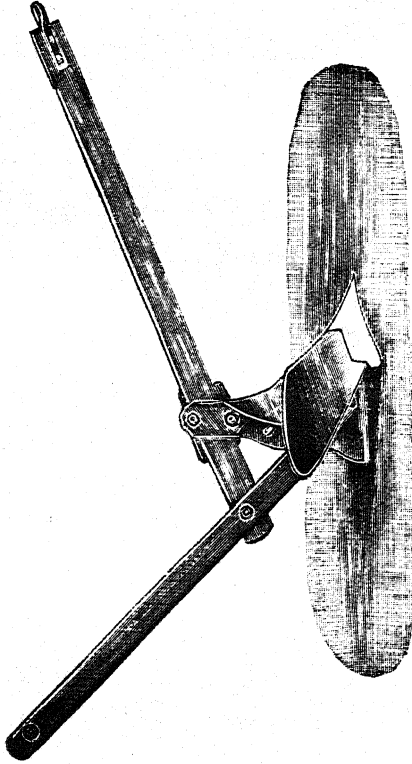
चित्र सं० ७ वाटस-हल।

प्रान्त तथा देश के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कृषि-वैज्ञानिकों ने तथा सरकारी कर्म्म-चारियों ने जिन्होंने कि इस हल का प्रयोग और

व्यवहार अपने-अपने आधीन कृषि-फार्मों पर किया है। साफ़ साफ़ शब्दों में कह दिया है कि यह हल भी इस देश के लिये बहुत ही लाभकारी है। इस हल को भी हमारे देशवासी किसानों को गरमी तथा बरसात की जुताइयों के समय प्रयोग में लाना चाहिये, और इसके व्यवहार तथा प्रयोग से अन्य देश के किसानों की भाँति लाभ भी उठाना चाहिये।

यह हल खेत के धरातल की मिट्टी में लगभग छः इंच ( दस या ग्यारह अंगुल ) गहरा और पांच इञ्च के ( सात या आठ अंगुल ) लगभग चौड़ा कूढ़ काटकर मिट्टी को उलट-पलट देता है। जैसा कि हम कह चुके हैं। कि इस हल की बनावट बहुत कुछ मेस्टन-हल से मिलती-जुलती हुई होती हैं। परन्तु तो भी इसकी हरीस में और 'मेस्टन हल' की हरीस में बहुत कुछ अन्तर है, और वह अन्तर यह है कि "वाट्स हल" की कुछ (beams) हरीसें तो "मेस्टन-हल" की हरीस की भांति लम्बी होती हैं, और कुछ वाट्स-हल की हरीसें 'पंजाब' तथा 'टर्नरैस्ट-हल' की भांति छोटी होती हैं। जो कि लोहिया जंज़ीरों के द्वारा खेत को जोतते समय जुये से जोड़ी जाती हैं। छोटी हरीस वाले हलों में यही विशेषता है कि लोहिया जंज़ीरों के कारण बैल सरलता पूर्वक घूम सकते हैं। इस कारण उन बैलों के लिये जो कि छोटी हरीस वाले हलों को जो कि लोहिया जंज़ीरों के द्वारा जुये से जोड़ी जाती हैं. आदी हो गये हैं। यह छोटी हरीस वाला हल बहुत ही उपयुक्त होगा। परन्तु उन बैलों के लिये जो कि देशी हलों के तथा लम्बी

हरीस के मेस्टल-हल को ही जोतने के अभी तक आदी हैं। उनके लिये बड़ी हरीस वाला वाट्स हल ही उपयुक्त होगा। ऐसी सूरत में खेतों की जुताई का काम भी भली प्रकार से अच्छा ही होगा और बैलों तथा हलवाहों को भी कोई दिक्कत नहीं उठानी पड़ेगी।

'वर्न' कम्पनी में बने हुये 'वाट्स-हल' का मूल्य निम्न-लिखित है। पाठकों को तथा उन तमाम खरीदने वालों को—अथवा उन तमाम किसानों को जो कि पढ़े-लिखे हैं। चाहिये कि जब इन हलों को खरीदने लगें, तो इनके मूल्य की सूची दस-पाँच प्रसिद्ध प्रसिद्ध कम्पनियों से मंगा लें, और स्थानीय कृषि-विभाग से भी मूल्य इत्यादि आवश्यक विषयों के सम्बन्ध में पूछ-ताछ कर लें। इस रीति से काम करने में सदैव लाभ ही है, हानि की कदापि भी संभावना नहीं है।

| | |
|---|---|
| 'वर्न' कम्पनी का 'वाट्स-हल' बड़ी हरीस वाला मूल्य | १५) |
| 'वर्न' कम्पनी का ,, ,, छोटी हरीस वाला ,, | १२) |
| ,, ,, ,, नोक का मूल्य | ।।।–) |
| ,, मोल्ड बोर्ड (मिट्टी-पलटने वाले भाग) का मूल्य | ।।।=) |
| वाट्स-हल की जंजीर का मूल्य | ८) |

---

## 'वाट्स' तथा 'मेस्टन' हल का अन्तर।

जैसा कि हम कई बार कह और लिख चुके हैं। कि यह दोनों हल लगभग सभी बातों में और कामों में समान है; इनमें कोई विशेष

अन्तर नहीं है; केवल इन दोनों हलों की बनावट और हरीस में थोड़ा सा अन्तर है। उसका भी वर्णन हमने ऊपर कर दिया है। यह दोनों हल हल्की-क़िस्म ( light soil ) की ज़मीनों के लिये जैसे कि पड़वा, हल्की-दूमट तथा दूमट और बलुहरा ज़मीनों की जुताई के लिये लाभकारी हैं।

लम्बी हरीस वाला वाट्स-हल भी मेस्टन-हल की भाँति देशी हल के ठीक करने वाले किसानों के द्वारा ठीक किया जा सकता है; और इसकी मरम्मत भी देश के चतुर लुहार तथा मिस्त्री कर सकते हैं। छोटी हरीस वाले हल को सब से पहिले बड़ी हरीस वाले हल की भाँति ठीक कर लेना चाहिये, और खेत के धरातल पर रख करके देख लेना चाहिये कि यह वाट्स-हल खेत के धरातल पर ठीक रीति से एकसां है कि नहीं; जब वाट्स-हल खेत के धरातल पर एकसां बैठ जावे, तो जंजीर से जुये को जोड़ देना चाहिये। परन्तु तो भी इस बात का ध्यान बना रहे कि इस लोहिया जंजीर की लम्बाई इतनी होनी चाहिये। कि जिससे हल की नोक ऊपर का न उठी रहे। यदि जंजीर आवश्यकता से अधिक लम्बी कर दी जावेगी। तो बैलों को हलवाहों के लिये वश में रखना दुष्कर ( मुश्किल ) हो जावेगा।

ऐसी दशा में हल की नोक यानी फार वाला भाग ज़मीन में बहुत गहरा घुस जायेगा। जिससे बैलों को भी खींचने में अधिक जोर लगाना पड़ेगा। जिससे अनेकों प्रकार की दिक़्क़तों के सामना करने की संभावना है। इसी प्रकार से मिट्टी-पलटने

वाले हलों की छोटी हरीस वाले हलों में न तो जंजीर को बहुत बड़ी ही करना चाहिये, न बहुत छोटी ही। क्योंकि इन दोनों हरकतों ही में हानि है। सदैव बैलों की छोटाई-बड़ाई के अनुसार हल की जंजीर को भी छोटा और बड़ा रख करके तभी जुये में जंजीर को लगाना चाहिये। जिससे खेत ठीक रीति से जोता-जा सके और जुताई करते समय बैलों को तथा हलवाहों को किसी प्रकार का कष्ट न सहना पड़े। क्योंकि जिस प्रकार से इन हलों के व्यवहार और प्रयोग से अधिक लाभ है। उसी प्रकार से इनके जोतने के लिये तथा व्यवहार और प्रयोग में लाने के लिये चतुर और व्यावहारिक कृषि-कर्म्म में दक्ष हलवाहों तथा बैलों की भी आवश्यकता है। ये तमाम बातें—अर्थात् बैलों की तथा हलवाहों की कार्य्य पटुता थोड़े ही दिनों में या तो किसी सरकारी कृषि-फार्म पर अथवा किसी कृषि-विज्ञान-विशारद की सहायता द्वारा अपने ही फार्मों के खेतों पर थोड़े ही दिनों में बड़ी सरलता के साथ सीखा जा सकता है इसलिये इन हलों का व्यवहार और प्रयोग पहिले किसी न किसी प्रकार से सीख लेना ही किसानों के लिये लाभ प्रद है। मिट्टी-पलटने वाले एक और "मोल्ड-बोर्ड प्लाऊ" का वर्णन करके तब हम इन हलों का वर्णन हम कुछ देर के लिये बन्द कर देंगे। तब जुताई के अन्यान्य यन्त्रों का वर्णन करेंगे। जो कि बरसात की ही जुताइयों के लिये विशेष करके आविष्कृत किये गये हैं। इस मिट्टी-पलटने वाले हल का चित्र आगे चित्रित किया जाता है। जिसका कि वर्णन हम पाठकों को देना चाहते हैं।

इस हल का नाम 'मानसून-हल' ( monsoon plough ) है। यह हल भो हमारे देश के किसानों के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है।
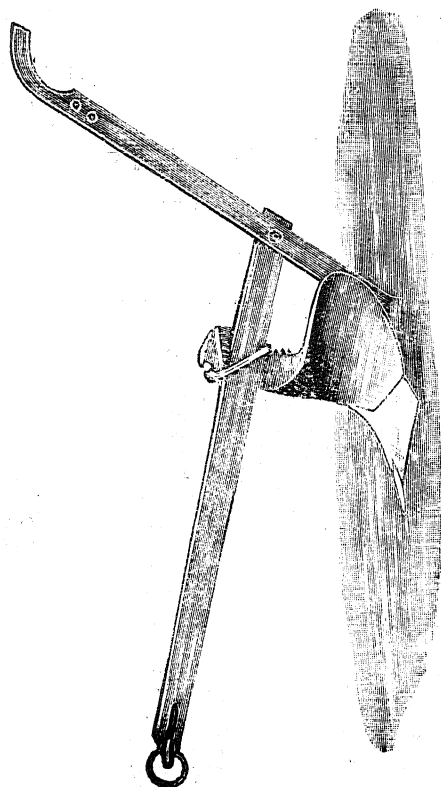
मानसून हल।

इस हल की भी बनावट तथा अन्यान्य बातें बहुत कुछ मेस्टन तथा वाट्स-हल से मिलती-जुलती है। जिससे इस हल के जोतने

में बैलों तथा आदमियों को किसी भी प्रकार की नई कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा। यह हल वाट्स तथा मेस्टन-हल की भांति हल्की-ज़मीनों में ( light soil ) जैसे पड़वा, दूमट, हल्की-दूमट, बलुइरा के लिये उत्तम सिद्ध हुआ है। उसी प्रकार से इस हल में विशेषता यह पाई गई है। कि यह हल मटियार तथा मार कावर ज़मीन की क़िस्म के खेतों में भी भली प्रकार से व्यवहार तथा प्रयोग में लाया जा सकता है। इस हल को भी भारतवासियों को अपने व्यवहार में लाने के लिये हिचकना नहीं चाहिये। यह हल इसी उद्देश्य से बनाया ही गया है। कि इसे किसान-वर्ग हर प्रकार की ज़मीनों के जोतने के काम में लावे। दूसरे इस हल की पहली नोक यदि एक तरफ़ जोतते-जोतते घिस जावे; तो इसे पलट कर इसका दूसरा सिरा जुताई के काम में लाया जा सकता है। जिससे इसके नोक के बदलने के लिये दूसरी नोक भी जल्दी ही ख़रीदने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। ऐसी दशा में कुछ मूल्य की भी बचत भारतीय किसानों को हो सकती है।

"मानसून हल" भी जंज़ीर वाले—वाट्स-हल की भांति ठीक किया जा सकता है, और इसकी मरम्मत भी देश के लोहार और मिस्त्री जो कि देशी-हल और मेस्टन तथा वाट्स हल की मरम्मत कर सकते हैं; बिना किसी अड़चन के कर लेंगे। इसमें एक विशेषता यह भी रक्खी गई है। कि हरीस के सिरे पर एक छेददार कुन्दा लगाया गया है। जिसमें पहिले लोहिया जंज़ीर को अटका करके, तब उसे जुये में बांधना चाहिये। इस छेददार कुंदे में जंज़ीर को दाहिने या

बायें हटा देने से हल 'कूढ़' से बाहर नहीं जा सकता। सब एक परेथा (कुढ़ा) ( one handed plough ) वाले हलों को ऐसे ही ठीक करना चाहिये। जिससे कि परेथा 'कुढ़ा' बिलकुल सीधा रहे। 'कूढ़' की तरफ़ या बाहर की तरफ़ झुका न रहे। "रैनसम्" कम्पनी का बना हुआ मानसून-हल निम्नलिखित मूल्य पर मिल सकता है।

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| रैनसम् | कम्पनी | का | मानसून हल | मूल्य | २७) |
| ,, | ,, | ,, | लोहे का भाग | ,, | २५) |
| ,, | ,, | ,, | फार व नोक | ,, | २) |
| ,, | ,, | ,, | फार बिला नोक | ,, | ।।।) |
| ,, | ,, | ,, | नोक बिना फार के | | १॥) |
| ,, | ,, | ,, | मोल्डबोर्ड का मूल्य | | १।।) |
| ,, | ,, | ,, | जंज़ीर | | ८) |

गरमी तथा बरसात की जुताइयों के सम्बन्ध में हमने उन तमाम मिट्टी-पलटने वाले हलों का सचित्र वर्णन कर दिया है। जो कि देश-भारत के लिये उपयोगी सिद्ध हो गये हैं। इसमें दोनों प्रकार के हलों का वर्णन किया गया है। चाहे वह एक परेथा वाले ( single stilt or one handed ) हल हों। चाहे दो परेथा (ploughs with two stilts) वाले हल हों। एक परेथा वाले हलों का व्यवहार हमारे देश के सर्वसाधारण किसान तक कर सकते हैं। क्योंकि इन हलों के व्यवहार करने के लिये देशी-हलों के व्यवहार की ही भांति केवल एक जोड़ी बैल तथा एक हलवाहे की

आवश्यकता हुआ करती है, और इन हलों का मूल्य भी कुछ विशेष अधिक नहीं है। न इनके व्यवहार करने में ही कोई विशेष अड़चन हमारे देश के किसानों को पड़ सकती है। इस कारण हमारे देश के किसानों को अवश्य ही जो कि देशी-हल का व्यवहार किया करते हैं। गरमी तथा बरसात की जुताइयों में इन हलों का व्यवहार करके लाभ उठाना चाहिये। समय आ गया है कि हम लोग भी व्यावसायिक संसार के रणांगण में उतरें, और अपने कृषि-व्यवसाय को प्राचीन काल की भांति फिर से संसार के व्यवसाय के शिखर पर पहुँचा दें।

हम उन देश के कृषि-व्यवसायियों से चाहे वह देश के आला क़ौमों के किसान हों, या कि अदना क़ौमों के, तथा ज़मींदारों और तालुक़ेदारों के सिरवाहों से जो कि खेती के लिये खुले दिल रुपया ख़र्च करना चाहते हैं। यह कह देना चाहता हूँ कि अब वह मौक़े को हाथ से न जाने दें। दो परेथा वाले हलों का व्यवहार और प्रयोग अवश्य करें। इसमें संदेह नहीं कि इन हलों का मूल्य एक परेथा वाले हलों के मूल्य की अपेक्षा बहुत है। परन्तु कोई हर्ज की बात नहीं है। इनके लाभों को और समय की आवश्यकता को देखते हुये हमें खुले दिल रुपया ख़र्च कर के इन हलों को ख़रीद लेना चाहिये. और इनको अपने व्यवहार में लाना चाहिये।

ये दोनों प्रकार के हल गरमी तथा बरसात की जुताइयों के लिये काम में लाये जा सकते हैं। जिन्हें जिस हल के खरीदने का सुभीता हो—अथवा जिस स्थान के लिये जो उपयोगी हो, वहां के

लोगों को वही हल खरीद कर व्यवहार तथा प्रयोग में लाना चाहिये, और इन हलों को खरीदते समय अपने स्थानीय सरकारी तथा अन्यान्य कृषि-वैज्ञानिकों की सम्मति ले लेनी परमावश्यक है, इससे देश के किसानों का लाभ है।

खेतों की जुताइयों के विषय में उन तताम हलों का सचित्र व्यवहार और प्रयोग हमने अपने पाठकों के सम्मुख सार रूप से निचोड़ करके रख दिया। चाहे वह इन हलों को अपने व्यवहार में लावें या न लावें। इसके लिये कोई भी लेखक, सम्पादक, कृषक-हितैषी, कृषि-विज्ञान वेत्ता, सरकारी कृषि-कर्म्मचारी दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। क्योंकि इन लोगों ने वहुत कुछ अपने कर्त्तव्यों का पालन देश के हित के लिये किया है। इसमें संदेह नहीं कि भारतीय कृषि-सुधार के लिये जितना प्रयत्न उक्त सांसारिक पुरुषों के समुदाय को करना चाहिये था नहीं किया है। इसलिये भारतीय कृषि-विषयक तमाम बुराइयों का दोषारोपण उन्हीं के सिरों पर मढ़ा जा सकता है। समय आ रहा है, और शीघ्र सामयिक आवश्यकताओं के पूर्णार्थ भारतवासी कर्म्म-क्षेत्र में कर्त्तव्य पालन के हेतु पदार्पण करेंगे; ऐसे समय भारतीय कृषि-व्यवसाय के सुधार का मामला आप ही आप तय हो जावेगा।

जुताई के यंत्रों (हलों) का वर्णन हमने अपनी मति के अनुसार प्रस्तुत पुस्तक में जैसा करना चाहिये था वैसा कर दिया। जिसके अध्ययन से पाठक वृन्द ! बहुत कुछ लाभ प्राप्त कर सकते हैं। कुछ ऐसी बातें हम अपने व्यावहारिक कृषिकारों से और कह देना

चाहते हैं। जो कि इन हलों के सम्बन्ध में मुझे कहनी है। संभव है इन बातों में से कुछ बातों का उल्लेख इस पुस्तक में कहीं पर प्रसंगानुसार कर दिया गया हो। तो इस स्थान पर मुझे पुनरुक्ति का दोष एक प्रकार से क्षम्य होगा।

अभी तक हमारे देश भारत में नवीन वैज्ञानिक रीति से तैयार किये हुये मिट्टी-पलटने वाले विदेशी हलों का प्रचार यथोचित रीति से जैसा होना चाहिये था नहीं हुआ है। इस बात के अनेकों कारण है। जो कि देश भारत की सामयिक बाधाओं के उपस्थित हो जाने के भय से निकट भविष्य में नहीं दूर की जा सकतीं। इन कारणों में भारत की नैतिक, धार्मिक, आर्थिक समस्यायों का बाहुल्य है। जिसके कारण इन नवीन कृषि-यन्त्रों का प्रचार देश में नहीं हो रहा है। ये समग्र विघ्न-बाधायें शीघ्र ही समय के उलट-फेर से दूर हो जायेंगी, और सारे भारतवासी अन्य वैज्ञानिक यंत्रों (मशीनों) की भांति इन कृषि-यंत्रों (मशीनों) का भी व्यवहार और प्रयोग नित्य प्रति करने लगेंगे।

ऐसे समय के उपस्थित हो जाने पर इन वैज्ञानिक कृषि यन्त्रों का व्यवहार और प्रयोग बहुत ही सरल बात हो जायगी। ऐसी अवस्था में हमारे देश के लोग इन सारे कृषि-यन्त्रों का व्यवहार प्रचुरता से करने लगेंगे। तब इन विदेशी कम्पनियों का कृषि-सम्बन्धी सारा सामान जो अभी तक दुकानों में पड़ा पड़ा सड़ रहा है, और बरसात में लोहिया यन्त्रों पर मुर्चा लग रहा है। ख़राब न होने पावेगा। वह भारतीय बाज़ारों में अन्य वैज्ञानिक

यन्त्रों ( मशीनों ) की भाँति तड़ाक-फड़ाक बिक जावेगा। जिससे एक बार विदेशी कम्पनियाँ इन कृषि-यन्त्रों की ही बिक्री की बदौलत मालामाल हो जावेंगी ; इसलिये उन्हें अभी से घबड़ाने का समय नहीं है।

## धीरज धरै सो उतरै पारा, नहीं तो डूबै मंझधारा।

इस कहावत के अनुसार विदेशी तथा स्वदेशी और भारत सरकार के राजकीय तथा प्रान्तीय कृषि-विभाग के कर्म्मचारियों का इस समय अभी यही कर्तव्य है। कि जिस प्रकार से हो सके उसी प्रकार से इन कृषि-यन्त्रों का प्रचार देश में करते रहें, जो कि देश के लिये उपयोगी सिद्ध हो गये हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि इन कृषि-यन्त्रों का मूल्य भारतीय किसानों की आर्थिकावस्था के सम्मुख बहुत मँहगा जंच रहा है। जिससे इच्छा होते हुये भी बहुत से किसान इन यन्त्रों के व्यवहार तथा प्रयोग से वंचित रह जाते हैं। इस कारण ऐसी तमाम सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं को चाहिये कि सामयिक अवस्था का अवलोकन करते हुये किसानों की आर्थिकावस्था पर भी विचार करें, तब इन कृषि-यन्त्रों का मूल्य कुछ कम कर दिया जाय। कि जिससे भारतीय किसान बिना आर्थिक कठिनाइयों के इन हलों को खरीद करके तब अपने कामों में ला सकें। क्योंकि इस बात की शिकायत लोगों को बहुत हो रही

क सरकारी कृषि-डिमांस्ट्रेटर समयानुसार कृषि-मशीनें व्यवहार के लिये न जाने देने में क्यों असमर्थता प्रकट कर दिया

करते हैं। कभी तो इन डिमांस्ट्रेटरों के पास मशीनें ही नहीं ठीक फिर रहती हैं, और जब कभी मशीनें ठीक भी रहती हैं, तब उनको काम दिखाने वाले चतुर मशीनमैनों अथवा बैलों की ही कमी पड़ जाती है। इस प्रकार से अनेकों अड़चनें स्थानीय डिमांस्ट्रेटरों को पड़ जाया करती हैं, इसलिये लोगों को समझ बूझ कर कुछ ऐसे मार्गों का अवलम्बन करना श्रेयस्कर होगा। जिससे लोगों को अधिक हानि भी न उठानी पड़े, और देश के कृपक-समाज में इन नवीन वैज्ञानिक कृषि-यन्त्रों का प्रचार भी यथोचित रीति से हो जावे।

अब तक जितने हलों का वर्णन हमने ऊपर किया है। उनके सम्बन्ध की उन तमाम ज्ञातव्य (जानने योग्य) बातों की भी चर्चा हमने साथ ही साथ कर दी है। परन्तु तो भी इन हलों के सम्बन्ध में बहुत सी उन बातों का जिक्र अभी तक नहीं किया जा सका है। जिनका जानना भी पाठकों के लिये तथा उन पुरुषों के लिये आवश्यक है। जो कि इन हलों का व्यवहार और प्रयोग-करना चाहते हैं।

इन एक परेथा तथा दो परेथा वाले मिट्टी-पलटने वाले हलों के वर्णन के साथ ही साथ हमने इसके खोलने तथा जोड़ने इत्यादि तमाम बातों का वर्णन कर दिया है। इसके साथ ही तमाम उन बातों का भी यथोचित रूप से वर्णन कर दिया है। कि जिन पर ध्यान रख कर जोतने से खेतों की उत्तम जुताई भी हो सकती

है। यदि उन तमाम बातों पर जो कि आदि से लेकर अन्त तक जुताइयों के सम्बन्ध में कही गई हैं। उचित तथा ठीक रीति से कार्य्यरूप में परिणित कर कर दी जायगीं, और उन पर ठीक रीति से हमारे देशवासी किसान अमल करने लगेंगे। तो देख लीजियेगा। केवल जुताइयों के ही कारण से भारतीय फ़सलों की उपज में आशातीत परिवर्तन हो जावेगा।

सब से मुख्य बात जो कि इन मिट्टी-पलटने वाले हलों के व्यवहार के सम्बन्ध में कहनी है। वह यह है कि देशी हलों से जो जुताइयां की जाती हैं। वह खेतों के किनारों से मेंड़ों के पास से की जाती हैं, और जोतते जोतते खेत की जुताई खेत के बीच में जाकर के समाप्त हो जाती है। ऐसी अवस्था में जब खेतों में हेंगा ( पटेला, सरावन ) चलाया जाता है, तो खेतों का धरातल ठीक उसी प्रकार से दिखाई देता है कि जिस प्रकार से तशतरी का धरातल दिखाई पड़ता है। खेतों के धरातल में यह बुराइयां देशी हलों के अनुचित रीति के प्रयोग से हो जाया करती हैं। जिससे खेत के बीच में धरातल की निचाई के कारण बरसात में पानी जमा हो जाया करता है, जिससे खेत के धरातल की मिट्टी में अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाया करते हैं, और इन खेतों में बोई जाने वाली फ़सलों के पौधे आरंभकाल से ही पीले-पीले दिखाई पड़ते हैं। जिससे जमने का अधिकांश भाग मिट्टी के रोग के कारण नष्ट हो जाता है। क्योंकि फ़सल के पौधे इन खेतों की मिट्टी से पर्य्याप्त मात्रा में ख़ूराक़ न ग्रहण कर सकने के

ही कारण से यथोचित मात्रा में पैदावार नहीं दे सकते हैं। इसी बुराई को इन नवीन मिट्टी-पलटने वाले हलों के आविष्कार ने अन्त कर दिया है।

इन मिट्टी-पलटने वाले हलों में वैसे तो अनेकों सुधार देशी हलों की अपेक्षा वर्तमानकालानुकूल हुये हैं। जिससे देशी हलों की अनेकों अपूर्णताओं का ज्ञान हमारे देश के किसानों तथा प्राचीन कृषि वैज्ञानिकों को हो गया है; इसी से वे इन हलों को व्यवहार में लाने के क़ायल हो गये हैं। सब से विशेष परिवर्तन इन मिट्टी पलटने वाले हलों में देशी हलों की अपेक्षा यह किया गया है कि मिट्टी-पलटने वाला ( Mould board ) का पुर्जा अधिक आविष्कृत करके लगा दिया गया है; जिससे इन हलों को उपयोगिता जुताई के लाभों की दृष्टि से सर्वमान्य होगई है।

जहां इन हलों के उचित व्यवहार से अनेकों लाभ हैं, वहां इन हलों के अनुचित प्रयोग तथा व्यवहार से सहस्रों हानियों की भी संभावना सदैव बनी रहती है। इसलिये इन हलों के प्रयोग तथा व्यवहार के समय किसानों को बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिये; नहीं तो अनुचित तथा कुरीति पूर्ण प्रथाओं तथा रीति रिवाजों से जुताई करने से अनेकों प्रकार की हानि हो जाने की संभावना है। जिससे फ़सलों की पैदावार ही पर अधिक हानिदायक प्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि खेत की मिट्टी पर भी बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। इस कारण इन हलों को ठीक रीति से ही प्रयोग तथा व्यवहार ( इस्तेमाल ) में लाना चाहिये, जिससे वे

तमाम हानिकारक बुराइयां न उत्पन्न हो सकें, जो कि कुरीतियों द्वारा प्रयोग तथा व्यवहार में लाने से हो सकती हैं।

मिट्टी-पलटने वाले हलों से भूल कर भी खेत के मेड़ों की ओर से जुताई न आरंभ करनी चाहिये। देशी हलों के व्यवहार से जुताई करने से खेत के धरातल की मिट्टी खेत के बाहर की ओर फिंका करती है। इसी से खेतों के किनारे का भाग ऊँचा और बीच का भाग नीचा होकर के 'तश्तरी' का रूप धारण कर लिया करता है। इसी हानि से बचाने के लिये मिट्टी-पलटने वाले नवीन हलों द्वारा खेत के बीच से जुताई आरंभ की जाती है। यदि खेत बड़ा होता है, तो खेत को कई टुकड़ों में अर्थात 'हलाइयों' के रूप में विभक्त करके तब इन हलों से खेतों की जुताइयां की जाती हैं। इतनी समानता होते हुये भी इन मिट्टी-पलटने वालों हलों से जब खेत छोटा होगा तो पहिला कूढ़ा खेत के बीचों-बीच काट कर आरंभ किया जायगा, नहीं तो हलाइयों के बीच से पहिला कूढ़' काटकर खेतों की जुताइयां आरंभ की जांयगी। इससे जुताइयों द्वारा खेत की मिट्टी खेत के बीच की तरफ़ अर्थात भीतर की तरफ़ पलटेगी, और खेत की हमवारी में किसी भी प्रकार का अन्तर उपस्थित नहीं हो सकेगा।

इसके पश्चात्—अर्थात् जब इस रीति से खेतों की जुताइयाँ मिट्टी पलटने वाले हलों से गर्मी तथा बरसात में कर दी जायगीं, और 'रबी' की तय्यारी के लिये आधी बरसात से ही अथवा बरसात के पश्चात् इन खेतों की जुताइयाँ देशी अथवा अन्य नवीन जुताई

के यन्त्रों से की जांयगी, तो खेत की समलता यानी हमवारी में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं आयेगा, और जो नालियां खेतों के मेंड़ों के सहारे पड़ा करेंगी। वह भी पाटा के देने से भठ कर खेत के धरातल के समान हो जांयगी। खेत की जुताइयों के लिये यही तरीक़ा ठीक है। जो कि साधारणतया सभी कृषि-फार्मों पर जहां कि इन हलों से जुताइयां की जाती हैं—वर्ता जाता है। जो लोग इन हलों का व्यवहार करना सीखना चाहें वह किसी सरकारी तथा ग़ैर सरकारी फार्मों पर जाकर के वहां के चतुर हलवाहों द्वारा इन हलो के प्रयोग तथा व्यवहार की तमाम बातें सीख सकते हैं। क्योंकि इन हलों की व्यावहारिक बातें खेतों में जाकर हल बैलों को जोड़कर चलाने से ही सीखी जा सकती हैं। किताबों के पढ़ने से केवल तरीक़े और रीति रिवाज़ों का ज्ञान ही प्राप्त हो सकता है। इन वैज्ञानिक बातों का जो कि सिद्धान्तरूप में बतलाई जा सकती हैं। खेतों पर व्यवहार करके ही उनका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

पाठकों की सुविधा के हेतु कि जिससे व्यावहारिक बातों की भी जानकारी प्राप्त करलें, ठीक रीति से जुताई की हुई—खेत की मिट्टी का एक चित्र आगे चित्रित किया जाता है।

चित्र में चित्रित खेत की जुताई मिट्टी-पलटने वाले 'मोल्ड बोर्ड' हल द्वारा खेत के बीच से आरंभ की गई है। जिसमें यह दिखलाया गया है। कि इन मिट्टी-पलटनेवाले हलों से खेत के भीतर की ओर मिट्टी पलटती है। जिसके कारण खेत का धरातल बीच

में नीचा नहीं हो सकता। इससे खेत के धरातल के चौरसपने में

चित्र सं० ९२
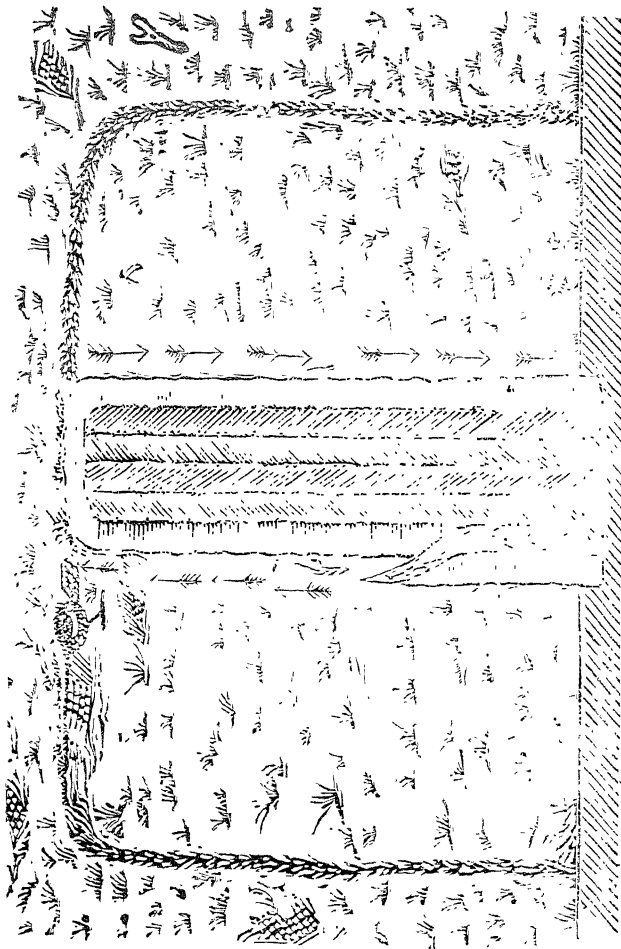
जुताई की ठीक रीति मिट्टी खेत के भीतर को पलटी है

कोई विशेष अन्तर नहीं उपस्थित होता है। इसी जुताई को अंगरेजी

में [Center to side ploughing] नाम दिया गया है। जिसे देशी भाषा में मध्य से मेंड की जुताई कहते हैं। तमाम मिट्टी पलटने वाले एक परेथा वाले तथा दो परेथा वाले हलों से इस नाम की जुताई की जा सकती है। केवल "टर्न रैस्ट प्लाऊ" की जुताई को छोड़कर। इस टर्न रैस्ट की कुछ बातों का जिक्र हम आगे प्रसंगानुसार करेंगे। यहां पर हम पाठकों की जानकारी के हेतु उस जुताई का भी एक चित्र चित्रित किये देते हैं जिसे 'मेंड से मध्य" की जुताई [ side to center ploughing ] कहते हैं। जैसा कि हमारे देशी हलों से हमारे देश के हलवाह प्रायः हमारे खेतों की जुताइयां किया करते हैं। मिट्टी-पलटने वाले हलों से इस रीति से जुताई न करनी चाहिये। क्योंकि उन हलों से जुताई की दृष्टि से यह जुताई का "गलत रास्ता" है।

मिट्टी पलटने वाले हलों द्वारा अग्र चित्रित में मेंड से मध्य की ( Side to Center Ploughing ) जुताई की गई है। इन हलों से जुताई करने का यह तरीक़ा गलत है। इस तरीक़े से खेत की मिट्टी बाहर की ओर—अर्थात खेत के मेड़ की ओर फिंकती है।

इससे खेत का बीच वाला भाग नीचा और मेंड़ वाला भाग ऊँचा पड़ जाता है। जो कि खेत के धरातल को बिगाड़ देता है। और खेत की मिट्टी में पानी के जमा रहने से अनेकों प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं। जो कि फ़सलों की उपज को बहुत ही कम कर के वनस्पतियों के आकार-प्रकार में भी अनेकों प्रकार के विकार उत्पन्न कर देते हैं; जिस से इन खेतों में बोई जाने वाली फसलें

भी रोगी हो जाती हैं। इस कारण इन फ़सलों के बीज भी रोगी

चित्र सं० १२
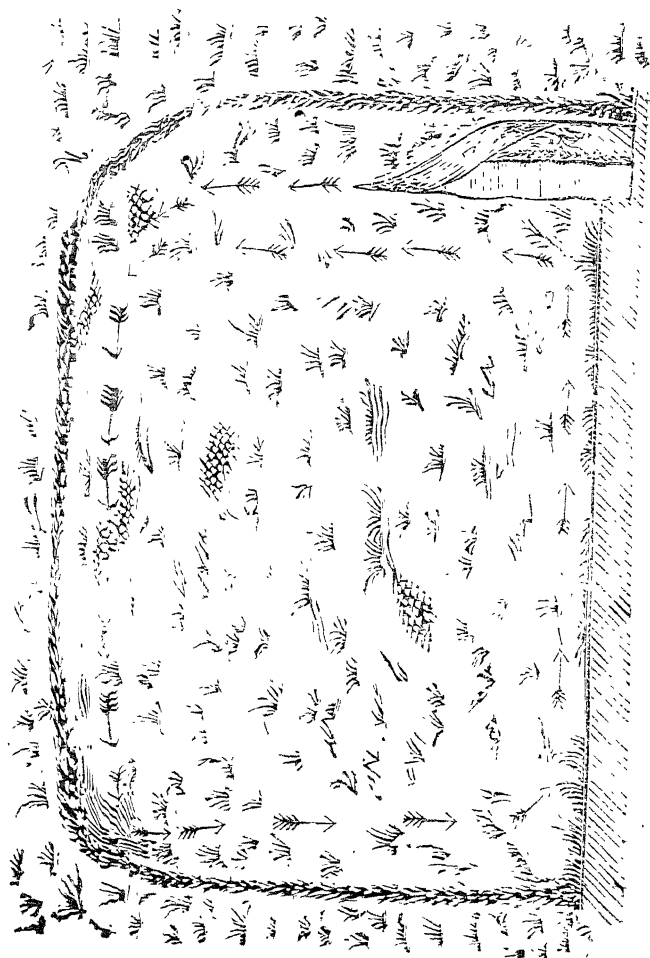
गलत रास्ता मिट्टी बाहरी तरफ़ को पकड़ती है।

हो जाया करते हैं, और जब यह बीज बोये जाते हैं; तो अगले वर्ष की उस फ़सल में भी यह रोग प्रायः उत्पन्न हो जाया करता है। कि जिस फ़सल में गत वर्ष यह रोग लग चुका था। इसलिये इन हलों का व्यवहार सदैव ठीक और उचित रीति से ही पाठकों को तथा अन्य कृषि-व्यवसाइयों को करना चाहिये। जिससे लाभ ही लाभ हो। हानि होने की कभी नौबत ही न आवे। इस के सिवाय जोतते समय खेतों में हलों को भली प्रकार से जाँच लेना चाहिये। कि उनके सारे भाग ठीक प्रकार से फ़िट हैं; या कि नहीं कोई 'बोल्टू' वग़ैरह ढीला तो नहीं है। नहीं तो जोतते समय किसी प्रकार की ख़राबी उत्पन्न हो जावे।

जिन खेतों का धरातल समतल न हो, उन खेतों के धरातल के समतल करने में भी यह मिट्टी-पलटनेवाले हल बहुत ही उपयुक्त तथा लाभदायक जंचे हैं। इन सब हलों में 'टर्नरैस्ट' हल खेतों के सम-तल करने में बहुत ही उत्तम जंचा है। इसलिये जिन खेतों का धरातल वाला भाग जिस तरफ़ नीचा है। उसी ओर से खेतों की जुताइयां करना चाहिये। क्योंकि जब जुताई खेत के नीचे वाले भाग से की जायगी तो इस "टर्न रैस्ट" हल से जो मिट्टी खुदेगी और पलटेगी, वह सब नीचे वाले भाग की ही तरफ़ पलटेगी। जिसका फल यह होगा कि दो ही तीन उलटन-पलटन में खेत हमवार हो जायगा। इस प्रकार से जिन खेतों का धरातल समतल न हो उन खेतों में इन हलों से उसी ओर से जुताई करना चाहिये। कि जिस ओर से खेत का धरातल नीचा हो; इसी नीचे के भाग की ओर से

खेतों की जुताई करके मिट्टी को भी नीचले भाग की ही ओर पलटना चाहिये। इस बात के वर्णन से पाठक समुदाय को इस बात का भी पता चल गया होगा। कि यह मिट्टी-पलटने वाले हल केवल खेतों की उत्तम तथा लाभकारी जुताई ही नहीं कर सकते, बल्कि जुताई के साथ ही साथ खेतों के ऊँचे नीचे धरातल के भी समतल करने में यह हल बड़े काम के हैं। इसलिये इन हलों का प्रयोग तथा व्यवहार प्रत्येक दशा में भारतीय किसानों के लिये लाभकारी ही है।

हमने अपनी तथा वैज्ञानिकों की अनुमति के अनुसार सारे मिट्टी-पलटने वाले नवीन, विदेशी वैज्ञानिक पद्धति से तय्यार किये हुये, हलों का आवश्यक वर्णन पाठकों की सुविधा के हेतु इस प्रस्तुत पुस्तक में कर दिया है। हलों के विशेष वर्णन को जानने के लिये अब पाठकों को अन्यत्र भटकने की कोई आवश्यकता नहीं है। सारे मिट्टी पलटने वाले उन हलों का आवश्यक वर्णन जो कि देश भारत के किसानों के लिये लाभदायक हैं। इस किताब में सविस्तार दिया है। इन हलों से गरमी तथा बरसात की जुताइयां की जा सकती हैं। इन हलों से इस महीने में जुताई करने से विशेष लाभ है। क्योंकि यह सारे मिट्टी-पलटने वाले हल खेत की मिट्टी को खोद कर पलट देने के सिवाय उन खर-पतवारों को भी नीचे दबाकर सड़ा दिया करते हैं। जो कि वर्षा के आरम्भ काल में हमारे खेतों में उग आया करते हैं, और हमारी फ़सलों की खूराक को हमारे खेतों से ग्रहण करके खा लिया करते हैं। जिससे हमारी फ़सलों के

लिये खूराक कम हो जाया करती है। जिसके कारण वह उत्तम श्रेणी की पैदावार कभी दे ही नहीं सकते। अतएव मेरा तो यही कहना है। कि भारतवासियों को जिस प्रकार से हो सके, उसी प्रकार से इन हलों का प्रयोग तथा व्यवहार करना चाहिये।

आजकल जितनी कृषि सम्बन्धी मशीनें (यन्त्र) कृषि-कर्म्म की व्यावहारिक बातों में व्यवहृत हो रही हैं। उनके प्रयोग तथा व्यवहार से दो प्रकार का लाभ पहुँचता है। एक तो उन मशीनों से सीधे लाभ पहुँचता है कि जिनके व्यवहार से ज़मीन की उर्वरा-शक्ति ( natural fertility ) बढ़ जाया करती है, और फ़सलों द्वारा उपज के रूप में लाभ हो सकता है। दूसरे प्रकार के वे कृषि-यन्त्र हैं। जिनके व्यवहार में लाने से समय तथा मज़दूरों की बचत होती है। ऐसी दशा में इन मशीनों ( यन्त्रों ) के व्यवहार से समय भी कम लगता है, और मज़दूरी भी कम लगती है। जिससे लाभ यह होता है। कि थोड़े समय में थोड़े ही मज़दूरी द्वारा अधिक काम हो जाया करता है। इससे अर्थ-वैज्ञानिकों के मतानुसार बहुत कुछ धन बचा लिया जा सकता है। इस पद्धति के अनुसरण से इन कृषि मशीनों का व्यवहार करके बहुत से देशों के किसानों ने अपनी गिरी हुई आर्थिकावस्था का पुनः उद्धार कर लिया है, और आज वह सभ्य देश के किसानों में अपनी गणना करा रहे हैं। तो क्या कभी भी कोई कृषि-विज्ञान वेत्ता यह कहने का दावा कर सकता है कि इन कृषि-मशीनों के व्यवहार से भारत को हानि होगी ?

धनदायक अथवा किसी भी फ़सल के उत्तम बीजों को ही बोकर अधिक पैदावार हासिल करने को चेष्टा करना भारी भूल है। क्योंकि जब तक खेतों की जुताई इत्यादि आवश्यक कर्म्मों को ठीक रीति से भली भांति करके खेतों को बुवाई के योग्य ठीक न कर लिया जायगा। तब तक उन खेतों में चाहे कितना ही चुना हुआ तथा वैज्ञानिक प्रथाओं से जाँचा हुआ उत्तम श्रेणी का उन्नति प्राप्त बीज बो दिया जाये; कभी भी इस उत्तम बीज के बो देने से ही उत्तम श्रेणी की अधिक पैदावार प्राप्त नहीं की जा सकती। उत्तम छँटे हुये बीजों से उत्तम श्रेणी की अधिक से अधिक पैदा-वार प्राप्त करने का सबसे उत्तम तरीक़ा यही है। कि उन्नति प्राप्त यन्त्रों द्वारा खेतों की तैयारी भी बीजों के बोने के पहिले कर ली जाय, नहीं तो यथेष्ट फल प्राप्त न होगा। निस्सन्देह यह बात सत्य और ठीक है। कि यदि खेतों की साधारण जुताइयाँ अपने देशी हलों से करके उत्तम श्रेणी का चुना हुआ छँटा बीज बो दिया जाय, तो अवश्य ही पैदावार अधिक मिल जायगी। जिस प्रकार से यह सिद्धान्त सत्य और ठीक है। उसी प्रकार से इस सिद्धान्त की भी सत्यता निर्विवाद है कि उत्तम प्राप्त हलों से, उन्नति प्राप्त रीति रिवाजों से, यदि खेतों की जुताइयां की जाँय, और उन्नति प्राप्त चुने हुये छँटे बीज बोये जावें, तो पैदावार अधिक मात्रा में मिलेगी। क्योंकि इसके अनेकों तजुरबे देश के राजकीय तथा प्रान्तीय कृषि-फार्मों पर हो चुके हैं। उन्हीं में से एक तजुर्बा नीचे पाठकों की जानकारी के हेतु लिखा जाता है।

ज़िले कानपूर में देशी गेहूँ की साधारण उपज साधारणतया देशी हलों की साधारण जुताई के किये जाने पर सोलह मन प्रति एकड़ हुआ करती है। यदि इन्हीं सब बातों के रहते हुये किसान लोग उन्नति प्राप्त छँटे हुये पूसा नं० १२ के गेहुँओं को बो दिया करते हैं। तो उपज बढ़कर १९ से २० मन के लगभग प्रति एकड़ पहुंच जाया करती है। इसी ज़िले कानपूर के सरकारी कृषि फ़ार्मों पर केवल उन्नति प्राप्त हलों द्वारा खेतों की जुताई करके और खेतों की तय्यारी भी उन्नति प्राप्त यन्त्रों से करके, बिना किसी विशेष खाद के केवल उत्तम श्रेणी की जुताई ही करके गेहूं पूसा नं० १२ का बीज अधिक क्षेत्रफल में बोया गया था। जिसके फल स्वरूप प्रति एकड़ २५ मन से ३० मन तक की उपज प्राप्त हुई थी। पाठकगण! अपनी आंखों से इन उपजों की तुलना करके स्वयं विचार कर सकते हैं। कि कितना अंतर है। सरकारी खेतों की जुताइयां उन्हीं हलों के द्वारा गरमी और बरसात में की गई थी कि जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, और जिसको भारत के सर्वसाधारण कृषक खरीदकर अपने व्यवहार तथा प्रयोग में ला सकते हैं।

कानपूर के काश्तकारों के उन खेतों में जो कि घर (आबादी) के आस-पास हैं। जिनमें मल-मूत्र किया जाता है, और खाद भी सरलतापूर्वक अधिक से अधिक मात्रा में डाली गई थी। ऐसे गौहानी खेतों में पूसा नं० १२ के गेहूं की उपज प्रति एकड़ सत्ताईस मन तक हुई थी। ऐसी ही दशा में कानपूर सरकारी फार्म के उन खेतों में जिनमें

की गन्ना की फ़सल के पश्चात् अधिक से अधिक खाद देकर के गेहूं पूसा नं० १२ बोया गया था, तो ३६ मन फ़ी एकड़ पैदावार हुई थी। इस से साफ़ प्रकट है कि यदि सरकारी फार्मों की भांति किसान-वर्ग भी खेतों की जुताइयां विदेशी कृषकों की भांति उन्नति प्राप्त यन्त्रों से कर के उत्तम श्रेणी के छँटे हुये उन्नति प्राप्त बीजों को बो करके उत्तम पैदवार लेने की उत्कंठा में निमग्न हो जावें। तो भारतीय किसानों की सारी आर्थिक दरिद्रता दूर हो जावे, और इस देश के किसान भी अन्य देश के किसानों की भाँति मालामाल होकर के अमेरिकन और योरोपीय किसानों की भांति मृत्यु लोक में ही स्वर्ग सुखको भोगने लगें।

सब से अधिक पैदावार जुताई और उत्तम बीजों के बोने से जो कानपूर सरकारी फार्म पर पाई गई है। वह ४२ मन प्रति एकड़ थी। इससे स्पष्ट है कि फ़सलों द्वारा उत्तम श्रेणी की पैदावार हासिल करने के लिये सब से आवश्यक काम खेतों की जुताई करना है। इससे यह सिद्धान्त सर्व मान्य हो गया है कि:—

"बिना उन्नति प्राप्त हलों द्वारा उत्तम श्रेणी की जुताई किये हुये, चाहे भौतिक और रासायनिक खादों के द्वारा खेतों को क्यों न खदीला बना दिया जाय, और उसके पश्चात् छँटे हुये उत्तम श्रेणी के उन्नति प्राप्त बीज ही क्यों न बो दिये जांय।"

कभी भी उत्तम श्रेणी की अधिक से अधिक पैदावार खेतों से नहीं प्राप्त की जा सकती।

---

# बरसाती जुताई के नवीन यन्त्र

गरमी की जुताइयों के तथा बरसाती जुताइयों के उन्नति प्राप्त वैज्ञानिक हलों का समयानुसार उचित विवेचन हमने पाठकों को सुना दिया। अब हम पाठकों को अथवा कृषि व्यवसायी किसानों को उन कुछ वैज्ञानिक यंत्रों का हाल बताना चाहते हैं। जो कि बरसाती जुताइयों के समय खेतों को जोतने के लिये प्रयोग तथा व्यवहार में लाये जाते हैं। इन वैज्ञानिक यन्त्रों का प्रचार तो क्या नामोनिशान तक हमारे देश के किसानों में अभी तक प्रचलित नहीं हो पाया है। इसमें तो सन्देह नहीं कि भारत के लिये ये नवीन जुताई के यन्त्र विलकुल ही नये हैं। जिनके देखने मात्र से ही भारतीय किसानों के बीच एक नूतन तहलका मच सकता है। परन्तु इतने पर भी अनेकों दृष्टियों से विचार पूर्वक विवेचना करके यह फल निकाला गया है। कि भारत के लिये ये नवीन बरसाती कृषि यन्त्र अत्यन्त ही लाभदायक है। ये सारे कृषि यन्त्र भारत के केवल बड़े बड़े किसानों अथवा उन जमीदारों के ही लिये नहीं लाभदायक हैं, जो कि अधिक क्षेत्रफल में 'सीर' किया करते हैं। बल्कि ये नवीन बरसाती कृषि-यन्त्र भारत के सर्व-साधारण अर्थात आला और

अदना तथा जमींदार राजा महाराजाओं तक की सीर के लिये बड़े ही उपयोगी हैं। क्योंकि इन हलों से केवल खेतों की जुताइयां ही नहीं की जा सकती; बल्कि वे अन्यान्य कार्य्य भी इन नवीन बरसाती जुताइयों के यन्त्रों द्वारा पूरे किये जा सकते हैं।

जो कि बरसाती जुताइयों के लिये आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। क्योंकि इन यन्त्रों में लोहे के हलों की भाँति सब यन्त्रों में हरीस नहीं हुआ करती है—अर्थात् इस प्रकार के कुछ बरसाती जुताई के कृषि यन्त्र इस ढंग से बनाये गये हैं। कि उनके द्वारा भारत की सभी जाति और धर्म्म के आला और अदना तथा ज़मीदारों के सिरवाह अपने खेतों की जुताई कर सकते हैं। वह विशेषता कि जिसके कारण सभी जाति व धर्म्म के किसान इन हलों से जुताई कर सकते हैं, यह है। कि इस प्रकार के नवीन बरसाती जुताई के यन्त्रों में परेथा ( handles ) नहीं पाया जाता है। इसी विशेषता के कारण भारत के तमाम ब्राह्मण और क्षत्री अथवा तमाम वे हिन्दू जातियाँ जो कि हल की मुठिया ग्रहण करना अधर्म्म समझते हैं, और किसानी के अन्यान्य कर्म्मों को किया करते हैं। बिला किसी धार्म्मिक संकट के इन हलों से अपने खेतों की बरसाती जुताइयाँ कर सकते हैं। क्योंकि जब भारत सरकार ने यह साफ़ साफ़ कह दिया है। कि भारत के हिन्दू आला किसानों में ब्राह्मण, क्षत्री और कायस्थ ऐसी जातियाँ हैं। जो कि अपने हाथ से हल ग्रहण करना अधर्म्म समझती हैं, और इसी सत्यानाशी धार्मिक संकट के दबाव से

आजकल के मौजूदा ज़माने में यह जातियाँ संसार की समग्र जातियों से हेय और निकृष्ट समझी जा रही हैं, और इसी धार्मिक बंधन के कारण इनका सांसारिक जीवन भी दुखःमय तथा संकटापन्न हो गया है।

समझ में नहीं आता कि जिन ब्राह्मणों, क्षत्रियों, कायस्थों तथा अन्य हिन्दू धर्म्मावलम्बियों ने खेती के तमाम कार्य्यों को जैसे, बुवाई, कटाई, सिंचाई तथा खाद डालना, और फ़सलों का निराना, गोड़ना, हेंगा चलाना आदि कर्म्मों को अपने हाथों से करना तो धर्म्म समझते हैं और आज कल के ज़माने में अधिकांश ब्राह्मण, क्षत्री, कायस्थ खेती के सारे अन्यान्य कर्म्मों को ( जुताई को छोड़कर ) अपने कुटुम्ब के सहयोग से अर्थात स्त्री बच्चों की मदद से कर रहे हैं। पर केवल हल के ही जोतने में धर्म्म का क्या भयंकर पचड़ा ठुंका हुआ है। कि जिसके ग्रहण कर लेने से ही हिन्दू जाति की श्रेष्ट, जातियां ( ब्राह्मण क्षत्री. कायस्थ ) धर्म्मच्युत होकर रसातल को चली जांयगी। ऐसे भ्रमपूर्ण धार्मिक विश्वासों के ही कारण वर्तमानकाल में यह जातियां तुच्छ समझी जाने लगी हैं, और उदर पूर्ति के लिये दाने दाने को तरस रही हैं, और जगह जगह ठोकरें खाकर जीवन व्यतीत कर रही हैं।

हम उन धार्मिकाचार्य्य कहाने वाले धर्मिष्ट हिन्दुओं से पूछना चाहते हैं। कि क्या आपने हिन्दू धर्म्म का ठेका ले रक्खा है? पानी पांड़े बन कर स्टेशनों पर पानी पिलाना—तथा दफ़्तरों की

दरबानी, चपरासगीरी, पल्ला कुली का काम करना तो आप अपनी शान के खिलाफ नहीं समझते। इतना ही क्यों स्टेशनों पर कुलियों के काम को तथा तीर्थ-स्थानों में पंडों की दलाली करना हिन्दू विधवाओं, अनाथ बालिकाओं, गायों को चांडालों (श्वपच) के हाथों बेचकर अपना जीवन व्यतीत करना तो आप अधर्म नहीं समझते। केवल हल की मुठिया पकड़ लेने ही में आपका धर्म्म आपको छोड़ कर, उड़कर पेड़ की डाल पर जा बैठता है, और आप अधर्मी हो जाते हैं। हम कोई धर्म शास्त्र के व्याख्याता और पंडित नहीं हैं। तथापि हमने भी धर्म धुरंधरों से यही सुना है कि—

"ब्राह्मणो को हल ग्रहण करके जीविका उपार्जन करना और इससे जीवन व्यतीत करना शास्त्रानुसार अधर्म्म है।" यह शास्त्रीय ऋचायें उस समय की हैं। जब कि ब्राह्मणो का यही कर्तव्य था कि वह विद्या को पढें और पढ़ावें। दान लें तथा दें, और यज्ञ करें और करावें। अब वह ज़माना नहीं रहा। संसार ने पलटा खाया है। संसार में प्रति क्षण घोर नूतन परिवर्तन हो रहे हैं। कलि का प्रचंड आतंक जमता चला जा रहा है। यों भी धार्मिक, दार्शनिक या तो आज हिमालय की कन्दराओं में ही योग-साधन अथवा–आत्म चिंतन करते हुये मिलेंगे। अन्यथा यदि किसी देश में सांसारिक व्यवहार में फँसे हुये पाये जावेंगे, तो वह सब वैज्ञानिक लिबास से रंगे हुये होंगे। कितने ही स्वदेशव्रत-धारी पुरुषों तक ने इस वैज्ञानिक युग में वैज्ञानिक विभूतियों के

गुलामी अर्थात् हलवाही करने के लिये वाध्य नहीं है। अतएव, कहने का सारांश यह है कि अब मजदूरों का मिलना सर्व साधारण के लिये दुष्कर होगया है। मज़दूरों को या तो अब अधिक मज़दूरी दीजिये, तो उनसे काम लीजिये, या जैसे आप अपनी खेती और गृहस्थी का सारा अन्य कार्य्य किया करते हैं। उसी प्रकार हल भी जोत लीजिये। वह समय अब दूर नहीं है। जब कि आपको भी विदेशी आला कौमों के किसानों की भाँति मज़दूरों का मिलना कठिन ही नहीं अनिवार्य्य रूप से असंभव हो जायगा। तो आप झखमार कर इन मशीनों को काम में लायेंगे, और यदि पैसा पास में होगा तो मज़दूरों को अधिक मज़दूरी देकर उन्हीं से इन मशीनों द्वारा काम लेंगे। वरना अपने हाथों से ही इन मशीनों को प्रयोग और व्यवहार में लायेंगे। इसलिये ग़नीमत है कि अभी से इन बिना मुठिया ( Handles ) वाले कृषि यन्त्रों से आप अपने खेतों को जोतना आरंभ कर दें। क्योंकि यह जुताई के यन्त्र उसी प्रकार से खेतों में चलाये जा सकते हैं। जिस प्रकार से पटेला ( हेंगा, सरावन ) इत्यादि यन्त्र क्योंकि इसमें सिर्फ़ बैलों को ही चलाना पड़ता है। यन्त्र के किसी भी भाग को हाथ से नहीं पकड़ना पड़ता।

बरसाती जुताइयों के इन नवीन वैज्ञानिक कृषि यन्त्रों को जो कि देशी हल के ही सदृश बल्कि उससे अच्छा काम करते हैं। वैज्ञानिकों ने अंगरेजी भाषा में इन यन्त्रों का नाम 'हल' शब्द से ही मिलता-जुलता हुआ "हैरो" ( Harrow ) नाम दे रक्खा है।

बिना पढ़े लिखे साधारण किसान अथवा मज़दूर इन यन्त्रों को 'कांटा' अथवा 'गरवर' इत्यादि नामों से पुकारा करते हैं। यह 'हैरो' अर्थात कांटे कई एक आकार-प्रकार के होते हैं, जिनका कि नाम भी भिन्न २ प्रकार का है, और यह भिन्न भिन्न प्रकार के कामों में आया करते हैं। हम पहिले ही कहीं इस पुस्तक में लिख आये हैं। कि खड़ी फ़सलों में निकाई-गुड़ाई करना भी एक प्रकार की जुताई ही करना है। इस कारण ये बरसाती जुताई के उपयुक्त तथा लाभदायक 'हैरो' दोनों ही कामों में व्यवहृत किये जाते हैं। अर्थात इन 'हैरो' से बरसात में खेतों की जुताइयां भी की जातीहैं। और ख़रीफ़ की फ़सलों की गुड़ाई भी। परन्तु हम निकाई-गुड़ाई के सम्बन्ध की विशेष चर्चा न कर के इन 'हैरो' से जुताई की ही अधिक चर्चा पाठकों को प्रस्तुत पुस्तक में प्रसंगानुसार सुनाया करूंगा। फिर कभी अवसर पड़ने पर इन 'हैरो' नामी यंत्रों का अधिक विस्तार रूप से वर्णन करूंगा। क्योंकि यह 'हैरो' जुताई सम्बन्धी सभी प्रकार के कामों के लिये बड़े ही लाभदायक सिद्ध हुये हैं। चाहे वह ख़ाली खेतों में जुताई का काम करें—अथवा खड़ी फ़सलों में निकाई-गुड़ाई का काम इन से लिया जाय।

पहिली वर्षा के पश्चात् जब कि खेतों को मिट्टी पलटने वाले हलों से जोत दिया जाता है। जिससे वर्षा ऋतु में उगे हुये सारे खर-पतवार समूल उखड़ कर नीचे दबा दिये जाते हैं, और पड़े रहते हैं। यदि इन्हें पर्य्याप्त मात्रा में पानी मिल जाता है। तब तो यह सड़कर हरी खाद का काम दे जाया करते हैं। वरन् जब कभी

यह पूर्णतः सड़गल नहीं जाते तो यह खेतों में दीमकों के बढ़ाने में सहायक हो जाते हैं। इसलिये बरसात के आरंभकाल में एक बार मिट्टी पलटने वाले हलों से खेतों को जोतकर उसके पश्चात् तमाम बरसात की जुताइयां यदि इन 'हैरो" नामी कृषि-यन्त्रों से की जायं तो हर हालत में ही लाभ है। क्योंकि वर्षाकाल आरंभ हो जाने पर खेत अधिकतर गीले रहते हैं। ऐसी हालत में इन खेतों की जुताइयां भूले से भी मिट्टी-पलटने वाले हलों से नहीं करना चाहिये। गीले खेतों की जुताइयां मिट्टी-पलटने वाले हलों से कर देने से अथवा देशी हलों के द्वारा जुताइयां कर देने से खेती में ढेले पड़ जाया करते हैं। जिससे खेत के धरातल की मिट्टी ख़राब हो जाया करती है, और इन खेतों में उत्तम श्रेणी की धनदायक फ़सलें नहीं उगाई जा सकतीं। क्योंकि ढेलहे अर्थात जिन खेतों में ढेले पड़े हुये हैं। उनमें फ़सलों की पैदावार अच्छी नहीं हो सकती। इसलिये वर्षाकाल की पहिली वर्षा के पश्चात् पहिली जुताई मिट्टी पलटने वाले हलों से करके, तत्पश्चात् जितना शीघ्र हो सके उतनी ही जल्दी खेतों में "हैरो" चलाना आरंभ कर देना चाहिये।

इससे लाभ यह होगा कि वे सारे खर-पतवार जो कि समूल उखड़-पखड़ कर खेत के धरातल तथा गर्भतल में पड़े हुये हैं। इन हैरो के व्यवहार तथा प्रयोग से शीघ्र ही इकट्ठे कर लिये जावेंगे। जिससे खेत इन फ़सलों के हानिदायक खर-पतवारों से साफ़ हो जायगा।

अधिकतर हमारे देशवासी किसान खरपतवारों को खेतों से साफ़ करने में असावधानी किया करते हैं। जिससे अनेकों प्रकार की हानि भी प्रति वर्ष उठाया करते हैं। इसलिये वर्षाकाल की पहिली वर्षा के ही पश्चात् मिट्टी पलटने वाले किसी भी हल से खेतों को एक बार जोत करके जितनी जल्दी हो सके उतनी ही जल्दी तमाम 'रबी' फ़सल के बोये जाने वाले खेतों में अग्र चित्रित हैरो चलाना आरंभ कर देना चाहिये।

इस हैरो का नाम "मदरासी हैरो" है। यह हैरो हमारे देश के सर्वसाधारण किसानों के लिये बहुत ही उपयुक्त है। क्योंकि इसका दाम तमाम अन्यान्य क़िस्म के "हैरो" से बहुत ही कम है। इस-लिये यह सस्ता है। दूसरे इसका नाम ही "मदरासी हैरो" है जिससे साफ़ प्रकट है। कि 'मेस्टन-हल' की भाँति यह हैरो भी किसी मदरासी का बनाया हुआ है। इसलिये इस स्वदेशी हैरो का व्यवहार और प्रयोग करने में किसी भी भारतवासी को हिचकना नहीं चाहिये। इस मदरासी हैरो में परेथा ( Handles ) वाला भाग अन्य हैरो की भाँति नहीं है। इस कारण से इसे तमाम आला व अदना क़िस्म के भारतीय किसान चाहे वह ब्राह्मण हों चाहे क्षत्री और कायस्थ बिना किसी धर्म्म संकट के इसे अपने व्यवहार में ला सकते हैं। क्योंकि इस हैरो का नम्बर (१) वाला भाग जिसका कि नाम "कड़ा" है। बैलों के जोड़ने के काम में आता है, इस कड़े में मिट्टी-पलटने वाले छोटी हरीस वाले हलों की जंजीर अटका करके बैलों के जुये में कड़े को लगाकर के इस यंत्र

चित्र सं० १३
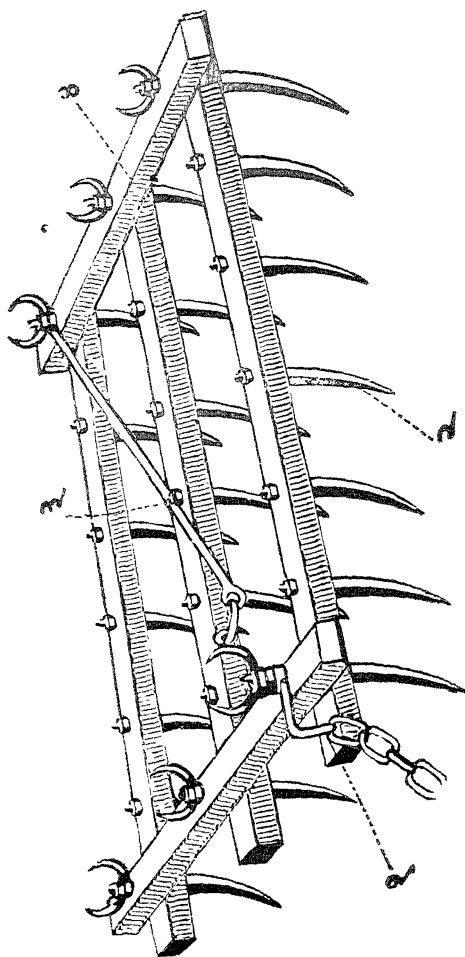
मद्रासी हैरो

इस चित्र के भाग—[ १ ] कड़ा [ २ ] लोहिया खूँटी [ ३ ] छड़ [ ४ ] चौखट

( हैरो ) को ठीक कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् हैरो के भाग नं० २ जिन्हें कि लोहिया खूंटी कहते हैं को देख लेना चाहिये कि यह ठीक रीति से कसी हुई हैं या कि नहीं। क्योंकि यही खूटियाँ खेतों के गर्भतल तक में घुसकर चलेंगी और खेत की मिट्टी को भुराभुरा बनायेंगी। यदि यह खूटियां ठीक रीति से फिट न हों—अथवा इस "हैरो" के भाग नं० ४ को जिसका कि नाम चौखट है। जो कि लकड़ी का बना हुआ है। यदि इसे भी चौड़ा या सकरा करना हो तो इस 'हैरो' के भाग नं०३ द्वारा जिसका कि नाम छड़ है। इस हैरो को चौड़ा अथवा सकरा कर के इसे भली प्रकार से ठीक कर लेना चाहिये। तब जब सब मामला ठीक हो जावे, और यह हैरो एक जोड़ी बैल के साथ जुत जावे तो हलवाहे को चाहिये कि पटेले ( हेंगा, सरावन ) की भांति इसके लकड़ी वाले चौखटे पर खड़ा होकर के बैलों को हांकना आरंभ कर दे। इस प्रकार से तमाम खेत की मिट्टी को भुरभुरा कर दिया करे, और साथ ही साथ जो खर-पतवार खेत के धरातल पर इस जुताई से जमा हो जायं। उन्हें जगह जगह पर हैरो से उतर कर और हैरो को उठाकर के हाथ से खेत के बाहर कर दे। इस प्रकार से इस हैरो के व्यवहार तथा प्रयोग से खेत की घास-फूस और खर-पतवार को निकाल बाहर फेंकना चाहिये। या तो इन घास फूसों को धोकर के करबी (कुट्टी) काट कर के पशुओं को खिला देना चाहिये। अन्यथा इन्हें खाद के गड्ढों में डाल कर सड़ाकर खाद बना डालना चाहिये।

"मद्रासी हैरो" का चित्र आगे चित्रित करके उसको व्यवहार में लाने का भी सारा तरीक़ा उसी के साथ वर्णन कर दिया गया है। इन सारे क़िस्म के 'हैरो' का प्रयोग और व्यवहार इसीलिये वर्षा काल में किया जाता है। कि जिससे खेत में उगी हुई हरेक प्रकार की घास-फूस तथा खर-पतवार समूल उखड़-पखड़ कर खेत से निर्मूल हो जावें। जिससे हमारी फ़सलों के पौधों के लिये ख़ूराक पर्य्याप्त मात्रा में जमा रह सके। उसे ये खर-पतवार नामी पौधे खा न जांय। दूसरी बात 'हैरो' के व्यवहार के सम्बन्ध में यह है कि जब वर्षारम्भ हो जाती है, और खेत के धरातल पर पानी पड़ जाता है। तो खेत के धरातल की ऊपरी सतह पर पपढी पड़ जाती है। जिससे वायु का संचार भली प्रकार से भूमि के भीतर अर्थात खेत के गर्भतल तथा धरातल मे नहीं हो पाता है। जिसका परिणाम यह होता है कि खेत में पौधों की नत्रेत (nitrate) सम्बन्धी ख़ूराक के तय्यार करने वाले जीवाणु अपना काम ठीक प्रकार से नहीं कर सकते हैं। अतएव, खेत के धरातल तथा गर्भतल में वायु का प्रवेश करा करके उसका संचार कराना अत्यावश्यक है। खेत के धरातल की पपड़ी को प्रत्येक वर्षा के पश्चात् इन 'हैरो' से तोड़ देना चाहिये, और साथ ही घास-फूस अलग करके ज़मीन के मिट्टी के कणो को ख़ूब बारीक़ और भुरभुरा रखना चाहिये। जिससे खेत के धरातल और गर्भतल में वायु के संचार के सिवाय वर्षा ऋतु का पानी भी भली प्रकार से रिझ सके।

इस प्रकार से जब बरसात में इस 'हैरो' नामी कृषि-यन्त्र का प्रयोग और व्यवहार करके भारतीय कृषक-समुदाय 'रबी' बोई जाने वाली फ़सल के खेतों की जुताई करना आरंभ कर देगा। तो केवल जुताई ही के कारण खेतों में पौधों के लिये इतनी खूराक़ तय्यार हो जायेगी। कि फ़सलों की उपज को बढ़ाने के लिये किसी विशेष प्रकार के खाद डालने की कुछ आवश्यकता ही न पड़ेगी। केवल उत्तम श्रेणी की जुताई ही से फ़सलों द्वारा उत्तम श्रेणी की पैदावार प्राप्त की जा सकेगी। अब हम पाठकों को एक दूसरे "हैरो" का चित्र दिखा करके उसका भी कुछ परिचय देंगे।

प्रायः बरसात की जुताइयों में देशी हलों से अथवा अन्य हलों से जुताई कर देने से खेतों में डले (ढेले) पड़ जाया करते हैं और इन ढेलों को फोड़ना 'रबी' के खेतों की तय्यारी के लिये बहुत ही आवश्यक हो जाता है। क्योंकि डलेदार खेतों में 'रबी' की धन-दायक उत्तम फ़सलें बोई ही नहीं जा सकतीं। यदि बो भी दी जाती हैं, तो पैदावार उन फ़सलों से कभी भी उत्तम श्रेणी की प्राप्त नहीं की जा सकती। इन डलों के फोड़ने अथवा तोलने के लिये किसान समुदाय 'पटेला' (हेंगा, सरावन) की शरण लिया करते हैं जिसका फल यह होता है कि डले पटेले के चलाने से खेत के धरातल तथा गर्भतल में दब जाते हैं, टूटते-फूटते नहीं है। ऐसी दशा में पटेलों से किसी प्रकार का भी लाभ इन डलों के फोड़ने में नहीं पहुँच सकता। इसलिये बरसाती जुताइयों के समय इस हैरो को अवश्य इस्तेमाल करना चाहिये।

इस 'हैरो' का नाम "एकमी हैरो" ( Acme harrow ) है। यह 'हैरो' वर्षाकाल में हल्की जुताई करने के लिये बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। इस 'हैरो' से खेतों की जुताई करने के

चित्र सं० १४ एकमी हैरो
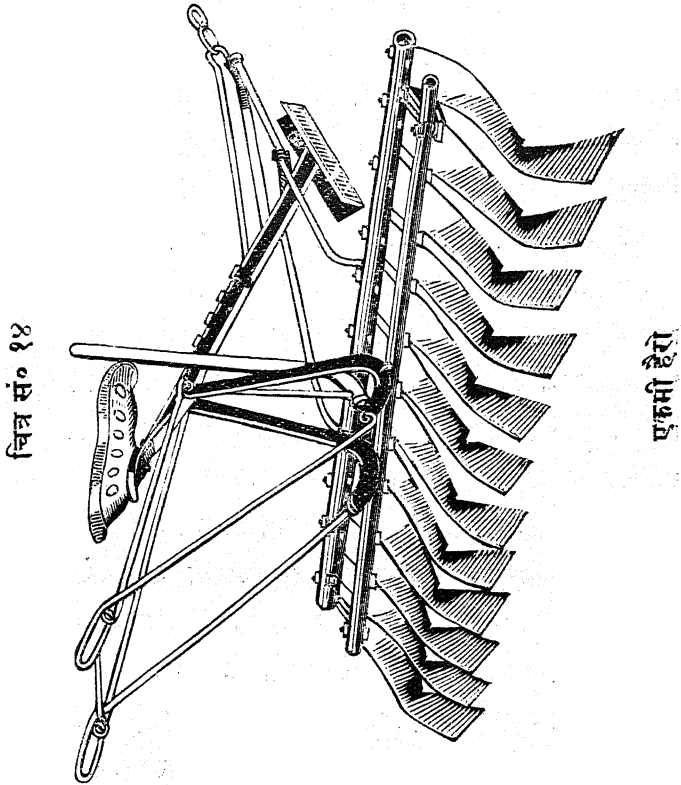
साथ ही साथ खेतों से खर-पतवार भी निकाला जा सकता है। दूसरे डले भी तोड़े-फोड़े जा सकते हैं।

प्रत्युत इसके ऐसे मौक़ों पर भी जब कभी अधिक वर्षा के कारण से अथवा अन्यान्य कारणोवश खेतों की जुताई करने से यह शंका हो कि देशी-हल से अथवा मिट्टी-पलटने वाले हलों के द्वारा जुताई करने से खेतों में डले पड़ जावेंगे। तो उस समय में इसी "एकमी हैरो" द्वारा खेतों की जुताई करना चाहिये। इस हैरो द्वारा जुताई करने से किसी भी हालत में खेतों में डले नहीं पड़ सकेंगे। इससे रबी के खेतों के लिये बरसाती जुताई करने के हेतु यह हैरो अवश्य ही भारतवासियों को अपने व्यवहार में लाना चाहिये—अथवा जब वर्षा का समय व्यतीत हो जाय और खेतों में डलों के कुछ नामोनिशान पाये जाते हों। तो उस समय भी इस "हैरो" को खेतों में चला करके 'रबी' के लिये खेतों को तय्यार कर लेना चाहिये।

जब कभी बारिश अधिक हो जाय, और खेत गीले हों। उस समय में भी यदि इस 'एकमी हैरो' को धीरे-धीरे खेतों के धरातल पर, धरातल की पपड़ी को तोड़ने के लिये चलाया जाय तो बहुत ही अच्छा होगा, पपड़ी के टूट जाने के पश्चात् हवा भली प्रकार से खेत के धरातल और गर्भतल में प्रवेश करके जीवाणुओं को खूराक तय्यार करने का मौक़ा देगी, और पानी भी वर्षाकाल में धीरे-धीरे धरातल और गर्भतल के कणो में रिभेगा। जिससे बरसाती जुताईयों का सारा उद्देश्य सिद्ध हो जायगा।

पाठकों! की जानकारी के हेतु हमने दो 'हैरो' का वर्णन कर

दिया। जिससे कृषक-वृन्द को 'हैरो' का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो गया है। वर्तमानकाल में खेतों की बरसाती जुताइयों के लिये यह 'हैरो' नामी कृषि-यन्त्र बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुये हैं। इसी कारण इनका प्रचार भारत का राजकीय तथा प्रान्तीय कृषि-विभाग अपने अपने स्थानों में कर रहे हैं। देश के पंजाब, गुजरात, आदि भागों में जहां के लोग वैज्ञानिक शिक्षा से परिचित हो गये हैं, और अपने वाणिज्य-व्यवसाय में वैज्ञानिक मशीनों का व्यवहार करने लगे हैं। वहां के कृषक भी इन कृषि-यन्त्रों का प्रयोग और व्यवहार बहुतायत से कर रहे हैं। इसमें संदेह नहीं है कि देशी हलों द्वारा भी वर्षाकाल में जुताइयां की जा सकती हैं। इतना ही नहीं देश का कृषक समुदाय अभी तक अधिक संख्या में इन्हीं देशी हलों से जुताई किया करता है। परन्तु अब ज़माना बदल गया है, मज़दूरों का राज्य स्थापित हो गया है। अब उन्हीं की हुकूमत से देश का कार्य्य संचालन हुआ करता है। ऐसी अवस्था में यह आशा करना किसी भी देश के आला व अदना किसानों के लिये श्रेयस्कर नहीं हो सकता। कि हम अपने देश का कार्य प्राचीन काल की भांति मज़दूरों द्वारा ही करायेंगे। अन्य देशों की भाँति अब भारत का मज़दूर-समुदाय भी अपनी सत्ता को समझने लगा है, और अपने अधिकारों की मांगें पेश करने लगा है। जिसके ही प्रभाव से भारत के सभी वाणिज्य-व्यवसाय में मज़दूरों की कमी और मँहगी का सवाल दरपेश है।

ऐसी अवस्था में जब की संसार की प्रगति इस तरह विलक्षण

रूप धरती जा रही है। भारतीय कृषिकारों को चाहे वह ब्राह्मण हो अथवा काछी और कायस्थ। चाहे सैय्यद, मुग़ल, पठान, अथवा ज़मींदार और तालुक़ेदार ही क्यों न हों। यह आशा करना कि हम अपनी ज़मीदारी के मज़दूरों को बेग़ार अथवा इसी प्रकार की अन्य आतंक जमाने वाली तरकीबों से इनसे काम ले लिया करेंगे, और सदैव की भाँत चार छः पैसे शाम को देकर विदा कर दिया करेंगे, बिल्कुल ही भ्रामक और निर्मूल आशा है। यह आशा हमारे देश के कृषि-व्यवसाइयों को जिनके कि कृषि व्यवसाय का दारोमदार मज़दूरों पर ही निर्भर है। थोड़े ही दिनों में हवाई बादलों की भाँति छिन्न-भिन्न हो जावेगा, और अन्य विदेशी देशों की भाँति यहां के मज़दूर भी मँहगे हो जावेंगे। तो झखमार कर हमारे देशवासी किसान इन विदेशी कृषि-यन्त्रों का प्रयोग और व्यवहार करने लगेंगे। अतएव, हम अपने देश-वासी किसानों से यही कहना चाहते हैं। कि आप लोग समय की प्रगति का अवलोकन करें, और इन कृषि-यन्त्रों को अपने कृषि व्यवसाय के व्यवहार और प्रयोग में लावें। क्योंकि सभी दशा में हरेक दृष्टियों से यह सारे कृषि-यन्त्र लाभदायक हैं। इनके व्यवहार और प्रयोग से आपकी कृषि में सुधार ही होगा। जिससे अधिक लाभ की भी संभावना है।

जिन मद्रासी और एकमी-हैरो का सचित्र वर्णन हमने किया है। वह देश भारत के सर्वसाधारण किसानों के लिये बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुये हैं। क्योंकि इन 'हैरो' द्वारा खेतों की

जुताइयां देशी-हल की अपेक्षा अधिक क्षेत्रफल में की जा सकती हैं। दूसरे वे भी सारी बुराइयां जो कि देशी-हल में पाई जाती हैं। इस 'हैरो' नामी कृषि-यन्त्र के आविष्कार से दूर हो गई हैं।

अब हम अपने उन कृषकों के लिये जो कि आला जाति के किसान हैं, और अधिक क्षेत्रफल में कृषि किया करते हैं, उनके लिये एक दूसरे 'हैरो' का सचित्र वर्णन करेंगे। क्योंकि यह 'हैरो' इस रीति से बनाया गया है। कि इसकी बनावट उपर्युक्त दोनों (मद्रासी, एकमी हैरो) 'हैरो' की बनावट से बिलकुल ही भिन्न है। साथ ही इसकी जुताई करने वाली लोहिया खूँटियां भी ऐसी तरकीब से बनाई गई हैं। जो कि खेतों की जुताई देशी-हल से भी गहरी और अच्छी तरह से कर सकती हैं, और देशी-हल की अपेक्षा इस 'हैरो' से पँच गुना क्षेत्रफल एक दिन में जोता जा सकता है। जिससे मज़दूरी और समय अर्थात् दोनों की बचत के साथ ही साथ खेतों की जुताई भी ठीक और नियमित समय के भीतर ही समाप्त हो जाया करती है। जिससे 'रबी' की फ़सलों की जुताई के लिये सभी प्रकार की मुसीबतें दूर हो जाती हैं। इस हैरो का चित्र आगे चित्रित करके इसका सचित्र वर्णन पाठकों के सामने पेश किया जाता है।

इस 'हैरो' का नाम 'स्प्रिँगटाइन्डहैरो' (spring tined harrow) है। इस हैरो का (१) पहिला भाग ढांचा (Frame) है। (२) दूसरा भाग कमानी (spring) है। (३) तीसरा भाग लीवर (Lever) है (४) चौथा भाग कड़ा है।

चित्र सं० ६५
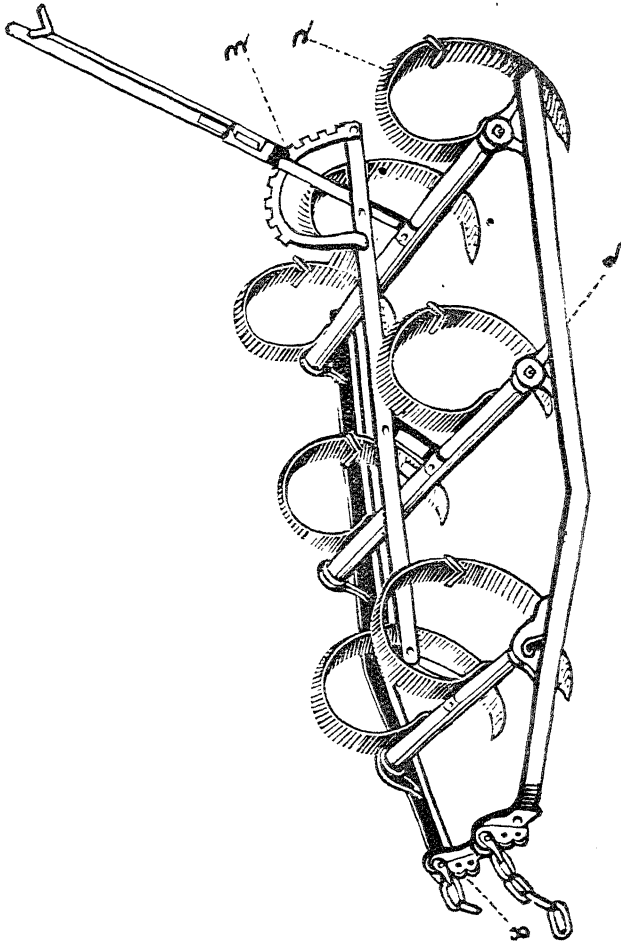
(१) ढांचा (२) कमानी (३) लीवर (४) कड़ा

इस हैरो के भाग (१) ढाँचे पर हलवाहा खड़ा होकर इसे खेत में चलाता है। दूसरा भाग कमानी ( spring ) खेत के गर्भतल तक की मिट्टी को खोदता है, और घास-फूस खर-पतवार को अलग करता है। तीसरे भाग 'लीवर' ( lever ) द्वारा खेत की जुताई गहरी या उथली की जा सकती है। चौथा भाग कड़ा है। जिसमें जंजीर अथवा रस्सी डाल करके बैलों के जुये से जोड़ा जाता है।

बर्षाकाल में जिन काश्तकारों या ज़मींदारों के यहाँ अधिक क्षेत्रफल में "रबी" की बुवाई करना हो। उन्हें उचित होगा कि वह अवश्य ही इस हैरो को जुताई के व्यवहार में लावें। वर्षारम्भ के समय यदि मिट्टी-पलटने वाले हलों से जुताई करने का मौक़ा मिल जावे, तो उन हलों से एकाध बार जुताई करके तत्पाश्चात् इस हैरो का प्रयोग और व्यवहार करना चाहिये। क्योंकि प्रायः ज्येष्ठ उतरते-उतरते और आषाढ़ के आरम्भ होने के संधि-सप्ताह तक में पहिली वर्षा हो जाया करती है। उस समय में अवकाशानुसार एक या दो बार 'रबी' के खेतों की जुताई मिट्टी-पलटने वाले हलों से करके तब सावन, भादों, कार में इस हैरो से बराबर खेत की जुताई करते रहना चाहिये। क्योंकि सावन, भादों और कार के महीने में अधिकतर भारी वर्षा हो जाया करती है। जिससे खेत इतने गीले रहते हैं। कि उनमें मिट्टी-पलटने वाले अथवा देशी-हल चलाये ही नहीं जा सकते। ऐसी अवस्था में अथवा जब कि उपर्युक्त बरसाती महीनों में बरसा की झड़ी लग रही हो तब इस 'हैरो' का प्रयोग और व्यवहार करना चाहिये।

ऐसे वक्तों पर 'रबी' के खेतों की तय्यारी करने के लिये देशी अथवा अन्य हलों को कभी भूल से भी न चलाना चाहिये। नहीं तो डले पड़ जांयगे, तो फिर इन डलों को तोड़ना-फोड़ना मुश्किल ही नहीं असंभव हो जायेगा। ऐसी दशा में चतुरता यही है कि इस "हैरो" द्वारा लगातार सारे 'रबी' के खेतों की जुताई जारी रहे। जिससे 'रबी' के खेतों पर पपड़ी न पड़ने पावे। इस प्रकार से जब 'रबी' के खेतों की पपड़ी बराबर टूटती रहेगी, तो हवा और पानी भली प्रकार से खेत के धरातल तथा गर्भतल में घुसकर खूराक तय्यार करने का अपना काम जारी रक्खेंगे, और खेत के धरातल का सारा खर-पतवार भी उखड़ता रहेगा। इन खरपतवारों को जो कि 'हैरो' की जुताई से इकट्ठा हो जावें। वर्षाकाल में खेतों से हटा करके यदि इन्हें धोकर के तथा सुखा करके किसी सुरक्षित स्थान पर इकट्ठा किया जावे, तो यह पशुओं के खिलाने के काम आवेंगे। इसलिये इन बरसाती खर-पतवारों के घास-फूसों को कभी भी भूल से वर्षाकाल में न तो दबा कर सड़ाना ही चाहिये, न फेंकना चाहिये। बल्कि इन्हें वर्षाकाल में धोकर के साफ़ शुद्ध करके 'करबी' की दशा में काट कर पशुओं को खिला देना चाहिये—अथवा किसी प्रकार से इन्हें काटकर समयानुसार सुखा कर तथा अन्य प्रकार की तरकीबों से सुखा करके सिरजना चाहिये, और पशुओं को खिलाना चाहिये। क्योंकि भारत में पशुओं के चारे की भी तो बड़ी क़िल्लत है।

बरसाती जुताइयों के हेतु हमने तीन सचित्र हैरो का वर्णन

प्रस्तुत पुस्तक में पाठकों की सुविधा के हेतु दिया है। यह तीनों प्रकार के हैरो वर्षा-काल में अर्थात् आसाढ़, सावन, भादों में भली प्रकार से बिना किसी संदेह और अड़चन के काम में लाये जा सकते हैं। क्योंकि वर्षा-काल की जुताइयों का जो उद्देश्य है; उसे न तो मिट्टी-पलटने वाले हल न तो देशी ही हल पूरा कर सकते हैं। क्योंकि ये दोनों प्रकार के हल मिट्टी को खोदते हैं, और मिट्टी पलटने वाला हल खेत की मिट्टी को खोद कर एक ओर को पलट देता है। जिससे खेत के धरातल की मिट्टी खर-पतवार सहित उलट-पलट कर नीचे चली जाती है, और वर्षा-काल में खेतों के गीले रहने से खेतों में अधिकतर डले पड़ जाया करते हैं। और देशी-हल से खेत जुतता तो रहता है। परन्तु घास-फूस खर-पतवार एक तो देशी-हल से भली भाँति उखड़ते ही नहीं, दूसरे जो उखड़ते-पखड़ते हैं। वह भी धरातल पर ही पड़े रहते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि इन दोनों प्रकार के हलों का प्रयोग और व्यवहार वर्षा काल में उतना लाभदायक नहीं हो सकता, जितना कि इन 'हैरो' का प्रयोग और व्यवहार खेतों की जुताई के लिये लाभ दायक हो सकता है। अतएव, हमारा तो यही कहना है कि भारत देश के सभी प्रान्त के किसानों को वर्षा-काल में इन 'हैरो' का प्रयोग और व्यवहार अवश्य ही खेती की जुताई के लिये करना चाहिये।

क्योंकि यह "हैरो" नामी जुताई के कृषि-यन्त्र वर्षाकाल में हर समय हर हालत में खेतों में एक जोड़ी बैल की सहायता से चलाये

जा सकते हैं, और इनको जुताई से खेत के धरातल की वह पपड़ी जो कि हरेक बरसाती लहरा के बाद पड़ जाया करती है। टूटती रहती है, जिससे खेतों में नमी अधिक क़ायम रहती है। साथ ही हवा भी खेत के धरातल में जा सकती हैं, और जब कभी वर्षा-काल में आसमान खुल जाता है। तो धूप का भी प्रभाव पपड़ी के टूटे रहने के कारण से भली प्रकार से खेत के गर्भतल और धरा-तल में पड़ा करता है। इसके सिवाय पानी को ऊपर लाने वाली नलियों का भी ऊपरी सिरा ( Capillary tubes ) हमेशा टूटती रहती हैं। जिसके कारण से पानी गर्मी की अधिकतावश ऊपर को उड़ कर भी नहीं जा सकता है। इसके सिवाय 'हैरो' द्वारा बरा-बर बरसाती जुताइयों के कारण से खेत के धरातल का सारा खर-पतवार तथा घास-फूस बराबर उखड़ पुखड़ कर साफ़ होता रहता है। जिससे इन घास-फूस वाले पौधों से नष्ट होने वाली सारी ख़ूराक बची रहती है, और खेत का धरातल भी इन 'हैरो' की जुताइयों से चौरस होता रहता है। क्योंकि हलों की जुताइयों से खेत के चौरसपने में जो कुछ त्रुटियां उत्पन्न हो जाया करती हैं वह सारी त्रुटियां बरसात में 'हैरो' की जुताइयों के कारण जाती रहती है। जिससे खेत हमवार तथा चौरस हो जाता है।

इतना ही नहीं खेत के धरातल तथा गर्भतल में जो डेले हलों की जुताइयों से पड़ गये हैं, और खेत के गर्भतल में पाये जाते हैं। वह 'हैरो' की जुताइयों से चलनी की भूसी के समान छन कर खेत के धरातल पर आ जाते हैं, और खेत की मिट्टी का बारीक़

भुरभुरा भाग खेत के गर्भतल में चला जाता है। इस प्रकार से जब खेत की सारी मिट्टी जो कि बारीक़ और भुरभुरी है। जब वह नीचे बैठ जाती है, और खेत के धरातल पर डले आ जाते हैं। तो यह डले वर्षाकाल में नम और पानी से सिक्त होने के कारण इन्हीं "हैरो" की ही जुताइयों से टूट कर बारीक़ हो जाते हैं। जिससे खेत की मिट्टी भलो प्रकार से तय्यार हो जाती है।

"ख़रीफ़" की वे तमाम फ़सलें जो कि छिटकवां बोई जाती हैं। वह भी वर्षाकाल में छिटक कर इन "हैरो" के द्वारा खेतों को जोत कर खेत के गर्भतल में मिला दी जा सकती हैं, और बहुत थोड़े ही समय में इन देशी हलों की अपेक्षा इन 'हैरो' नामक जुताई के कृषि-यन्त्रों से खेतों की बुवाई करके जुताई की जा सकती है और बीज खेत में बोकर जोत कर मिला दिये जा सकते हैं। इस वर्णन से पाठकों की समझ में यह भली प्रकार से आगया होगा। कि वास्तव में ही यह हैरो नामी जुताई के कृषि-यन्त्र बहुत ही लाभदायक कृषि-यन्त्र हैं, और इनका व्यवहार और उपयोग हम भारतवासी किसानों को भी विदेशी कृषकों की भांति करना चाहिये।

'अभाग्यवश जब कभी किसी देश में सूखा पड़ जाता है, और पानी नहीं बरसता है, तो खेतों को जोतना और बोना अत्यन्त ही कठिन क्या असंभव सा हो जाता है। ऐसी दशा में कृषक समुदाय विह्वल हो उठता है, और उसे कुछ सूझता ही नहीं है। ऐसे समय में हमारे देशी-हल क्या मिट्टी-पलटने वाले

हल कोई भी काम नहीं आ सकते। ऐसी विपत्ति के समय भी कितने अभागे देशों के कृषकों की जीविका को इन्हीं 'हैरो' नामी जुताई के कृषि यन्त्रों ने बचाया है। क्योंकि यदि खेतों का पलेवा ( सिंचाई ) न भी की किया गया; और इन 'हैरो' नामी कृषि-यन्त्रों से खेतों की जुताई आरंभ कर दी जाय, तो बहुत कुछ धरातल का भाग खेतों का जुत जायगा। अन्यथा खेतों का पलेवा येन केन प्रकारेण करके इन्हीं 'हैरो' नामी जुताई के कृषि-यन्त्रों से खेतों को थोड़े समय में, और अधिक क्षेत्रफल में तय्यार कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् खेतों में 'रबी' की अथवा ख़रीफ़ की फ़सलें ख़ुश्कसाली के समय भी बो देना चाहिये। अब पाठकों की समझ में आ गया होगा। कि सब प्रकार से ये 'हैरो' नामी जुताई के कृषि-यन्त्र लाभदायक हैं, और बरसाती जुताइयों के लिये तो कहना ही क्या है। इन जुताई के यन्त्रों के मुक़ाबिले में कोई भी जुताई के यन्त्र लाभदायक सिद्ध हो ही नहीं सकते। इस लिये इन 'हैरो' नामी जुताई के कृषि-यन्त्रों का प्रयोग और व्यवहार भारत के किसानों को अब करने में किसी भी प्रकार की आना-कानी नहीं करनी चाहिये।

फ़सलों के कट जाने के पश्चात् भी यदि जावा नील बोना हो, तो जावा नील बोने के लिये भी इन "हैरो" नामी जुताई के यन्त्रों से खेत शीघ्र से शीघ्र तय्यार किया जा सकता है, और नील की पहिली कटाई के बाद भी खेतों को इस "हैरो" नामी यन्त्र द्वारा बिना किसी अड़चन के भली भांति से जोत सकते हैं।

बरसाती जुताइयों लिये हमने तीन हैरो नामी जुताई के यन्त्रों का सचित्र वर्णन प्रस्तुत पुस्तक में कर दिया है, और साथ ही यह भी बतला दिया कि देशी अथवा मिट्टी-पलटने वाले हलों की अपेक्षा यह "हैरो" नामी कृषि-यन्त्र जुताई के लिये कैसे उपयुक्त तथा लाभदायक हैं, और इन मोल्डबोर्ड हलों और देशी हलों की अपेक्षा थोड़े ही समय में अधिक क्षेत्रफल में कैसी उत्तम श्रेणी की जुताइयां वर्षा-काल में यह 'हैरो' नामी जुताई के यंत्र किया करते हैं। इसके साथ ही साथ हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि वर्षाकाल में जिस प्रकार से इन "हैरो" नामी जुताई के यन्त्रों से जुताई बहुतायत से करते रहना "रबी" के खेतों के लाभदायक है। उसी प्रकार से वर्षाकाल में अवसर मिलने पर जब कि खेत गीले अर्थात कच्चे न हों। उस समय में भी मिट्टी-पलटने वाले हलों द्वारा भी कम से कम वर्षाकाल में भी दो तीन जुताइयां रबी के खेतों की अवश्य ही कर देना चाहिये। इससे बड़ा लाभ होगा और "हैरो" के काम से बड़ी सहायता मिलेगी। मिट्टी के उलट पुलट जाने से और खर-पतवारों के समूल उखड़ आने से ये हैरो झट पट खर-पतवारों को खेतों से निकाल बाहर फेंक देंगे।

मिट्टी पलटने वाले हलों के व्यवहार से खेतों के गर्भतल तक के कणों में पानी भली भांति से प्रविष्ट हुआ करेगा, और "हैरो" के उपयोग से खेत की पपड़ी टूटती रहेगी। जिससे ऊपर को पानी लाने वाली नलियों ( Capillary tubes ) का मुंह टूटा रहने के कारण पानी की पर्य्याप्त मात्रा नमी के रूप में खेत में पाई जायगी

जिससे बीजों के जमने के लिये तथा उगकर बढ़ने के लिये एवं उत्तम श्रेणी की पैदावार देने के लिये तथा सिंचाई की कमी के लिये बड़ा लाभ होगा। क्योंकि जब ग्रीष्म-काल में खेतों की जुताई करके खेत के धरातल और गर्भतल की सारी ख़ूराक सूर्य की प्रखर किरणों तथा लूह के कारण इस दशा में परिवर्तित हो जायगी। कि वह वर्षाकाल में पानी में घुल सकेगी। तो इसका यह प्रत्यक्ष फल होगा। कि ग्रीष्म-काल की तय्यारी की हुई सारी ख़ूराक वर्षा-काल में पर्य्याप्त पानी के कारण पानी में घुली रहेगी, और जब खेत के धरातल तथा गर्भतल में जब भली प्रकार से वर्षा-काल में नमी पानी के रूप में संचय कर ली जायगी। तो 'रबी' की फ़सलों के पौधे सरलता पूर्वक अपनी ख़ूराक घोल की दशा में ग्रहण करके बढ़ेंगे, और फल-फूल कर उत्तम श्रेणी की पैदावार हमें देंगे, और जब हमारे खेतों में वर्षा-काल में भली प्रकार से पानी इकट्ठा हो जायगा। तो यह मानी हुई बात है कि हमें फ़सलों की सिंचाई बहुत ही कम करनी पड़ेगी।

---

## हैरो का जोड़ना और चलाना

हैरो नामी जुताई के यंत्र को मिट्टी-पलटने वाले हलों की ज़ंजीर से अथवा मज़बूत रस्सी से 'हैरो' के 'कड़े' में लगा करके बैल के जुये (मांची) में जोड़ देना चाहिये, और चौखटे पर खड़े होकर के चलाना चाहिये। जिस प्रकार से पटेले (हेंगे, सरावन) को

रस्सियां या ज़ंजीरे कुयें को रस्सियों की भाँति बीचों-बीच में रहती हैं। उसी प्रकार से इन हैरो में भी रस्सियों को ठीक बैलों के जुये की बीचों-बीच जोड़ना चाहिये।

जिन 'हैरो' में 'लीवर' नाम का भाग पाया जाता है। उसके द्वारा इसको आगे या पीछे हटा करके खेतों की गहरी या उथली जुताई की जा सकती है। इसलिये इस 'लीवर' के भाग के द्वारा वर्षा काल में खेतों की गहरी ही जुताइयां करनी चाहिये। हम यह बतला चुके हैं कि खेतों की निराई-गुड़ाई करना भी एक प्रकार की जुताई ही है। इसी कारण से इन 'लीवरों' के द्वारा ख़रीफ़ और "रबी" की फ़सलों की उथली जुताई करके उनमें हल चला करके इन "हैरो" नामी कृषि-यन्त्रों से खेतों की निराई गुड़ाई भी कर ली जाती है। जिससे "ख़रीफ़ और "रबी" के खेतों के सारे खर पतवार और घास फूस निकल आते हैं, और पपड़ी के टूट जाने के कारण से खेतों की नमी बहुत ही कम उड़ा करती है, ख़ैर। इस निराई-गुड़ाई का वर्णन हम फिर कभी प्रसंगानुसार करेंगे। क्योंकि इन "हैरो" नामी यन्त्रों से बहुत से कृषि कार्य्य सिद्ध होते हैं।

हैरो नामी जुताई के कृषि-यन्त्र को जब खेत में चलाया जाय तो निम्न-लिखित बातों पर परिपूर्ण रूप से ध्यान रखने ही से खेतों की उत्तम श्रेणी की जुताई हो सकेगी। अन्यथा पूरा लाभ नहीं प्राप्त किया जा सकेगा।

जिस रस्सी अथवा ज़ंजीर से हैरो बैल की माची में जोड़ा

जाय। वह इतनी पर्य्याप्त मात्रा में लम्बी रक्खी जाय। जिससे हैरो की तमाम खूंटियां अथवा कमानी (Spring) खेत के धरातल में भली प्रकार से घुस कर चलें जिससे धरातल तथा गर्भतल के ढेले और घास-फूस, खर-पतवार के पौधे छन कर धरातल पर आ जावें। यदि रस्सी अथवा ज़ंजीर की लम्बाई बैलों की ऊँचाई के अनुसार लम्बी न होगी तो "हैरो" के अगले भाग की सारी खूँटियां अथवा कमनियां (Springs) उठी हुई चलेंगी जिससे हैरो द्वारा खेत की जुताई जैसी होनी चाहिये नहीं हो सकेगी। इस कारण से बैलों की ऊंचाई के अनुसार ज़ंजीर अथवा रस्सी को पर्य्याप्त रूप में लम्बी रखनी चाहिये। जिससे हैरो की तमाम खूँटिया अथवा कमानिया (Springs) भली प्रकार से खेतों के धरातल में घुस कर चलें, और अपने काम को पूर्ण करें। हैरो को चलाते समय इस बात को देखते रहना चाहिये कि सब खूंटियाँ अथवा कमनियां अलग अलग रास्ते पर चल रही हैं, कि नहीं। यदि दो खूँटी अथवा कमानी एक ही रास्ते पर चल रही हों, तो उसे तुरन्त ठीक कर लेना चाहिये।

जिन "हैरो" नामी जुताई के कृषि-यन्त्र में "लीवर" (Lever) नामी भाग गहरी और उथली जुताई करने के लिये लगाया जाता है। उसे अधिकतर "लीवर-हैरो" कहा जाता है। यह "लीवर हैरो" नामी यन्त्र तीन प्रकार के हुआ करते हैं।

(१) में तो तीन खूंटियाँ (काँटे या कमानियां) होती हैं। जो कि साधारण किसानों की साधारण बैलों की जोड़ियों से सरलता पूर्वक

खींची जा सकती हैं। साधारण श्रेणी के अदना क़ौमों के किसानों के लिये यह तीन कमानियों वाला लीवर हैरो बड़ा लाभप्रद है।

( २ ) लीवर हैरो में पाँच कमानियाँ ( काँटे, खूंटियाँ ) होती हैं, यह मध्यम श्रेणी के किसानों के लिये तथा उनके बैलों की मध्यम श्रेणी की जोड़ियों के लिये उपादेय कहा गया है।

( ३ ) तीसरे प्रकार के लीवर हैरो नामी यन्त्र में सात कमानियाँ होती हैं। जो कि आला जातियों के किसानों के लिये इस कारण से लाभदायक हैं कि एक तो उनके बैल भी पूरे ऊँचे मज़बूत और सशक्त होते हैं। जो कि इसको सरलता पूर्वक खींच सकते हैं। दूसरे इन आला क़ौमो के अथवा ज़मीदारों तालुक़ेदारों के पास सीर के इतने खेत हैं कि उनकी जुताइयों के लिये यह सात कमानियों वाला लीवर हैरो बहुत ही लाभकारी है।

जिस प्रकार से हमने गरमी की जुताइयां के सम्बन्ध में स्वतंत्रता पूर्वक वैज्ञानिकों की अनुमति के अनुसार खुले शब्दों में स्पष्ट रूप से अपने विचार प्रकट किये थे। उसी प्रकार से हमने बरसाती जुताइयों के सम्बन्ध में भी कृषि-विज्ञान-विशारदों की ही अनुमति के अनुसार अपने अनुभवों के आधार पर हमने अपना स्वतंत्र विचार प्रकट कर दिया। संभव है कि किसी वैज्ञानिक की दृष्टि में हमारे विचारों में कुछ त्रुटि हो। पर मेरा तो यही पक्का विश्वास है कि जिस प्रथा का अवलम्बन हमने ग्रहण किया है, और साथ ही जिसकी चर्चा भी इस पुस्तक में भारतीय

किसानों के हितार्थ की गई है। वही प्रथा, रीति, रिवाज़, प्रणाली भारत के लिये उपयुक्त तथा उपादेय है। इसी प्रथा के अवलम्बन तथा ग्रहण करने से हमारे विचारानुसार भारत के कृषि व्यवसाइयों का कल्याण होगा। बहुत से विदेशी कृषि वैज्ञानिकों की यह भी राय है कि बरसाती जुताइयों के आरंभ में 'कल्टीवेटर" (cultivator) नामी जुताई के कृषि यंत्रों का भी प्रयोग और व्यवहार करना चाहिये। क्योंकि यह 'कल्टीवेटर' नामी कृषि यन्त्र भी बरसाती जुताईयों के लिये अत्यन्त ही लाभदायक हैं। इस सम्बन्ध में मेरा यही कहना है। कि इसमें सन्देह नहीं है कि "कल्टीवेटर" नामी जुताई का कृषि-यन्त्र भी एक उत्तम श्रेणी के जुताई का यन्त्र हैं, जो कि हर काल में हर प्रकार की ज़मीनों में जुताई का काम कर सकते हैं। पर, तो भी यह "कल्टीवेटर" नामी जुताई का यंत्र जितना 'रबी' की जुताइयों के लिये उपयुक्त तथा उपादेय है। उतना गरमी और बरसाती जुताइयों के लिये नहीं है। इस कारणवश इस "कल्टीवेटर" नामी जुताई के यन्त्र का सचित्र सविस्तारिक वर्णन हम "रबी" की ही जुताइयों के प्रकरण में करेंगे। यहां पर तो जो कुछ हमने बरसाती जुताइयों के सम्बन्ध में लाभदायक तथा उपयुक्त समझा उन्हीं बातों का वर्णन कर दिया।

गरमी की जुताइयों के उद्देश्यों का वर्णन तथा अन्यान्य बातें गरमी की जुताइयों के प्रकरण में कर दी गई हैं। यहां पर इस सम्बन्ध में इतना ही कह देना पर्य्याप्त होगा। कि गरमी के दिनों में खेतों की जितनी ही गहरी जुताई हो सके, उतनी ही गहरी जुताई

मिट्टी पलटने वाले हलों से अथवा फावड़ों और कुदालियों से खोद कर, कर देनी चाहिये। सारांश यह कि ग्रीष्म-काल में खेत के धरातल और गर्भतल को खोदकर उसकी मिट्टी को उलट-पलट देना चाहिये। जिससे इस मिट्टी पर सूर्य्य की प्रखर किरणों का प्रभाव खूब पड़े, और साथ ही वैशाप-ज्येष्ट की लूह भी खेत के धरातल और गर्भतल में घुसकर खेत की मिट्टी में अनेकों प्रकार के भौतिक और रासायनिक परिवर्तन करके उन तमाम "खनिजांश" और 'जीवांश' के पदार्थों को इस प्रकार से परिवर्तित करदे कि वर्षाकाल में वे सारे "खनिजाँश" पदार्थ पानी में घुल जायें, और पौधों की ख़ूराक के काम में आ सकें। जब इस प्रकार से तप्त वायु और कड़ी धूप के प्रभाव से खेत के धरातल तथा गर्भतल का सारा पौधों का ख़ूराकी भाग पानी में घुल जायगा। तो वर्षा काल में खेतों की जुताइयाँ करके इस बात पर ध्यान रक्खा जाना चाहिये। कि हमारे खेत में जो ख़ूराक जमा है। उसे खर-पतवार तथा घास-फूस के पौधे न खाने पावें, इस हेतु खेतों की जुताइयाँ अवकाशानुसार मिट्टी-पलटने वाले हलों से करके इनको समूल नष्ट कर देना चाहिये, और "हैरो" चला करके खर-पतवार को बिनकर फेंकवा देना चाहिये। इससे खर-पतवारों के विनवा लेने के अलावा खेतों की पपड़ी भी नष्ट हो जाया करेगी। जिससे खेत की मिट्टी पानी को खूब अधिक सोखकर अपने भीतर जमा कर लेगी। जो कि आगे चलकर बहुत ही काम देगी। इसके सिवाय खेतों की पपड़ी के टूटी रहने से खेतों के भीतर वायु का गमनागमन सदैव

भली प्रकार से जारी रहेगा। जिससे भूमि के भीतर ख़ूराक बनाने वाले जीवाणु भी "नत्रेत" इत्यादि के संचय का भी कुछ न कुछ काम करते रहेंगे। इससे फलतः बरसात में आकाश के खुल जाने पर जब कभी मौक़ा मिले खेतों को मिट्टी पलटने वाले हलों से जोतते रहना चाहिये।

इन मिट्टी पलटने वाले हलों से खेतों की जुताई करने के पश्चात् आसाढ़, सावन, भादों के महीनों में अर्थात घोर वर्षा-काल में बराबर खेतों में "हैरो" नामी जुताई का कृषि-यन्त्र चला कर खेतों से घास-फूस, खर-पतवार निकालते रहना चाहिये, और ज़मीन की पपड़ी को हमेशा तोड़ते रहना चाहिये। जिससे खेत के धरातल तथा गर्भतल में पानी वायु, धूप का संचार भली प्रकार से होता रहे, और ये भौतिक-शक्तियां पौधों की ख़ूराक जमा करने का अपना काम सदैव जारी रक्खें। यदि इस रीति से गरमी और बरसाती जुताइयां की जांयगी, तो देख लीजियेगा खेतों में पौधों की ख़ूराक़, नमी पर्य्याप्त मात्रा में इकत्रित रहेगी; और जब "रबी" की जुताइयों के पश्चात् फ़सलों के बीज बोये जावेंगे। तो पौधे ठीक प्रकार से उगेंगे, और यह पौधे मज़बूत और हृष्ट पुष्ट भी होंगे, और फल-फूल जड़ शाखें पत्तों द्वारा जो कुछ भी उपज इनसे मिलेगी। वह उत्तम श्रेणी की पैदावार होगी। इससे यदि भारतीय किसानों को उत्तम श्रेणी की अधिक से अधिक पैदावार फ़सलों से लेना हो, तो उन्हें अवश्य गरमी की तथा बरसात की जुताइयों को उपर्युक्त लिखित नियमानुसार करना चाहिये।

# रबी की जुताई

वर्षा समाप्त हो जाने पर खेतों की जो जुताइयां की जाती हैं। वह सब 'रबी की जुताइयां' कही जाती हैं। प्रश्न हो सकता है कि इन जुताइयों को क्यों 'रबी की जुताइयां' कहा जाता है? इस सम्बन्ध में इतना ही जान लेना पर्य्याप्त होगा कि वर्ष में तीन फ़सलें खेतों से ली जाया करती हैं। एक तो 'ख़रीफ़' की फ़सल जो कि वर्षा काल के आरम्भ में ही बो दी जाती है, और वर्षा काल भर में तय्यार हो जाती है। जिसमें ज्वार, बाजरा, धान, मक्का, साँवां, कोदो, उरद, मूंग, सनई इत्यादि की फ़सलें बोई जाती हैं।

दूसरी फ़सल 'रबी' की है, जो कि वर्षा समाप्त होने के पश्चात् कार्तिक ( सितम्बर, अक्तूबर ) मास में बोई जाती हैं, और जाड़े भर में यह तय्यार होकर गरमी के आरम्भ होते ही काट ली जाती हैं। इन दोनों फ़सलों को "कारी" और 'चैती' की फ़सलें भी हिन्दू किसान कहा करते हैं। क्योंकि आसाढ़ में बोई हुई 'ख़रीफ़' की फ़सलें 'कार' के महीने में तय्यार हो जाती हैं और काट ली जाती हैं। इसी से उन्हें 'कारी' कहा जाता है, और 'रबी' की फ़सलें चैत्र मास में पक कर तय्यार हो जाती हैं, और काट

ली जाती हैं। इसी से उन्हें "चैती" कहा करते हैं। 'जायद' की वह फ़सलें हैं, जो कि ज्येष्ठ महीनें में बोई-काटी जाती हैं। जिन्हें कि हिन्दू कृषक "जेठऊ" फ़सलें कहते हैं। यह फ़सलें माघ से ही बोई जाती हैं, और ज्येष्ठ मास तक बोई जाती हैं। इन खेतों की तय्यारियां या तो 'रबी' की फ़सलों के कट जाने के पश्चात् ज्येष्ठ-वैशाख में की जाती हैं। या जो खेत पलिहर (Fallow) छोड़े जाते हैं, उनकी तय्यारी 'रबी' की ही फ़सलों के साथ साथ बराबर होती रहती हैं। सांवा और धान की कुछ फ़सलें भारत के कुछ भागों में पूस-माघ में भी बोई जाती हैं; और ज्येष्ठ में पक कर तय्यार हो जाती हैं; और काट ली जाती हैं। इनके सिवाय ईख, गन्ना, पौंडा की फ़सले जो जायद की फ़सलें कहलाती हैं। माघ, फागुन, चैत्र, (फ़रवरी मार्च, अप्रैल) तक बोई जाती हैं। इसी प्रकार से खीरा, ककड़ी, खरबूज, तरबूज़ की भी फ़सलें बो करके वैशाष-ज्येष्ठ में बाज़ारों में बिकने के लिये लाई जाती हैं। इसके सिवाय अरुवी, बंडा, मक्का, कपास, करवी, इत्यादि की भी फ़सलें वर्षा आरंभ होने के पूर्व ही ज्येष्ठ (मई) में ही बोई जाती हैं। जो कि वास्तव में खरीफ़ की फ़सलें है। पर, तो भी इन्हें अंगरेजी में (special crops) अर्थात् विशेष फ़सलें कही जाती हैं; लेकिन यह सारी फ़सलें 'जायद' यानी 'जेठऊ' फ़सलों के अन्तर्गत है।

इस उपर्युक्त विवेचन से भली भाँति से समझ में आ गया होगा। कि वर्षाकाल के समाप्त हो जाने के पश्चात् खेतों की

तय्यारी के लिये जो जुताइयाँ की जाती हैं। वह इसी उद्देश्य से की जाती हैं। कि 'रबी' की फ़सलों के बोने के योग्य तथा उनसे अधिक से अधिक उत्तम श्रेणी की पैदावर प्राप्त करने के लिये खेतों को तय्यार किया जावे। इसी कारण से इस वक्त की जुताइयों को 'रबी' की जुताई कहा गया है।

'रबी' की जुताई वर्षा समाप्त हो जाने के पश्चात् इस ग़रज़ से की जाती हैं। कि खेत की मिट्टी अत्यन्त बारीक़ और भुरभुरी हो जावे, उसमें डले न रहें, और खेत का धरातल समतल तथा चौरस रहे; इतना ही नहीं 'रबी' की फ़सलों की बुवाई के लिये इस बात का भी प्रयत्न किया जाता है। कि जिससे खेत के धरातल और गर्भतल में बीजों को जमने और जमकर बढ़ने के लिये पर्य्याप्त मात्रा में नमी पाई जाय। इसी उद्देश्य के पूर्णार्थ खेतों की जुताइयां की जाती हैं। यह जुताइयां अधिकतर कार और कार्तिक (सितम्बर अक्तूबर) के महीनों में बड़े जोरों से की जाती हैं। क्योंकि कार्तिक के महीने के अन्दर ही अन्दर सारी 'रबी' की फ़सले बो दी जाती हैं। इस कारण इन महीनों में किसानों के सिर पर खेती का बड़ा भारी काम रहता है।

इस महीने में काम की इसी अधिकता के कारण किसानों में निम्नलिखित कहावत प्रचलित है कि—

**तेरह कातिक, तीन असाढ़**

अर्थात असाढ़ मास में 'ख़रीफ़' की फ़सलों की बुवाई के लिये तीन दिन तक बड़े जोरो से कामों की अधिकता रहती है।

इसी प्रकार से कार्तिक में "रबी" की फ़सलों के बोने के लिये तेरह दिन तक कामों की बड़ी अधिकता रहती है। इसका मुख्य कारण यह है। कि भारतीय-कृषक-समाज में अभी तक "ख़रीफ़" की फ़सलें "छिटकवां" ( Broad cast ) बोकर खेतों को जोतकर तत्पश्चात् हेंगा ( पटेला, सरावन ) देकर छोड़ दिया जाता है। परन्तु, 'रबी' की फ़सलें कूढ़ों में हलों के पीछे-पीछे बोई जाती हैं। इस कारण समय की अधिक आवश्यकता पड़ा करती है। इससे लगभग तेरह दिन तक "रबी" की जुताई-बुवाई के लिये किसानों के सिर पर खेती के कामों की बड़ी अधिकता रहती है। कहने का साराँश यह है कि वर्षा के पश्चात् किसानों के ऊपर खेती का इतना अधिक काम लद जाता है। कि वह भी घबड़ा से जाते हैं, और ऐसे समय में आन का तान करने लगते हैं। जिससे अनेकों प्रकार की हानियाँ उन्हें उठानी पड़ती हैं। इस कारण से ग्रीष्म और बरसात की भाँति कुटुम्ब के आला मालिक का यह कर्त्तव्य है कि वह परिवार के सारे आदमियों में खेती के कामों को बाँट दे। जिससे किसी भी प्रकार की गड़बड़ी खेती के कामों में न उपस्थित हो। परिवार के कुछ आदमियों के सुपुर्द "ख़रीफ़" की फ़सलों की कटाई का काम सौंप देना चहिये। जिससे कि वह सारी 'ख़रीफ़' की फ़सलों को काटकर खलिहान में शीघ्र से शीघ्र जमा करलें। नहीं तो खरीफ़ की पकी हुई तय्यार फ़सलों को चिड़ियायें तथा इसी प्रकार के अन्य पशु तथा आदमी रूपी शत्रु हानि पहुँचावेंगे। जिससे ख़रीफ़ की उपज का कुछ

अंश नष्ट हो जायगा। इससे ख़रीफ़ की फ़सलों द्वारा पूरी उपज प्राप्त करने के हेतु परिवार के किसी आदमी के ताल्लुक़ ख़रीफ़ की फ़सलों का सारा काम सुपुर्द कर देना चाहिये। उस आदमी का यह कर्तव्य होगा कि जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी ख़रीफ़ की फ़सलों को काटकर खलिहान में जमा कर ले, और उससे अन्न और डंठल अलग-अलग करके आला मालिक को यह सूचना (रिपोर्ट) दे दे। कि अमुक-अमुक जिन्स से इतनी इतनी पैदावार मिली और करबी अथवा डंठल इतने बोझ मिला इस प्रकार से ख़रीफ़ की पैदावार का एक पक्का चिट्ठा शीघ्र तय्यार करके आला मालिक को ख़रीफ़ की फ़सल के "फल" को ख़ूब समझ लेना चाहिये। कि "ख़रीफ़" की फ़सल द्वारा हमें लाभ है या हानि।

जिस समय आला-मालिक (परिवार प्रधान) ख़रीफ़ की फ़सलों का सारा काम परिवार के किसी आदमी के सुपुर्द करे। उसी समय 'रबी' के खेतों की तय्यारी का भी सारा काम किसी चतुर आदमी के हाथ सुपुर्द कर दे। जिससे वह अपने काम पर डट जायें, और रबी के खेतों की तय्यारी करने लगे। क्योंकि इस समय में केवल खेतों का जोतना ही काम नहीं है; बल्कि खेतों की जुताई के साथ ही साथ खेतों में पटेला लगाना इत्यादि अनेकों आवश्यक काम हैं जो कि 'रबी' की जुताइयों के साथ करने पड़ते हैं। इस प्रकार से 'रबी' की जुताइयों का काम किसी चतुर आदमी के सुपुर्द करके स्वयं 'रबी' के फ़सलों की बुवाई की

फ़िक्र में उसे (आला मालिक को) लग जाना चाहिये, और दोनों आदमियों के कामों की देख-भाल (निगरानी) करते रहना चाहिये। जिससे किसी काम में कुछ गड़बड़ी उपस्थित न होने पावे। जिस आदमी के काम में कोई भी त्रुटि दिखलाई पड़े। उसे तुरन्त सचेत कर देना चाहिये, और सारे काम को ठीक रखने का प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रकार से जब सारा काम बँटा रहेगा तो कार्तिक के भीतर ही भीतर ख़रीफ़ की फ़सलों का भी फल प्राप्त हो जायगा, और 'रबी' की फ़सलें भी खेतों को तय्यार करके बोई जाँयगी; इस प्रकार से सारा काम सरलता पूर्वक कर लिया जायगा। इसी में भारतीय किसानों के परिवार का कल्याण है।

'रबी' की जुताइयों का मुख्य उद्देश्य यह है कि कार्तिक मास में बोई जाने वाली फ़सल के लिये खेतों की मिट्टी नरम, बारीक़ और भुरभुरी दशा में रहे। इसके सिवाय खर-पतवार घास, फूस के पौधों से भी खेत को रहित करके अधिक से अधिक नमी क़ायम रखना भी 'रबी की जुताइयों का अभिप्राय है। जब खेत के धरातल तथा गर्भतल की मिट्टी नरम और बारीक़ रहेगी, और खेत की मिट्टी में 'रबी' की फ़सलों के बीज बोये जावेंगे, तो वह बीज भली प्रकार से उगेगें। इन उगने वाले पौधों की जड़ें सरलता पूर्वक खेत के धरातल और गर्भतल में प्रवेश करके इधर उधर फैल करके खेत की मिट्टी से ख़ूराक़ ग्रहण कर सकेंगी जब खेत के धरातल और गर्भतल की मिट्टी में अधिक से अधिक

मात्रा में नमी पाई जायगी तो रबी की फ़सलों की सिंचाई भी कम करनी पड़ेगी। क्योंकि "रबी" की फ़सलों का बढ़ाव और उनका फलना फूलना तथा अधिक से अधिक पैदावार देना या तो खेत की नमी पर अथवा सिंचाई की नमी पर निर्भर है। कार्तिक मास में बोई जाने वाली 'रबी' की फ़सलों को 'खरीफ़' की फ़सलों की भाँति बढ़ने और बढ़कर फलने-फूलने और पैदावार देने के लिये वर्षा का जल नहीं प्राप्त होता है। क्योंकि इन दिनों में वर्षा होती ही नहीं। यदि होती भी है तो बहुत थोड़ी। जो कि 'रबी' की फ़सलों के लिये पर्य्याप्त नहीं हो सकती।

उपर्युक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखकर 'रबी' की जुताइयों का काम आरंभ करना चाहिये। इस समय की जुताइयों के लिये उपर्युक्त उद्देश्यानुसार कई एक अन्य तरकीबें करनी पड़ती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि गरमी और बरसात की जुताइयों के कारण जो कि मिट्टी पलटने वाले हलों से और 'हैरो' नामी यन्त्र द्वारा की जाती है। खेतों में इनके द्वारा जो डले पड़े रहते हैं। वह 'हैरो' द्वारा छन कर खेत के धरातल पर लाकर छोड़ दिये जाते हैं। ऐसे समय इन 'हैरो' द्वारा खेत के डलों का कुछ भाग तो तोड़ फोड़ कर चूर-चूर कर दिया जाता है, और कुछ भाग शेष रह जाता है। जो कि वर्षा-काल के समाप्त हो जाने पर भी खेतों के धरातल पर पड़ा रहता है। इस कारण सबसे पहिले इस बात की फ़िक्र करनी पड़ती है कि यह सारे डले जो कि खेत के धरातल पर पड़े हैं, किसी यत्न द्वारा तोड़-फोड़ कर महीन चूर्ण की दशा में

परिवर्तित कर दिये जावें। इस काम के लिये किसानों को खेतों में पटेला ( हेंगा, सरावन ) चलाने की आवश्यकता होती है। क्योंकि पटेले के चलाने से खेतों के सारे नरम और पानी से भरे हुये तर डले वर्षा के पश्चात् बड़ी आसानी से तोड़े और चूर-चूर किये जा सकते हैं।

अतएव. वर्षा-काल के समाप्त होते ही 'रबी' फ़सल के बोए जाने वाले तमाम खेतों में 'पटेला' देना आरंभ कर देना चाहिये और जितनी जल्दी हो सके उतनी ही जल्दी सारे खेतों में पटेला देकर के गरमी और वर्षा काल के सारे नरम और तर डेलों को सरलता पूर्वक तोड़ देना चाहिये। नहीं तो जब यह डेले सूर्य्य की गरमी और वायु के प्रभाव से अपनी नमी को खोकर सूख जांयगे तो इनका तोड़ना असंभव हो जायेगा। इससे मालूम हुआ कि खेतों में वर्षा के पश्चात् पटेले का चलाना कितना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य्य है।

इतना ही नहीं कि केवल खेत के धरातल के डेलों को तोड़ने के ही लिये खेतों में पटेला चलाया जाय। बल्कि वर्षा-काल के पश्चात् खेतों का धरातल एकसां तथा चौरस नहीं रहता। इसलिये खेतों के धरातल को एकसां और चौरस करने के लिये भी खेतों में वर्षा समाप्त होने के पश्चात् पटेले का चलाना अनिवार्य्य है। क्योंकि जब वर्षा-काल के पश्चात् खेतों का धरातल एकसां और चौरस हो जावेगा, तभी इस समय में खेतों की तय्यारी करने वाले कृषि-यन्त्र ठीक रीति से खेतों की तय्यारी कर सकेंगे।

वर्षा के पश्चात् शीघ्र पटेले के चला देने से धरातल के नरम डले तो टूट कर चूर-चूर होकर बारीक मिट्टी का रूप धारण कर ही लेंगे। इसके सिवाय पटेले की रगड़ से खेत के धरातल के ऊँचे स्थान की मिट्टी खेत के नीचे स्थान के गड्ढों को भर कर खेत के धरातल को अत्यन्त ही उत्तम रीति से एकसा और चौरस तो कर ही देगी। प्रत्युत इसके 'रबी' की जुताइयों के आरम्भ करने के पूर्व पटेला चला देने से सूर्य्य की गरमी से तथा गरम हवा के प्रभाव से खेत के मिट्टी से नमी अधिकांश में नहीं उड़ने पावेगी। क्योंकि पटेले के चला देने से खेत के धरातल की ऊपरी मिट्टी भुरभुरी हो जावेगी। जिससे खेत के धरातल के नीचे भाग की और गर्भतल की मिट्टी सूखने नहीं पायेगी।

## पटेला देना

मिट्टी पलटने वाले अथवा हैरो और देशी हलों से गरमी की और बरसाती जुताइयों के करने से खेत का धरातल कुछ न कुछ ऊंचा-नीचा रहता ही है। इस ऊँचाई के कारण से खेतों की दुबारा जुताइयां ठीक प्रकार से नहीं हो सकती है। जो कि खेतों को 'रबी की बुवाई'' के योग्य बना सकें।

खेतों के धरातल की इस विभिन्नता के कारण हल दूसरी बार एक सी जुताई नहीं कर सकता। इस प्रकार की तमाम कठिनाइयों और अड़चनों को दूर करने ही के लिये खेतों में अत्यन्त प्राचीन काल से ही पटेला लगाया जाता है। जिससे प्राचीन कृषि-विशा-

है। इससे खेत के धरातल की मिट्टी के कणों के बीच में से हवा सरलता पूर्वक आ-जा सकती है। वायु के इस गमनागमन का यह प्रभाव होता है कि खेत की नमी कम होने लगती है, और वायु के द्वारा ही क्यों खेतों की खुली ही दशा में सूर्य्य के ताप से भी खेतों की नमी घटना आरंभ हो जाती है। क्योंकि सूर्य्य की प्रखर किरणों के प्रभाव से खेत के धरातल का पानी जो नमी के रूप में खेतों में पाया जाता है भाप बनकर उड़ जाया करता है। इसके परिणाम स्वरूप 'रबी' के खेतों के सूख जाने का भय रहता है। इस भय को दूर करने के लिये भी खेतों में वर्षाकाल के पश्चात् पटेला देना बहुत ही आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त खेत के अत्यन्त नीचे भाग से खेत के धरातल तथा गर्भतल में पानी को ऊपर लाने वाली नलियां (capillary tules) भी खेतों की जुताइयों के कारण टूट जाया करती हैं। जिससे खेत के गर्भतल के नीचे का पानी खेत के गर्भतल और धरातल में नहीं आ सकता है। मिट्टी के कणों के अलग-अलग हो जाने से उनका व्यास बढ़ जाता है, और पानी ऊपर नहीं चढ़ने पाता है। पानी के ऊपर न चढ़ने से जुती हुई मिट्टी सूख जाती है। ऐसी दशा में मिट्टी को नरम रखने के लिये और पानी को ऊपर लाने वाली नालियों का सम्बन्ध ठीक से स्थापित करने के लिये और मिट्टी के कणों के व्यास को सँकरा और घना करने की ग़रज़ अथवा उद्देश्य से जिससे 'कैपिलैरी ट्यूबस' द्वारा पानी पर्य्याप्त मात्रा में खेत के धरातल और गर्भतल में आ सके।

खेतों में पटेला चलाना आवश्यक हो जाता है। इसलिये वर्षा समाप्त हो जाने के पश्चात् जिस प्रकार से हो सके, उसी प्रकार से "रबी" के सारे खेतों में पटैला चला करके उपर्युक्त सारे आवश्यक कार्य्यों को पूरा कर लेना ही चतुर भारतीय किसानों का प्रथम कर्तव्य है।

वर्षाकाल के समाप्त हो जाने के पश्चात् शीघ्र सारे 'रबी' के खेतों में पटेला फेर देने से खेत के धरातल और गर्भतल की मिट्टी के सारे कण दब जाते हैं, और इन कणों के बीच का अन्तर कम हो जाता है। जिससे खेत के भूगर्भ भाग से पानी को ऊपर लाने वाली नलियों का सम्बन्ध फिर से स्थापित हो जाता है। जिससे खेत के भूगर्भ भाग से पानी खेत के धरातल और गर्भतल में आसानी से आने लगता है। जिसका परिणाम यह होता है कि खेत के धरातल और गर्भतल की मिट्टी 'रबी' के फ़सलों की बुवाइ के समय तक नम रही चली आती है। अन्त में यह कह देना कोई भी असंगत बात नहीं है। कि पटेला देने से खेत का धरातल बराबर, चौरस, और एकसां हो जाता है। धरातल के सारे वे डले जो कि वर्षाकाल में हैरो के प्रयोग और व्यवहार से नहीं टूट पाते हैं। वह वर्षाकाल के समाप्त हो जाने पर पटेला की रगड़ से टूट-फूट कर चूर-चूर हो जाते हैं। 'कैपिलैरिट्यु वस्' के अर्थात ऊपर पानी लाने वाली नलियां के छिन्न-भिन्न हो जाने से पानी ऊपर को नहीं आ सकता। इसलिये भी खेत के धरातल तक नमी का स्थिर रखना भी आवश्यक है। अतएव इन लाभों को

दृष्टिगत रखते हुये, वर्षाकाल के समाप्त हो जाने पर 'रबी' के सारे खेतों में पटेला चला देना ही खेती के सर्व कार्य्य सिद्धि का एक एक मूल मंत्र है। इसलिये समयानुसार ठीक रीति से पटेला चलाने में कभी भूल करके भी आना-कानी नहीं करनी चाहिये नहीं तो गरमी और बरसात की जुताइयों का सारा करा कराया परिश्रम नष्ट-बर्बाद हो जावेगा। तब कुछ भी करते धरते नहीं बनेगा, केवल हाथ मल कर पछताना ही शेष रहेगा। इसलिये पटेले के प्रयोग और व्यवहार को उसी प्रकार से किसानों को बर्तना चाहिये कि जिस प्रकार से मिट्टी पलटने वाले हलों के तथा 'हैरो' नामी जुताई के कृषि यन्त्र का व्यवहार और प्रयोग ठीक तथा उचित रीति से वैज्ञानिक प्रणालियों और प्रथाओं के अनुसार बरता गया हो।

अधिकतर वर्षाकाल समाप्त हो जाने पर 'रबी' के सारे खेत एकाएक एक ही समय में जुताई के योग्य पक कर तय्यार हो जाते हैं। ऐसे समय में 'रबी' के सारे खेतों की जुताई कर डालना किसी भी भारी से भारी किसान तथा ज़मींदार के लिये भी कठिन ही नहीं असंभव सा है। इस कारण ऐसी दशा में खेतों की एकदम जुताई हो ही नहीं सकती।

यदि इन खेतों को बारी-बारी से जोता जाय। तो अन्य सारे वे खेत जो कि जोतने के योग्य हो गये हैं, सूखने लगेंगे। जिससे उनकी नमी भाप बन कर उड़ जायगी, और खेत का पानी वाला वास्तविक और अनिवार्य्य अंश नष्ट-बर्बाद हो जायगा। खेतों के

सूख जाने के पश्चात् जो जुताई की जायगी। उससे खेतों में डले पड़ जावेंगे। इन सारी मुसीबतों और कठिनाइयों की यही एक अमूल्य औषधि है कि बरसात के ख़तम होते ही जितनी जल्दी हो सके उतनी ही जल्दी 'रबी' के सारे खेतों में आवश्यकतानुसार पटेला (हेंगा, सरावन) चला दिया जावे। पटेले के चला देने से खेत के धरातल की लगभग आधी इञ्च से लेकर पौन इञ्च तक की मिट्टी उखड़-पुखड़ जायगी। धरातल की इस ऊपरी मिट्टी के उखड़-पुखड़ जाने से धरातल का ऊपरी भाग भुरभुरा हो जावेगा, और धरातल के इस ऊपरी भाग के मिट्टी के कण अलग-अलग हो जावेंगे। जिससे पानी को ऊपर लाने वाली नालियों का सम्बन्ध टूट जावेगा। इसका फल यह होगा कि पानी खेत के धरातल द्वारा भाप बन कर उड़ने नहीं पावेगा। वह खेत के धरातल के नीचे भाग में ही जमा रहेगा, और इस ऊपरी मिट्टी के भुरभुरी रहने से सूर्य्य का ताप भी खेत के नीचे भाग में नहीं प्रविष्ट हो सकेगा।

इस प्रकार से जब पटेला चला कर खेत की मिट्टी को सब प्रकार से बीज बोने के लिये ठीक करने का प्रयत्न किया जायगा। तो अवश्य ही खेतों में बीज बोने के समय तक पर्याप्त मात्रा में नमी क़ायम रहेगी। साथ ही 'रबी' की जुताइयों से खेत की मिट्टी भी ठीक प्रकार से जुतकर भुरभुरी, नम और बारीक़ दशा में हो जायगी। अब हम पटेले का चित्र आगे चित्रित करते हैं, और इसके अन्यान्य कामों का भी आवश्यकतानुसार प्रसंगवश 'रबी' की जुताइयों के सम्बन्ध में वर्णन करते रहेंगे।

पटेला नामी यंत्र को कहीं 'सरावन' कहीं हेंगा, इसी प्रकार से इसका नाम भारत के भिन्न भिन्न भागों में वहां के अनुसार इसका नाम रक्खा गया है। पटेला नामी कृषि-यन्त्र भारत का प्राचीन

चित्र सं० ९३ पटेला
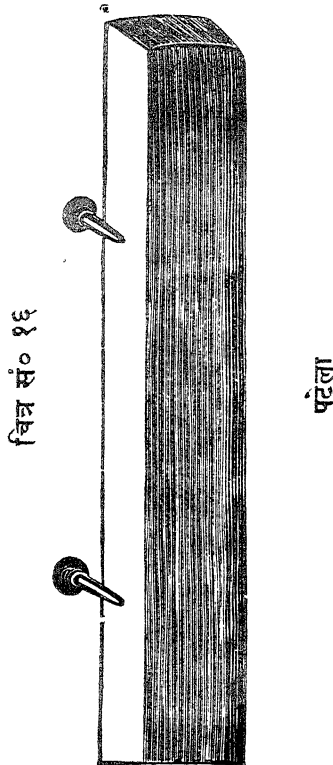
कृषि-यन्त्र है। इस यन्त्र से सारे भारतवासी किसान भली प्रकार से परिचित हैं। यह यन्त्र हरेक किसान के पास पाया जाता है।

पटेला नामी कृषि-यन्त्र लकड़ी के लम्बे शहतीर से गांव के लुहारों द्वारा बनवाया जाता है। पटेला जिस लकड़ी का बनाया जाय वह लकड़ी साल की होनी चाहिये।

यदि यह पटेला नामी यन्त्र बबूल अथवा महुवा की सालदार लकड़ी का किसी चतुर लुहार (मिस्त्री, बढ़ई) द्वारा बनवाया जाय तो यह ही बहुत मज़बूत और सुन्दर बन जाता है, और अधिक दिन तक काम देता है। मज़बूत सालदार लकड़ी को जब लुहार भली प्रकार से खराद करके ठीक कर देता है, और जब यह बन कर तय्यार हो जाता है। तो इसकी लम्बाई लगभग ६ या ७ फ़ीट के होती है। यह ६, ७ फ़ीट का लम्बा पटेला नामी कृषि-यन्त्र लगभग १ फ़ीट के चौड़ा और ५, ६ इंच के मोटा होता है। इस 'पटेले' के अगले भाग में बैलों को जोड़ने के लिये मुठियादार दो खूंटे लगे रहते हैं। जो कि चित्र में भली-भांति से विदित हो रहे हैं। इन्हीं खूंटों में रस्सी को बांध कर के बैलों के जुये में इस 'पटेले' को जोड़ देते हैं। जब बैलों को पटेले में जोड़ देते हैं, तो इस पटेले पर दो आदमी खड़े होकर बैलों की रास वाली रस्सी को पकड़ कर जुते हुये खेत पर चलाते हैं। जिस पटेले का चित्र ऊपर चित्रित किया गया है। वह केवल एक जोड़ी बैलों द्वारा खेत में खींचा जा सकता है। अधिकतर किसान लोग इससे कुछ लम्बा-चौड़ा और मोटा पटेला बनवा लिया करते हैं। जो कि दो जोड़ी बैलों द्वारा खींचा जाता है, और यही पटेला ठीक रीति से खेतों में काम भी करता है। क्योंकि जब दोनों जोड़ी बैलों को हांकने के लिये दो

आदमी पटेले पर खड़े हो जाते हैं, तो पटेले पर इतना बोझ पड़ जाता है कि खेत के धरातल के सारे डले तो फूट कर चूर्ण हो ही जाते हैं। इसके सिवाय खेत की मिट्टी भी भली प्रकार से दब जाती है, जिससे खेत का धरातल चौरस दिखलाई पड़ता है। पटेले को खेत में चलाने की ठीक रीति यह है। कि जिस ओर जुताई की गई हो, उसी ओर को पटेला भी चलाया जाय।

हम इस बात का ज़िक्र कर चुके हैं। कि पटेला भारतवर्ष का पुराना कृषि-यन्त्र है। इस पटेले नामी कृषि-यन्त्र से सारे भारत-वासी किसान भली प्रकार से परिचित हैं। वर्तमान काल में खेत के ठेलों को भली प्रकार से तोड़-फोड़ कर के चूर-चूर कर देने के लिये पटेले के स्थान पर एक और कृषि-यन्त्र का प्रयोग और व्यव-हार किया जाता है। यद्यपि भारतीय किसानों के लिये अभी इस यन्त्र को काम में लाने की हमारे विचारानुसार कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं हो रही है। तथापि फिर भी इस यन्त्र के बारे में इसका नाम और इसका काम भली प्रकार से हमारे किसानों को समझ लेना चाहिये, और आवश्यकता पड़ने पर इस यंत्र से खेतों के डलों के तोड़ने का काम भी लेना चाहिये।

इस यंत्र का नाम 'बेलन' ( Roller ) है। जब खेत में डले अधिक और बड़े-बड़े पड़ जाते हैं, और कृषकों की असावधानी से ठीक प्रकार से गरमियों और बरसात की जुताइयों के न करने से यह डले अपनी नमी को खोकर के सूख कर कड़े पड़ जाते हैं। तो इन डलों को तोड़ कर चूर-चूर करना कठिन हो जाता है।

क्योंकि यह डले पटेले की रगड़ से तोड़े नहीं जा सकते। ऐसी अवस्था जब किसी खेत में उत्पन्न हो जावे, तो अवश्य ही इन डलों को तोड़-फोड़ कर चूर-चूर कर देने के लिये किसानों को बेलन (Roller) का प्रयोग और व्यवहार करना चाहिये।

बेलन नामी कृषि-यन्त्रों से खेत के डले सरलता से टूट जाते हैं। बेलन नामी-कृषि-यन्त्र लकड़ी, पत्थर, लोहे का बनवाया जा सकता है। किसानों को अपने बैलों की शक्ति के अनुसार बेलन उपर्युक्त चीज़ों का बनवा लेना चाहिये। या किसी कृषि-यन्त्र के बेचने वाली कम्पनी से भी यह यन्त्र ख़रीदा जा सकता है।

पटेला खेत के धरातल पर रगड़ता हुआ चलता है। इससे "पटेले" की रगड़ के द्वारा धरातल के डले कम टूटते हैं। परन्तु 'बेलन' खेत के धरातल पर घूमता हुआ चलता है, इससे बेलन के व्यवहार और प्रयोग से पटेले की अपेक्षा खेत के डले भली प्रकार से टूट-फूट कर चूर-चूर हो जाते हैं। इसके सिवाय खेत के धरातल पर घूम-घूम कर चलने के ही कारण वश 'बेलन' खेत के धरातल का मिट्टी को पटेले की अपेक्षा भली प्रकार से दबा देता है। पटेले की रगड़ से खेत के धरातल की मिट्टी ठीक प्रकार से दबती भी नहीं है। 'बेलन' खेत के धरातल की मिट्टी को दबा कर धरातल को इस प्रकार से दबा करके बराबर, एकसां, और हमवार कर देता है कि खेत की नमी अधिकांश में उड़ने लगती है। परन्तु पटेले की रगड़ से खेत का धरातल इतना ही बराबर एकसां और हमवार होता है कि खेत के धरातल की नमी अधि-

काश में उड़ने नहीं पाती है। इसलिये बरसाती जुताइयों के पश्चात सारे खेतों में पटेले का चला देना ही उत्तम प्रथा है। वेलन ( Roller ) आवश्यकता पड़ने पर ही किसी खेत में चलाना चाहिये।

अब तक के विवेचन में हमने यह साफ़-साफ़ शब्दों में स्पष्ट रूप से बता दिया है कि किन-किन आवश्यकताओं के उपस्थित हो जाने के कारण बरसाती जुताइयों के पश्चात् वर्षा के समाप्त होते ही खेतों में पटेला चला देना आवश्यक है। अब हम इस बात पर विचार करेंगे। कि पटेले के चला देने के पश्चात् 'रबी' की बुवाई के समय तक खेतों की तय्यारी बीज बोने के लिये किस प्रकार से करनी चाहिये। जिससे 'रबी' की फ़सलों द्वारा अधिक से अधिक उपज प्राप्त की जा सके। हमने 'रबी' की जुताइयों का सारा उद्देश्य अथवा अभिप्राय प्रस्तुत पुस्तक के अगले पृष्ठों में बतला दिया है। इस कारण अब खेतों की तय्यारी के ही विषय में अधिकतर विचार किया जायगा।

गरमी और बरसात की जुताइयों के करते रहने पर भी चाहे कितना ही यत्न क्यों न किया जाय। वर्षाकाल के समाप्त हो जाने पर भी खेतों में खर, पतवार, घास, फूस के बहुत से पौधे उगे हुये दिखलाई ही पड़ते है, जो कि खेत की जमा की हुई ख़ूराक को नमी के द्वारा-ग्रहण करके खेत की नमी और ख़ुराक़ को नष्ट बर्बाद किया ही करते हैं। इसलिये वर्षाकाल के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी इन तमाम खर-पतवार घास-फूस के पौधों को खेतों से

निकाल फेंकना आवश्यक हो जाता है। इसलिये किसानों को इस घास-फूस के निकालने की फ़िक्र करना आवश्यक है।

इसलिये इन खर, पतवार, घास, फूस के पौधों को निकाल बाहर फेंकने के लिये कृषि वैज्ञानिकों ने कुछ नये कृषि-यन्त्रों का आविष्कार किया है। वर्षाकाल के समाप्त हो जाने के पश्चात् सारे खेतों में पटेला देकर खेत की नमी को रोकने के बाद इन्हीं नवीन कृषि यन्त्रों द्वारा खेतों से खर-पतवार घास-फूस के पौधों को निकालना चाहिये। क्योंकि वर्षाकाल के पश्चात् वैज्ञानिकों की अनुमति के अनुसार खेतों में मिट्टी पलटने वाले हलों का चलाना वैसा ही है। जैसे कि जिस डाल पर बैठा हो, उसी को उसके मूल से काट रहा हो— अथवा बरसात के समाप्त हो जाने पर मिट्टी पलटने वाले हलों का प्रयोग और व्यवहार करना मानों अपने हाथों अपने पैर में कुल्हाड़ी मारना है। इसलिये वर्षाकाल के व्यतीत हो जाने पर खेतों में पटेला चला देने के पश्चात् खेतों में भूल करके भी मिट्टी पलटने वाले हलों को न चलाना चाहिये। इसका मुख्य कारण यही है कि इन मिट्टी—पलटने वाले हलों के द्वारा जुताई बहुत ही गहरी होती है। जिससे खेत के धरातल की नमी कार-कार्तिक के धूप और हवा के प्रभाव से अधिक उड़ जाया करती है यदि पटेले द्वारा खेत के धरातल की मिट्टी को दबाना भी चाहें, तो वह भली प्रकार से दब नहीं सकती है। ऐसे समय में इन मिट्टी पलटने वाले हलों को गरमी तक के लिये गुदाम में रख करके बरसा के समाप्त हो जाने पर खेतो में पटेला चला देने के

चित्र सं० ९७
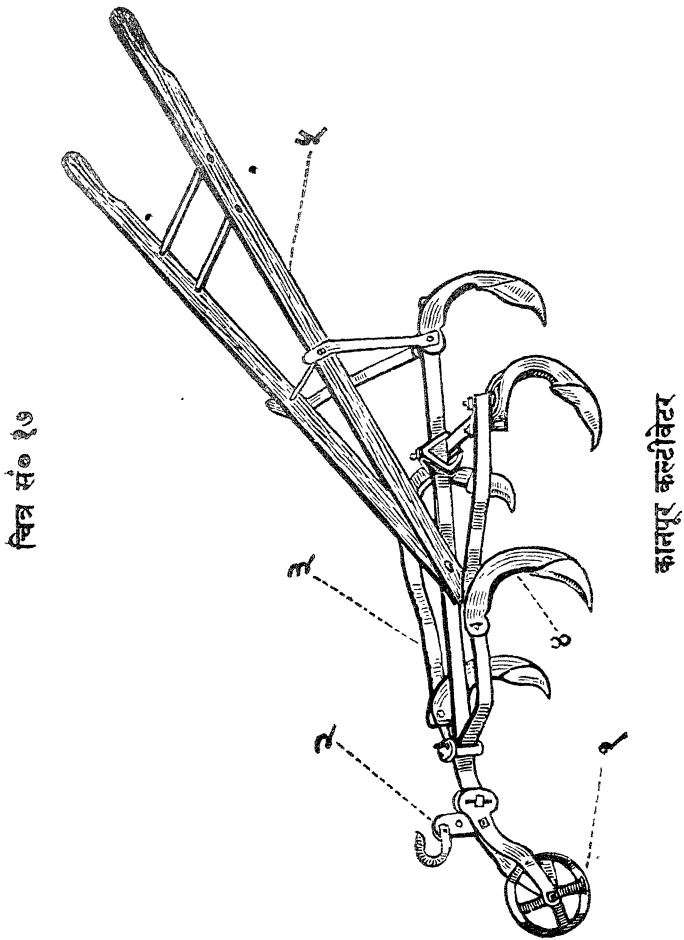
कानपूर कल्टीवेटर

[१] पहिया [२] आंकड़ा [३] ढाँचा [४] खुरपी [५] मुठिया

पश्चात अग्र-चित्रित यन्त्र का प्रयोग और व्यवहार करना चाहिये।

इस कृषि-यन्त्र का नाम 'कानपूर-कल्टीवेटर' है। इस यन्त्र का भाग (१) पहिया है जो कि यंत्र को खेत के धरातल पर चलाते समय मिट्टी पलटने वाले हलों की पहियों की भाँति धरातल पर घूमता हुआ चला करता है।

इस यंत्र के दूसरे भाग का नाम आंकड़ा है। जिसमें रस्सी या जंजीर को लगा कर बैलों के जुये में जोड़ा जाता है। तीसरा भाग इस यन्त्र का ढांचा (Frame) है। (४) भाग इस यन्त्र की खुर्पी (shovel) है। जिससे खेत की मिट्टी खोदी जाती है। (५) भाग परेथा या मुठिया (Handles) जिसे पकड़ कर हलवाहा यन्त्र को खेत में चलता है।

इस यन्त्र के भाग (२) आंकड़े में रस्सी या जंजीर को लगाकर इसे बैलों के जुये में बांध देते हैं। यह एक जोड़ी बैलों के द्वारा बड़ी सरलता पूर्वक खींचा जा सकता है। विशेषता इसमें यही है कि मिट्टी पलटने वाले बड़े हलों कि भांति इसके चलने के लिये भी दो आदमियों की आवश्यकता पड़ा करती है। एक आदमी तो बैलों को हांकता है, और दूसरा आदमी यन्त्र की मुठिया (Handles) को दोनों हाथों से पकड़ कर चलाता है। इस यन्त्र का पहिया जितना ही ऊपर को उठा दिया जाता है। उतनी ही गहरी खुदाई और जुताई खेतों में हुआ करती है। यदि हल्की जुताई अथवा खुदाई करना हो, तो पहिया को नीचे की तरफ़ सरका करके फ़िट

करके चलाना चाहिये। इस यन्त्र को चलाते समय इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि पहिया ज़मीन पर घूमता हुआ चले।

कृषि-कर्म्म के लिये 'कल्टीवेटर' नामक कृषि यन्त्र बड़े काम के तथा लाभकारी यन्त्र हैं। योरोप तथा अमेरिका के बने हुये अनेकों प्रकार के "कल्टीवेटर" नामी कृषि यन्त्र भारतवर्ष की बाज़ारों में मिला करते हैं। जिनमें स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार बहुत ही अन्तर रक्खा गया है। इन तमाम विदेशी 'कल्टीवेटरों' की अपेक्षा भारत के लिये तथा संयुक्त प्रान्त के लिये "कानपुर कल्टीवेटर" बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसके सिवाय विदेशी अन्य कल्टीवेटरों की अपेक्षा यह कृषि यन्त्र बहुत ही सस्ता और सादा यन्त्र हैं। जिसे कि इस देश के सर्वसाधारण कृषक तथा ज़मीदार बिना किसी अड़चन के सरलता पूर्वक ख़रीद सकते हैं।

वास्तव में तो यह कृषि यन्त्र खड़ी फ़सलों की निकाई-गुड़ाई के लिये ही विशेष कर के बनाया गया है। तथापि फिर भी वर्षा बन्द हो जाने के पश्चात् जब खेतों में खर, पतवार, घास, फूस के पौधे निकल आते हैं। उस समय में पटेला दे देने के पश्चात् इन्हीं कल्टीवेटर नामी यन्त्रों द्वारा खेतों की जुताई और गुड़ाई करना चाहिये। क्योंकि इस समय में अर्थात रबी की जुताइयों के समय हलकी जुताई करने वाले ही जुताई के यन्त्रों से खेतों की जुताई करनी चाहिये।

इस कारण 'रबी' की जुताइयों के लिये देशी हलों का ही प्रयोग और व्यवहार करना चाहिये। परन्तु देशी हलों के प्रयोग

और व्यवहार से खेतों के खर, पतवार, घास, फूस के पौधे सरलतापूर्वक निकाले नहीं जा सकते। उनको शीघ्राति शीघ्र निकालने के लिये खेतों की गुड़ाई करना बहुत ही आवश्यक है। गुड़ाई के लिये सब यन्त्रों से अधिक उपादेय "कल्टीवेटर" नामक ही जुताई का कृषि यन्त्र सब से उत्तम है। इस कारण बरसाती जुताइयों के पश्चात् पटेला दे देने के पीछे "कल्टीवेटर" नामी कृषि-यन्त्र से खेतों की खुदाई करके सारे खर-पतवार, घास, फूस के पौधों को निकाल बाहर फेंकना चाहिये। इसके सिवाय यह कृषि यन्त्र वर्षा के आरम्भकाल में पड़ती भूमि की हल्की जुताई करने के लिये भी अत्यन्त ही उपयुक्त है। क्योंकि यह कल्टीवेटर नामक कृषि यन्त्र देशी हल के समान ही गहरी जुताई करता है। दूसरे देशी हल की अपेक्षा यह उतने ही समय में देशी हल की अपेक्षा तिगुना चौगुना क्षेत्रफल जोतता है। इस कारण वर्षा के आरंभ काल में और वर्षाकाल में भी इस यंत्र को जुताई के काम में लाने में कोई हर्ज नहीं है।

खेत की जुताई करने के पश्चात् पहिली फ़सलों की जड़ों इत्यादि के निकालने के लिये भी यह कल्टीवेटर नामक कृषि-यन्त्र बड़ा लाभदायक है। वाट्स हल की भांति इस हल को बैलों के जुये में जोड़ लेना चाहिये। कूढ़ों की चौड़ाई कम या अधिक करने के लिये जो सादा पुरज़ा इस यन्त्र में लगा हुआ है वह भली प्रकार से देखा जा सकता है। इस प्रकार से बरसाती जुताईयों के समाप्त हो जाने के पश्चात्, सारे खेतों में जब पटेला चला दिया जाय तो उसके

पश्चात् सारे खेतो में 'रबी' की फ़सलों की तय्यारी के हेतु खेतों में "कल्टीवेटर" नामक कृषि-यन्त्र चला देना अत्यन्त ही आवश्यक है। इस यन्त्र द्वारा खुदाई और गुड़ाई करने से खेत भली प्रकार से खुद और गुड़ जायगा। जिससे सारे खर-पतवार निकल आवेंगे। कल्टीवेटर से गुड़ाई करने के पश्चात् तुरन्त ही खेतों में "मद्रासी" या कोई अन्य हैरो को चला करके खेत का खर-पतवार घास-फूस साफ़ कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् खेतों में पटेला चला देना चाहिये। रबी की हर जुताइयों के पश्चात् चाहे वह देशी-हल से की जांय चाहे कल्टीवेटर से, उनके पश्चात् हैरो और पटेला खेतों में चलाना अनिवार्य्य है।

कभी भूल से भी वर्षा के पश्चात् 'रबी' की जुताइयों के ज़माने में खेतों की जुताई करके खेतों को खुला न छोड़ना चाहिये। न अन्य प्रकार के हलों का प्रयोग और व्यवहार ही इन जुताइयों के सम्बन्ध में करना चाहिए। केवल देशी-हल और कल्टीवेट का प्रयोग और व्यवहार रबी की जुताइयों के समय करना चाहिये। इन हलों से जुताइयां करने के पश्चात् खेतों में हैरो नामी कृषि-यन्त्र चला करके खेत की घास-फूस तथा खर-पतवार के पौधों को इकट्ठा कर लेना चाहिये। क्योंकि इस समय में खेत की सफ़ाई करना भी अत्यन्तावश्यक है। इस कारण इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। खर-पतवारों के पौधों को खेतों में पड़े रहने से दीमक के लग जाने की सम्भावना रहती है। इसलिये यदि किसी किसान के पास हैरो न हो तो आदमियों से ही इन खर-पतवारों के पौधों

को बिनवा करके खेत को साफ़ कर लेना चाहिये, यदि खेत की जुताई और खुदाई शाम को समाप्त हो जाय, तो रात भर खेतों को खुला छोड़ देने के पश्चात् सुबह खेतों में पटेला देना चाहिये। इससे लाभ यह होगा कि रात में गिरी हुई ओस भी खेत में भली प्रकार से जज़्ब हो करके हमारे फ़सलों के काम आ जावेगी।

ऊपर हमने अब तक इसी बात का वर्णन किया है कि वर्षा-काल के पश्चात् सारे खेतों में नमी के रोकने के लिये पटेला चलाना चाहिये। तिसके पीछे 'कल्टीवेटर" नामक यंत्र चला कर खेतों की जुताई और खुदाई करना चाहिये। जब किसी खेत की जुताई और खुदाई 'कल्टीवेटर' नामक यंत्र द्वारा समाप्त हो जावे तो उस खेत में कोई भी हैरो चलाकर घास-फूस, खर-पतवार बिनवाकर खेत साफ़ कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् खेत में पटेला चलाकर खेत को छोड़ देना चाहिये। इसी प्रकार से जब सारे 'रबी' के खेत एक बार 'कल्टीवेटर' द्वारा जोत डाले जांय, तो उसके पश्चात् खेतों में बुवाई के समय तक अपने देशी हलों का प्रयोग और व्यवहार करना चाहिये। क्योंकि देशी हल गहरी जुताई नहीं करता है। देशी-हल द्वारा जब कई बार खेतों को जोता जाता है तब कहीं गहरी जुताई हो पाती है। दूसरे इन (देशी हल) हल के द्वारा खेत का घास-फूस, खर-पतवार नामक पौधे भी दब नहीं पाते हैं। वह भी ऊपर ही पड़े रहते हैं। इसलिए 'रबी' की जुताइयों के समय अधिकतर देशी-हलों का प्रयोग और व्यवहार करना चाहिये; देशी-हलों से जुताई करने के पश्चात् भी खर-पतवारों

को जिनवाने और खेतों की सफ़ाई के लिये "हैरो" का चलाना आवश्यक है।

जब खेतों की जुताई देशी-हल द्वारा करके खेतों में 'हैरो' चला दिया जाय। तो उसके पश्चात् 'पटेला' का चला देना ही 'रबी' की जुताइयों के लिये अनिवार्य्य है। इसी रीति से बराबर रबी की जुताइयों के समय 'कल्टीवेटर' तथा "देशी-हल" से खेतों की जुताई और खुदाई करनी चाहिये। और जुताई और खुदाई करने के पश्चात् 'हैरो' चला कर पटेला देना चाहिये। 'रबी' की हर जुताइयों के पश्चात् पटेला चलाना चाहिये।

'रबी' की जुताइयों के लिये जो रीति ऊपर वर्णन की गई है। वही रीति किसानों के लिये हितकर है। क्योंकि 'रबी' की जुताइयाँ इसी अभिप्राय से की जाती हैं। कि जिससे खेतों की मिट्टी फ़सलों के बोने के लिये नरम और बारीक़ हो जावे तथा खेतों बीजों के जमने और जमकर बढ़ने के लिये पर्य्याप्त मात्रा में नमी क़ायम रहे। इसीलिये वर्षा के पश्चात् रबी की फ़सलों के बोने के हेतु खेतों की जुताई नहीं बल्कि तय्यारी करनी पड़ती है। ऐसे समय में देशी-हल तथा कल्टीवेटर एवं हैरो और पटेला का प्रयोग और व्यवहार ही 'रबी' की फ़सलों की तय्यारी के लिये लाभप्रद है।

जिन खेतों मे वर्षा-काल के पश्चात् घास, फूस, खर, पतवार अधिकता से पाये जावें, और वह देशी हल द्वारा जुताई करने से भली प्रकार से साफ़ न हो सकें; तो उनमें कल्टीवेटर और हैरो का ही अधिकता से प्रयोग और व्यवहार करना लाभदायक है। वैसे

जब खेतों की जुताई देशी-हल द्वारा कर के खेतों में हैरो चला दिया जाय। तो उसके पश्चात् 'पटेला' का चला देना ही 'रबी' की जुताइयों के लिये अनिवार्य्य है। इसी रीति से बराबर रबी की जुताइयों के समय में 'कल्टीवेटर' देशी-हल से ही खेतों की जुताई और खुदाई करनी चाहिये, और जुताई और खुदाई करने के पश्चात् हैरो चला कर पटेला देना चाहिये। 'रबी' की हर जुताइयों के पश्चात् पटेला चलाना चाहिये।

'रबी' की जुताइयों के लिये जो रीति ऊपर वर्णन की गई है। वही रीति किसानों के लिये हितकर है, क्योंकि 'रबी' की जुताइयाँ केवल इसी अभिप्राय से की जाती हैं, कि जिससे खेत की मिट्टी फ़सलों के बोने के लिये नरम और बारीक़ हो जावे। और खेतों में बीजों के जमने और जम कर बढ़ने के लिये पर्य्याप्त मात्रा में नमी क़ायम रहे। इसीलिये वर्षा के पश्चात् रबी की फ़सलों के बोने के हेतु खेतों की जुताई नहीं बल्कि तय्यारी करनी पड़ती है। ऐसे समय में देशी-हल तथा कल्टीवेटर एवं हैरो और पटेला का प्रयोग और व्यवहार ही 'रबी' की फ़सलों की तय्यारी के लिये लाभप्रद है।

जिन खेतों में वर्षा-काल के पश्चात् घास, फूस, खर-पतवार अधिकता से पाये जावें और वह देशी-हल द्वारा जुताई करने से भी भली प्रकार से साफ़ न हो सकें, तो उनमें कल्टीवेटर और हैरो का ही अधिकता से प्रयोग और व्यवहार करना लाभदायक है। वैसे तो कानपूर कल्टीवेटर संयुक्त-प्रान्त क्या देश

भर के लिये एक उत्तम कृषि-यन्त्र है। पर जो लोग देश भारत के अन्य प्रान्त वासी हैं, और धनी हैं, वे यदि चाहें तो दूसरा

चित्र सं० ६८
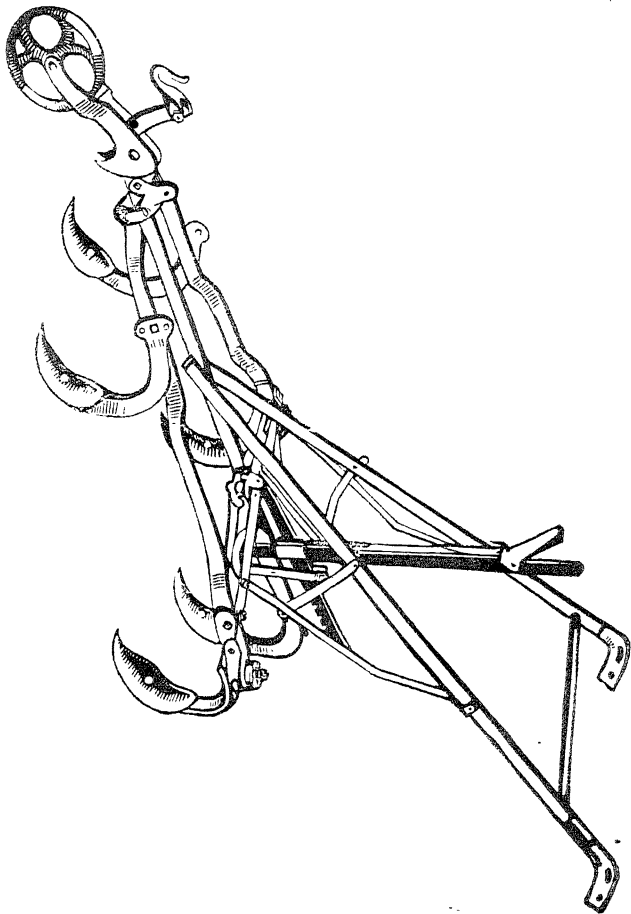
मैकारमिक कल्टीवेटर

भी कल्टीवेटर मँगा सकते हैं, और उसके द्वारा खेतों की जुताई और निकाई-गुड़ाई कर सकते हैं। जिन 'कल्टीवेटरों' का चित्र चित्रित किया जा रहा रहा है। यह कल्टीवेटर भारत की बाज़ारों में कृषि-यन्त्र बेचने वालों के यहां मिल सकते हैं। इन कृषि-यन्त्रों में कुछ और भी अधिक पुर्ज़े लगे हुये होते हैं। जिससे कृषि सम्बन्धी अन्यान्य सारे काम भी भली प्रकार से इन यन्त्रों की सहायता तथा प्रयोग और व्यवहार द्वारा किये जा सकते हैं। इसलिये देश के धन सम्पन्न धनी-मानी व्यक्तियों को चाहिये कि वे अवश्य इन कल्टीवेटर नामक कृषि-यन्त्रों को खरीद कर अपने यहां के कृषि-कार्म में इनका प्रयोग और व्यवहार करके, इनका प्रचार बढ़ावें।

उपर्युक्त चित्रों में 'मैकारमिक कल्टीवेटर' [Mccormic cultivator] और 'राजा-बुलक हो" ! [Raja'h Bullock hoe.] का चित्र चित्रित किया गया है। यह दोनों यन्त्र कानपूर कल्टीवेटर से मज़बूत बने हुये हैं। इतना ही नहीं अपनी बनावट की मज़बूती के कारण यह यन्त्र बहुत दिनों तक काम भी देते हैं और उन्नति-प्राप्त कल्टीवेटरों में इनकी गणना उत्तम श्रेणी के कल्टीवेटरों में की जाती है। कानपूर कल्टीवेटर की अपेक्षा यह मज़बूत और अच्छे बने होने के सिवाय इनमें कुछ पुरज़े और अधिक लगाये गये हैं। जिनके द्वारा कूढ़ों की गहराई और चौड़ाई कम और ज़्यादा भी की जा सकती है। गहराई-चौड़ाई कम ज़्यादा करने के पुरज़ों के सिवाय इन उपर्युक्त कृषि-यन्त्रों में कुछ और पुरज़े

भी लगाये गये हैं। जिनके द्वारा खेतों में क्यारियां—अर्थात बरहे और कूले जो कि सिंचाई और पलेवा करने के लिये बनाये जाते हैं।

चित्र सं० १६
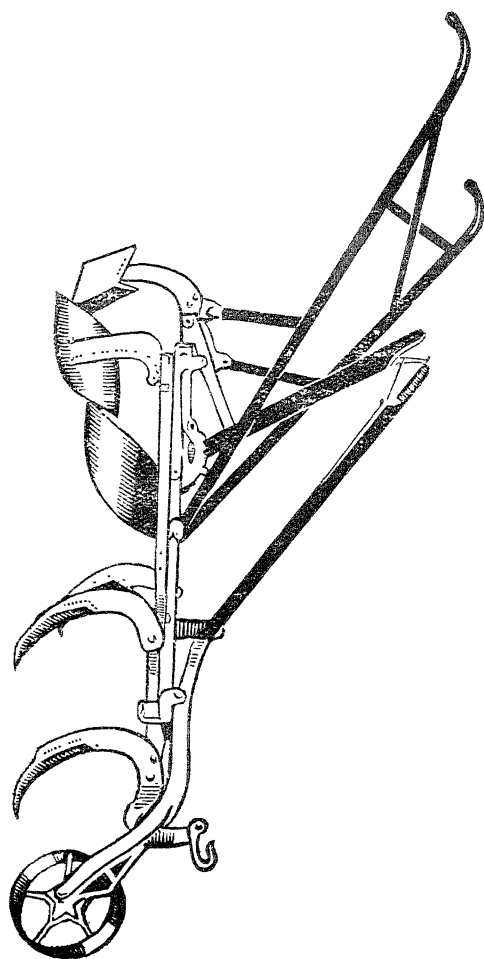
राजा बुलक हो

इन पुरज़ों के व्यवहार और प्रयोग से खेतों में क्यारियाँ भी बनाई जा सकती हैं।

इतना नहीं आलू जैसी फ़सल पर मिट्टी चढ़ाने के लिये भी इन कृषि-यन्त्रों में पुरज़े लगे हुये हैं। जिनके द्वारा शकरकंद अथवा आलू तथा अन्यान्य फ़सलों पर मिट्टी भी चढ़ाई जा सकती है। वास्तव में तो यह यन्त्र फ़सलों की निकाई-गुड़ाई के लिये ही आविष्कृत किये गये हैं, और इस विषय का विवेचन निकाई गुड़ाई के ही सम्बन्ध में विस्तृत रूप से किया जायगा। यहां पर प्रसंगानुसार इतना ही बतला देना इन कृषि-यन्त्रों के सम्बन्ध में पर्य्याप्त होगा कि इन कृषि-यन्त्रों द्वारा कानपूर कल्टीवेटर की भाँति बल्कि उससे भी चोखेरूप में 'रबी' की जुताइयों के समय खेतों से खर, पतवार, घास, फूस निकाला जा सकता है। इसलिये वर्षा काल के समाप्त हो जाने के पश्चात् जिन खेतों में खर, पतवार, घास, फूस के पौधे अधिकता से उगे हुये हों, और उनका निकालना देशी-हल से अथवा कानपूर-कल्टीवेटर द्वारा मुश्किल हो गया हो। तो ऐसे समय के उपस्थित हो जाने पर मैकारमिक कल्टीवेटर अथवा "राजा-बुलक-हो" का प्रयोग. और व्यवहार करना चाहिये।

इन कृषि-यन्त्रों के प्रयोग और व्यवहार से खेतों को घास-फूस देशी-हल अथवा कानपूर कल्टीवेटर की अपेक्षा शीघ्र से शीघ्र निकल जायगी। यह कल्टीवेटर भी कानपूर-कल्टीवेटर की भाँति एक जोड़ी बैल के द्वारा जुये में जंजीर अथवा रस्सी बाँध कर

खेतों में चलाये जा सकते हैं। इन यन्त्रों के चलाने के पश्चात् भी खेतों में 'हैरो' का चलाना अनिवार्य्य है। क्योंकि हैरो के चलाने से खेत का खर-पतवार बहुत ही शीघ्र इकट्ठा कर लिया जा सकता है। जब इन कल्टीवेटरों को चला करके खेत का खर-पतवार खोद कर उखाड़-पुखाड़ दिया जाय, तो खेत में किसी हैरो को चला कर घास-फूस इकट्ठा करके खेत से फेंकवा करके तत्पश्चात् खेत में पटेला चला देना चाहिये। पटेला चला देने के पश्चात् खेत को फिर अग्र चित्रित देशी हल से जोतना चाहिये। देशी-हल से जोतने के पश्चात् भी खेत में रबी की जुताइयों के समय पटेला का चला देना ही अनिवार्य्य है।

उल्लिखित विवेचन से भली प्रकार से हमारे पाठक समुदाय समझ गये होंगे कि रबी की जुताइयों के समय खेतों में 'कल्टीवेटर' का प्रयोग और व्यवहार करके खेत के खर, पतवार, घास-फूस को खोद कर उखाड़ फेंकना चाहिये; तत्पश्चात् हैरो चला करके उखड़े हुये खरपतवार को इकट्ठा करके खेत को साफ़ कर देना चाहिये, जब खेत साफ़ हो जाय तो उसमें पटेला चला करके खेत को छोड़ देना चाहिये। जब इस प्रकार से 'रबी' फ़सल के तमाम खेतों में 'कल्टीवेटरों' के प्रयोग और व्यवहार द्वारा सारे खेतों का खर-पतवार नष्ट कर दिया जाय और समयानुसार खेत की सफ़ाई भी हैरो द्वारा कर दी जाय और पटेला चला करके खेत की नमी भी धरातल तक क़ायम रख ली जाय, तो ऐसी दशा के प्राप्त हो जाने पर खेतों में फिर रबी की जुताई के लिये

चित्र सं० २०
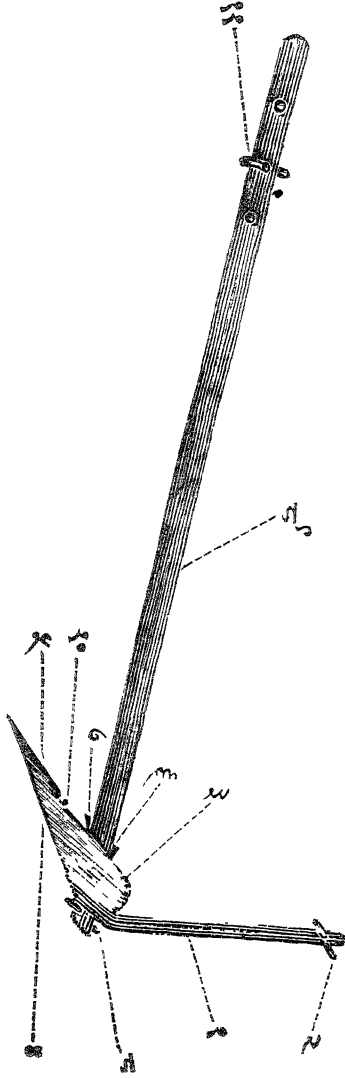
देशी हल

(१) परेथा (२) मुठिया (३) मुडिया रवाज (४) अगावट (५) फार (६) पाट (७) खजेली (८) बरेल (९ हरीस (१०) आंकड़ा हरेनी

देशी हलों का प्रयोग और व्यवहार करके देशी हल द्वारा खेतों की जुताई निरन्तर करते रहना चाहिये और प्रत्येक देशी हल की जुताई के पश्चात् खेतों में पटेला चला देना चाहिये। इससे खेत की नमी धरातल तक स्थिर रहेगी और बुवाई का काम आरंभ हो सकेगा। कभी-कभी पटेला देने के पश्चात् यदि बुवाई देर में करना होता है, तो खेतों में कम गहरा जोतने वाला हैरो चलाकर खेत को बुवाई के लिये छोड़ देना लाभदायक प्रथा है।
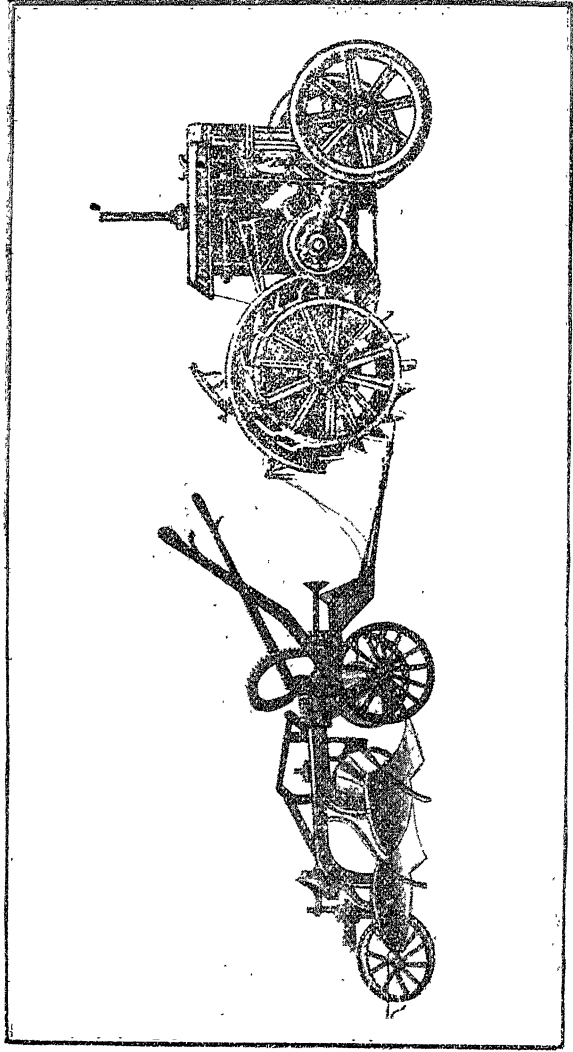
यह मोटर ट्रैक्टर दस घंटे में छः से नव एकड़ तक जोत सकता है।

# मोटर ट्रैक्टर

रोपीय महायुद्ध से ही वहां के कृषकों का ध्यान भूमि को मशीनों द्वारा जोतने की ओर आकर्षित हुआ। इसके कई एक कारण हैं। पाश्चात्य देशों में जहां इस विषय पर विशेष खोज तथा छान-बीन की गई है। इसका मुख्य कारण मज़दूरों की कमी तथा उनकी मज़दूरी का बढ़ जाना था। खाद्य वस्तुओं का मूल्य युद्ध में तथा उसके पश्चात् बढ़ जाने के कारण यह सम्भव न था। कि वे उसी परिमाण ( तादाद ) में पैदाकर सकें, जैसा कि पिछले दिनों में कर सकते थे।

इसी समस्या के फल स्वरूप सितम्बर मास सन् १९१९ ई० के अन्तिम सप्ताह में 'लिङ्कन' नगर में वहां के ट्रैक्टर बनाने वाले व्यापारियों के संघ के प्रबन्ध से, और 'नेशनल फार्मर्स युनियन' ( National Farmers Union ) की सहायता से ट्रैक्टरों की परीक्षा की गई थी। उक्त देशों की ट्रैक्टर सम्बन्धी आवश्यकता को पहिले-पहिल तो अमेरिका ने पूरा किया। परन्तु वृटिश कारखानों ने शीघ्र ही ट्रैक्टरों के नमूनों का आविष्कार करने, और उनके

बनाने की ओर ध्यान देना आरम्भ कर दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि गत ८—१० वर्षों में ही मशीनों की बनावट में आश्चर्य्य-जनक उन्नति हुई। ग्रेट-बृटेन में खेती के लिये बहुत बड़ी संख्या में ट्रैक्टरों की खपत हो चुकी थी। परन्तु कृषि सम्बन्धी कारबार में इस शक्ति की ओर सर्व साधारण के ध्यान को आकर्षित करने के लिये इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि कुछ प्रदर्शिनियां ऐसी की जावें, जैसी कि लिङ्कन में की गईं थीं।

लिङ्कन-प्रदर्शिनी के होने के पहिले भी स्काटलैण्ड में ट्रैक्टरों के बारे में कुछ परीक्षायें की गईं थीं। परन्तु जहां तक ग्रेट-बृटेन के बने हुये ट्रैक्टरों का सम्बन्ध था। उनकी बनावट कुछ अंशों में अपूर्ण ज्ञात हुई थी। अकस्मात् जो महत्व ट्रैक्टरों को प्राप्त हुआ था, उसका प्रधान कारण यह था कि लिङ्कन में पचास प्रकार से भी अधिक बनावट के ट्रैक्टर दिखलाये गये थे। उनमें अधिकांश ऐसे थे कि जिनसे भूमि पर काम लिया गया था। इनमें बृटिश और अमेरिकन अर्थात् हरेक भांति के ट्रैक्टर सम्मिलित थे, और एक इटैलियन मशीन भी थी। यह प्रदर्शिनी एक सप्ताह से अधिक रही, और प्रथम के दो दिन जांच करने के लिये नियत किये गये थे। जुताई की जांच तीन दिन तक होती रही, और इतने समय में हरेक प्रकार की भूमियों की जुताई की गई, इन तीन दिनों में जुताई की हुई भूमि का क्षेत्रफल लगभग ५०० एकड़ के था।

ट्रैक्टर का प्रयोग उस समय लांक के माँड़ने और बोझ के खींचने

में भी किया गया था, और एक दिन दोपहर के पश्चात् 'हैरोइङ्ग' आदि द्वितीय श्रेणी के काम भी करके दिखलाये गये थे। यह परीक्षण २६ खेतों में जो कि कई वर्गमील में फैले हुये थे किया गया था। जिसे देखने के लिये पश्चिमी देशों के हरेक भाग से पर्य्याप्त संख्या में कृषक आये थे।

लिङ्कन में इस परीक्षण का यह उद्देश्य नहीं था कि कृषकों को ट्रैक्टर के यथार्थ लाभ का निश्चय कराया जावे, वरन् उद्देश्य यह था कि उनको ऐसे चुनाव में सहायता दी जावे, कि जो उनके फार्मों की भूमि और आवश्यकताओं के लिये उपयोगी हों।

नेशनल 'फार्मर्स युनियन' ने अपनी कौंसिल के ६ सदस्यों को जो कि कृषि-विज्ञान वेत्ता थे, इन मशीनों की जांच के लिये चुना था। बनावट सम्बन्धी बातों की जांच के लिये उनको सहायता देने के हेतु एक ऐसा इञ्जिनियर नियत किया गया था। जो कि ट्रैक्टर बनाने के कार्य्य में भली भांति निपुण था। उस समय के दर्शकों में से एक दर्शक ने अपना विचार प्रकट करते हुये लिखा था कि:—

मेरे विचार से ट्रैक्टर इस लिये आविष्कृत किया गया है कि वह खेतों में उसी प्रकार से कार्य्य करेगा, कि जिस प्रकार से सड़कों पर मोटरकार कर रहे हैं। हरेक दृष्टियों से ट्रैक्टरों का कार्य्य सराहनीय समझा गया, ऐसी कोई ही मशीन थी कि जिसमें खराबी पैदा हुई हो, सब मशीनों ने उससे अधिक काम किया कि जितना उनसे कराना अभीष्ट था।

कार्य्य जिस चाल से हुआ, वह अत्यन्त प्रभावशाली था। किसी-किसी मशीन ने ५ मील प्रति घंटे की चाल से काम किया। जब कि तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने से ज्ञात हुआ कि घोड़े इस चाल के आधे से भी कम चलते हैं। द्वितीय श्रेणी के कामों में नर्म ढीली भूमि पर चाल भलीप्रकार से बनी रही।

मशीनों के घूमने के लिये काफ़ी गुंजाइश थी—अर्थात् २५ फ़ीट के लगभग जगह थी। लेकिन छोटे ट्रैक्टरों के लिये इतनी भूमि की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वह वास्तव में घोड़ों की अपेक्षा छोटे थे और घोड़ों की जोड़ी की अपेक्षा कम भूमि में और अधिक आसानी से घूम सकते थे। छोटे ट्रैक्टर विशेषतः आसानी से चल सकते थे और हर जगह ले जाये जा सकते थे।

हैरोइङ्ग करने में हलके ट्रैक्टरों में प्रत्यक्ष रूप से यह लाभ दिखाई देता था कि उनके पहियों से मिट्टी अधिक नहीं दबती थी जब कि भारी पहियों की मशीनों से मिट्टी बहुत अधिक दब जाती थी। परन्तु दोनों प्रकार की मशीनों के पहिये मुलायम मिट्टी पर गुज़र जाते थे, और भूमि में नहीं धँसते थे। इसका कारण यह था कि पहियों की चौड़ाई काफ़ी थी और उन पर उत्तम बनावट के दाँते लगे हुये थे।

ऊँची-नीची भूमि पर एकसाँ बोझ क़ायम रखने के लिहाज़ से ट्रैक्टरों की बनावट ऐसी अच्छी थी कि जब एक पहिया

दूसरे पहिये की अपेक्षा कई इञ्च ऊपर उठ जाता था। तो उनके पलट जाने का कोई अनुमान नहीं होता था।

कैटर पिलार ( झाँझा की क़िस्म के ) मशीन की अपेक्षा पहिया वाली मशीनों को लोगों ने अधिक पसंद किया। क्योंकि उसके घूमनेवाले हिस्से अधिक संख्या में थे, और सँटे हुये थे। जिसके कारण उनके घिसने और बिगड़ने की अधिक सम्भावना थी। और उनकी मरम्मत तथा दुरुस्ती कठिन थी। परन्तु इसके साथ ही एक 'कैटर-पिलार' मशीन की कार्य्य प्रणाली से लोगों के हृदयों पर अच्छा प्रभाव पड़ा, क्योंकि यह वेग से चलती थी और इसके घूमने के लिये भी थोड़ी ही जगह की आवश्यकता थी, उसकी बनावट भी उत्तम श्रेणी की थी, जिससे उसके उलट जाने का भय नहीं था।

ट्रैक्टर तेज़ी से चलने के सिवाय कई एक हलों को एक साथ खींचता है, और इसमें बहुत देर तक काम करने की शक्ति है। इस कारण इनका प्रयोग ऐसे समय के लिये लाभदायक है जब कि काम बहुत अधिक हो, और एक या दो दिन में ही उसका पूर्ण हो जाना अनिवार्य्य हो।

बहुत से उन ट्रैक्टरों को जो कि एक बड़ी संख्या में लाये गये थे, देख कर यह प्रकट होता था कि उनकी बनावट अभी अपूर्ण है। संभवतः इनमें से बहुत से लोप हो जाँयगे, और जो शेष रह जावेंगे। उनमें भी बहुत ही परिवर्तन हो जावेगा और संख्या में भी कमी का होना स्वाभाविक है। उत्तम श्रेणी के ट्रैक्टरों

में विशेष परिवर्तन की गुंजाइश नहीं ज्ञात होती थी। जो कुछ परिवर्तन होगा भी, उससे उनकी श्रेष्टता और बढ़ जायगी।

वर्तमान काल में संसार के उन्नति-शील देशों में ट्रैक्टर द्वारा बहुत ही काम लिया जा रहा है। भारत में भी निःसन्देह ट्रैक्टर के बहुत मैदान हैं। परन्तु ट्रैक्टर को कार्य्य रूप में परिणित करने के लिये देश के प्रान्तीय कृषि-विभागों को कई एक आरम्भिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। पहिला काम यह करना पड़ेगा कि आज कल जो ट्रैक्टर बने हुये हैं, उनमें से कुछ चुने हुये ट्रैक्टरों का भली प्रकार से परीक्षण करके जांच करना पड़ेगा कि कौन-कौन सी मशीनें देश की भिन्न-भिन्न प्रकार की भूमि और दशा के अनुकूल होंगी। दूसरे ऐसे उपायों को सोचना पड़ेगा जिससे योग्य 'ट्रैक्टर ड्राइवर' मिल सकें। भारत की उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुये, लिङ्कन की परीक्षायें पर्याप्त रूप से कसौटी पर कसे जाने पर खरी ही उतरेंगी, यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि लिङ्कन की भूमि में परीक्षण के अवसर पर नमी पर्याप्त मात्रा में थी। जिससे ट्रैक्टर के हल भूमि को ठीक उसी प्रकार से काट रहे थे कि जिस प्रकार से छूरी से जाड़े में जमा हुआ घी. काटा जा सकता है। निःसन्देह यह बात कही जा सकती है कि लिङ्कन के बहुत से सफल ट्रैक्टर भारत में अ-सफलता को प्राप्त हो जावेंगे। इस विषय में अभी अनेकों प्रकार की खोजें करनी हैं, जैसे कि मद्रास की "रेगर" भूमि के लिये जिसमें की कपास अधिक होती है, और काली है, उसमें किस भांति के ट्रैक्टर काम

दे सकते हैं। दूसरे सिंध और गङ्गा से सींचे जाने वाले मैदानों में किस प्रकार के ट्रैक्टर उपयोगी होंगे! इन सारी बातों का परीक्षण तथा छान-बीन करने के पहिले ट्रैक्टरों की बनावट में भी बहुत से परिवर्तन भारत की अवस्था के अनुकूल करने पड़ेंगे!

देश के कृषि विभाग के उन कर्म्मचारियों का जो कि ज़िले ज़िले में कृषि-व्यवसाय की उन्नति और सुधार का मार्ग ढूँढ़ रहे हैं। उनका कहना है कि पशुओं की निर्बल दशा ही उत्तम श्रेणी की जुताई के मार्ग में बाधक है। क्योंकि जब उन्नति प्राप्त रीतियों को कार्य्यरूप में परिणित करने का उद्योग किया जाता है, तो यह बाधा सदैव उपस्थित होती है। ऐसी कठिनाइयों के भुक्त-भोगी कर्म्मचारियों की आशा है कि ट्रैक्टर के प्रयोग से संभव है, यह कठिनाई दूर हो जाय। परन्तु इसका प्रयोग अभी तक नहीं किया गया।

कुछ लोगों का कथन है कि दो अवस्थाओं में भारत में ट्रैक्कर बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

(१) तो ऐसे दुर्भिक्ष पीड़ित स्थानों में जहाँ पशु नष्ट हो गये हों, वहाँ ट्रैक्टरों की सहायता पहुंचाई जावे, और उनमें जोतने-बोने की मशीन लगा कर अधिक क्षेत्रफल में खाद्य अन्नों को बोया जावे।

(२) दूसरे भूमि के उन भागों की उन्नति की जावे कि जहाँ नई नहरें जारी हुई हैं। क्योंकि इस बात को हर कोई जानता है

कि जब किसी भाग में पहिले-पहिल ही नहर जारी की जाती है तो वहाँ की जन-संख्या को अपने प्रबन्ध और साधनों को नवीन अवस्था के अनुकूल बनाने में वर्षों व्यतीत हो जाते हैं। अब पशुओं और मज़दूरों की दिन प्रति दिन आवश्यकता होती चली जा रही है। इन स्थानों में भी जहाँ लोग नवीन बस्तियाँ बसाते हैं, भूमि की उन्नति करने में कई वर्ष व्यतीय हो जाते हैं।

इन बातों पर विचार करते हुये यह कहा जा सकता है कि कृषि-विभाग इससे अधिक लाभदायक कोई काम नहीं कर सकता कि इस बात की पूर्णरूप से खोज करें कि भारत में ट्रैक्टरों की उपयोगिता कहाँ तक संभव है। भारत की कृषि में सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि उपज का पड़ता प्रति एकड़ बहुत कम है। इसका सब से बड़ा कारण यह है कि भूमि की जुताई भली प्रकार से नहीं होती और भूमि साफ़ नहीं रहती, और बहुत से स्थानों में जुताई का कार्य्य पर्याप्त रीति से नहीं किया जाता। यदि यह त्रुटियाँ दूर कर दी जावें तो पहिला कर्तव्य भूमि की उपज की उन्नति करना है। दूसरा खाद इत्यादि की कठिनाइयों को हल करना। इस विषय में परिश्रम के साथ ही साथ लाख दो लाख रुपया व्यय कर देने की भी आवश्यकता है।

उल्लिखित उल्लेख में जो विचार प्रकट किये हैं, उनसे हमारे पाठक भली प्रकार से परिचित हो गये। अब हम ट्रैक्टर के ही सम्बन्ध मे मिस्टर शीशोम कनैडियन ट्रेडकमिश्नर कलकत्ता के विचारों को भी पाठकों के सम्मुख रखना चाहता हूँ। उक्त सज्जन

का कथन है कि लगभग २५ वर्षों से मोटर या भाप की शक्ति से काम करने वाली कृषि-सम्बन्धी मशीनों का भारत में प्रचार करने के लिये समय-समय पर उद्योग किया गया। योरोपीय-समर के पहिले एक अंग्रेज़ी कारखाने ने लाखों पौंड लांक मांडने वाली मशीन के उद्योग में व्यय कर दिया। परन्तु वह कारखाना अपने उद्योग और परिश्रम में असफल रहा। क्योंकि कारखाने की ओर से हिन्दुस्तान भर में बहुत से स्थानों पर लांक मांडने वाली मशीनें चतुर इञ्जीनियरों द्वारा लगाई गई थीं। जिनका मुख्य उद्देश्य यह था कि किसान नुमाइशी तौर पर अपनी फ़सलों का लांक मुफ़्त में इन मशीनों द्वारा मड़ाई करा लेवें। इस बात की किसानों को खबर भी दी गई और उनसे कहा भी गया। पर लोग मशीनों पर अपने लांक की मँडाई कराने नहीं आये। इससे यह उपाय असफल रहा। इसकी असफलता का मुख्य कारण यह कहा गया कि भारत के किसान आवश्यकता से अधिक लकीर के फ़कीर हैं। दूसरे सहस्त्रों वर्षों से खेती के तरीक़ों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। साथ ही यह भी कहा गया कि कृषकों को यह ख़्याल हो गया है कि ज़मीदार लोग या गवर्नमेंट इस मशीन के बहाने से अधिक रुपया वसूल करना चाहती है। भारत के किसान जब तक उन्हें अपने नाज का मूल्य न मिल जाय, उसको तीसरे आदमी के हाथों सुपुर्द करना अड़चन समझते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य कारखानों ने भी लांक माँड़ने वाली मशीनों के प्रचार का उद्योग किया; परन्तु सभी असफल रहे।

परन्तु ट्रैक्टर द्वारा चलने वाले हल का प्रश्न उक्त मसले के प्रतिकूल है। कुछ वर्षों से चाय, गन्ना, धान की खेती करने वाली कम्पनियां कुछ ट्रैक्टरों का प्रयोग कर रही हैं। कम्पनियों के पास खेती के लिये क्षेत्रफल भारत के समस्त जुते हुये क्षेत्रफल के मुक़ाबिले में बहुत कम है। परन्तु देश के कुछ भागों के कृषक ट्रैक्टर से विज्ञ होने लगे हैं और वह यह देख कर कि ट्रैक्टर-हल कड़ी से कड़ी भूमि को भी बड़ी सुगमता से फाड़ डालता है, बहुत प्रसन्न होते हैं। परन्तु भारत में बहुत छोटे-छोटे खेत हैं—अर्थात् एक बिस्वा के भी टुकड़े कर लिये जाते हैं। जो कि पानी को रोकने के लिये तथा क्षेत्रफल को प्रकट करने के लिये छोटे-छोटे मेडों से घिरे रहते हैं। ऐसी दशाओं के कारण ट्रैक्टर हल को प्रयोग में लाने का प्रश्न लागू नहीं होता।

इसके प्रतिकूल भारत के हरेक सूबे में कृषि-योग्य बहुत सी भूमि इस कारण पड़ती पड़ी हुई है कि उसमें वर्तमान प्रचलित रीतियों से कृषि करना वर्तमान देहाती कृषकों की शक्ति व साधन से बाहर है। बहुत सी कृषि-योग्य उत्तम भूमि इस प्रकार पड़ती पड़ी हुई है। कि जिसमें कभी धान की खेती होती थी। परन्तु यहां अधिकतर ऐसा रिवाज है कि खेतों को कुछ समय तक बोने के पश्चात् छोड़ दिया जाता है। ऐसी भूमियों में शीघ्र ही बहुत अधिक घास तथा अनेकों प्रकार के खर-पतवार उत्पन्न हो जाते हैं। जब कृषक लोग ऐसी भूमियों में पुनः खेती करना चाहते हैं। तो उनके बैलों से जुताई करने वाले पुराने ढङ्ग के देशी हलों द्वारा

भारी तथा कड़ी भूमि को फाड़ना असंभव हो जाता है और उसको हाथ से खोद कर कृषि योग्य बनाने में बहुत अधिक व्यय तथा परिश्रम की आवश्यकता होती है। वर्तमान काल में भारत में कृषि के लिये मजदूर केवल कम ही नहीं मिलते। वरन् बीमारियों तथा पर्याप्त मात्रा में भोजन सामग्री न मिलने के कारण उनका मिलना ही दुलभ हो गया है। इसलिसे पुरानी तथा नई कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल बहुत अधिक है।

भारत सरकार के द्वारा तैयार किये हुए कृषि सम्बन्धी नक़शों से पता चलता है कि उस क्षेत्रफल का औसत जिसमें वर्तमान काल में फ़सल उत्पन्न हो रही है। २०० से २२५ मिलियन एकड़ तक है और कृषि योग्य बेकार पड़ी हुई भूमि अधिक से अधिक ११० मिलियन और नई पड़ती लगभग ६० लाख एकड़ के है। सन् १८१८—२० ई० के बीच में बोया हुआ क्षेत्रफल १० प्रतिशत घट गया और कृषि-योग्य बेकार पड़ी हुई तथा नई पड़ती पड़ी हुई भूमि का क्षेत्रफल १० प्रति सैकड़ा बढ़ गया। दूसरे शब्दों में भारत के ३८० मिलियन मज़रूआ क्षेत्रफल में से अब लगभग ४० प्रतिशतक क्षेत्रफल में कृषि नहीं होती।

अब भिन्न २ सूबों के कृषि-विभाग के कर्मचारियों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। जिससे आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। कि अधिक क्षेत्रफल को कृषि योग्य बनाने का प्रश्न केवल ट्रैक्टर द्वारा ही सिद्ध हो सकता है। गवर्नमेंट ने इसमें से कुछ कर्मचारियों को प्रदर्शन के लिये ट्रैक्टर दिये हैं और दूसरी रीतियों में

ट्रैक्टर बनाने वालों ने आवश्यक मशीनें और उनको काम करते हुये दिखलाने वाले आदमी भी भेज दिये हैं। साधारणतः ज़मीदार तथा अन्यान्य कृषि-व्यवसायी आरम्भ में ही अपना सामान खरीदना पसन्द नहीं करते। इसलिये कृषि-विभाग के कर्मचारी और कम्पनियां ट्रैक्टर का प्रचार करने के लिये विशेष कार्य्य कर रहे हैं और इनकी उपयोगिता दिखा रहे हैं। ट्रैक्टर-हल का प्रचार करने के लिये जो रीतियां सोची गई हैं। वह निम्न-लिखित हैं।

गवर्नमेंट तथा कम्पनियों के कर्म्मचारी गण उन बड़े-बड़े ज़मीदारों से परिचित हो रहे हैं कि जिनकी रियासतों में सैकड़ों एकड़ कृषि-योग्य भूमि बेकार पड़ी हुई है और ऐसे क्षेत्रफल के जोतने की इच्छा प्रकट करते हैं। परन्तु शर्त यह है कि जुताई का व्यय प्रथम फ़सल की उपज से कम्पनियों को चुका दिया जावे। दूसरे जिस समय भूमि की जुताई हो जाती है, तो उसको बँटाई पर कृषकों को दे दिया जाता है, जो उसमें खेती करना चाहते हैं और उपज का आधा या तिहावा ज़मीदारों को देते हैं। बहुत से ज़मीदारों को इससे अच्छा लाभ हो जाता है। जिससे वह अपना ही ट्रैक्टर ख़रीद लेते हैं और उसका मूल्य ५ साल तक में सालाना क़िश्तों में चुका देते हैं। कृषि-योग्य बेकार पड़ी हुई भूमि में कृषि करने से जो आय होती है। उससे आरम्भिक-व्यय के अतिरिक्त और व्यय पूरा होकर अच्छा लाभ हो जाता है। आगामी वर्षों में जितना लगान इस भूमि से प्राप्त होता है वह केवल लाभ ही होता है।

चतुर और अनुभवी ड्राइवर न होने के कारण हिन्दुस्तान में ट्रैक्टर कनैडा की अपेक्षा अधिक ख़राब हो जाते हैं। इसलिये अतीव आवश्यक है कि जहाँ ट्रैक्टर प्रयोग में लाये जाते हों तो वहाँ पर्याप्त मात्रा में मशीन के अधिक हिस्से रक्खे जावें। कुछ प्रसिद्ध अमेरिकन और योरोपियन ट्रैक्टर्स कि जिनको उनके कारखानों के मालिक अपने ही कर्म्मचारियों द्वारा दिखला रहे हैं भली भाँति प्रचलित हो गये हैं। उत्तम रीति यह है कि जिस देश के ट्रैक्टर भारत में आवें, उस देश के 'मेकैनिक्स' भी यहाँ आकर उनका सारा काम ठीक प्रकार से बतलावें, केवल एजेन्टों के पास प्रदर्शन के लिये मशीनों का भेज देना ही पर्याप्त न होगा।

भारत के लोग जिस मशीन को पसन्द कर लेते हैं उसको प्रयोग में लाने लगते हैं और फिर उनके विचारों में परिवर्तन करना अत्यन्त ही कठिन हो जाता है। निःसन्देह ट्रैक्टर दूसरी कृषि-सम्बन्धी मशीनों की उपयोगिता का प्रत्यक्ष दिग्दर्शन करा देगा और जो ट्रैक्टर-कम्पनी भारत की बाज़ारों में अपने ट्रैक्टर की खपत कर सकेगा। वह भारत के कृषि-व्यवसाइयों के ध्यान को अन्यान्य कृषि-यन्त्रों को भी ख़रीदने की ओर आकर्षित कर सकेगा।

ट्रैक्टर के व्यवहार और प्रयोग की सलाह तो बहुत से वैज्ञानिकों ने भारतवासियों को दी है। परन्तु अभी तक भारत के उपयुक्त ट्रैक्टर के विषय पर कोई भी लेख अथवा पुस्तक ऐसी नहीं लिखी गई है। जिसमें कि ट्रैक्टर की प्रयोगात्मक प्रणालियों

का वर्णन करते हुये उसकी व्यावहारिक बातों के गुण-दोषों का वर्णन किया गया हो। इसका मुख्य कारण यह है कि अभी भारत के किसी भी प्रान्त में इसके बारे में भली प्रकार से छान-बीन करते हुये परीक्षण नहीं किया गया है। कि देश के भिन्न २ प्रान्तों के लिये किस-किस प्रकार के ट्रैक्टर उपयुक्त होंगे! उनके द्वारा प्रति दिन कितना काम किया जा सकेगा। ट्रैक्टर की जुताई में कितना खर्चा पड़ेगा। इत्यादि प्रश्नों पर अभी भारत के भिन्न २ प्रान्तों में बराबर जांच हो रही है। ऐसे ही प्रश्नों को हल करने के लिये तथा ट्रैक्टर के ग्राहकों को प्राप्त किये गये अनुभवों द्वारा लाभ पहुँचाने की दृष्टि से एक लेख लायलपुर ( पञ्जाब ) के अग्रीकल्चरल प्रोफ़ेसर और कृषि-विभाग के डिपुटी डाइरेक्टर ने सन् १९२३ ई० के जनवरी मास में भारतवर्षीय अग्रीकल्चरल जनरल में प्रका-शित करवाया था। उसी के आधार पर नीचे मोटर ट्रैक्टर के सम्बन्ध में क्रियात्मक बातों का वर्णन दिया जाता है।

आज कल ५० से भी अधिक प्रकार के ट्रैक्टर बिकते हैं उनमें से लगभग ७ प्रकार के ट्रैक्टर अधिक प्रचलित हैं। वे निम्न-लिखित रीति से विभाजित किये जा सकते हैं।

[१] मामूली चार पहिये वाले जो पिछले दो पहियों द्वारा चलाए जाते हैं, जैसे आसटिन।

[२] कैटर-पिलार ( झांझा के समान वाले )—इसमें पहिये नहीं होते, किन्तु यह दो जंजीरों पर चलाए जाते हैं, जसे क्ले-ट्रैक

(३) तीन पहिये वाले—इसमें दो पहिये आगे की ओर होते हैं और एक पीछे। यह इस प्रकार का बना रहता है कि चलते समय तीनों पर समान बोझ रहता है, जैसे ग्लासगो।

(४, तीन पहिये वाले—इसमें एक आगे और दो पहिये पीछे होते हैं। किसी-किसी में तीनों पहिये भिन्न २ प्रकार के होते हैं और इसका अगला पहिया और पिछला एक पहिया एक ही लकीर में चलते हैं। इसमें दो ही पहिये चलाये जाते हैं, जैसे ह्वाइटिङ्ग बुल।

(५) तीन पहिये वाले—इसमें दो पहिये आगे होते हैं और एक बहुत बड़ा ५४ इन्च का चौड़ा पिछला पहिया होता है, जिसके द्वारा वे चलाए जाते हैं, जैसे ग्रे।

(६) मोटर लगे हुऐ हल वाले—इसमें सामान और इञ्जन छुरी के चारों तरफ़ साधे जाते हैं और दो पहियों द्वारा चलाए जाते हैं, जैसे क्राले। ऐसे यन्त्र फ़सल काटने की मशीन इत्यादि में परिणित करके काम में लाए जाते हैं। ऐसे यन्त्र के पिछले हिस्से को निकाल और इसमें (Foot plate) फ़ुट-प्लेट लगा देने से वह ट्रैक्टर हो जाता है।

(७) मोटर लगे हुए हल जिसमें पहिये नहीं होते, जैसे मारटिन ट्रैक्ट, इससे भी कई तरह के काम लिए जा सकते हैं और हल की भांति ट्रैक्टर में परिणित किया जा सकता है।

ऊपर बतलाए हुए ट्रैक्टरों में से वे सात प्रकार से विभाजित किये जा सकते हैं। जहाँ तक मालूम किये गये हैं। अभी तक पिछले

दो क़िस्म के औज़ार भारतवर्ष में नहीं आये। यह बिलकुल निश्चय है कि पंजाब में भी कोई भी औज़ार नहीं है इसलिये इस लेख में इसका कोई विचार नहीं किया जायगा। तीसरे चौथे और पांचवें प्रकार के ट्रैक्टर लोगों में बहुत प्रचलित नहीं हैं और आज कल प्रतिस्पर्धा प्रधानतः चार पहिये वाले तथा झाँझा के सम्मान वाले ट्रैक्टरों में है, अतएव हमको अपना ध्यान इन्हीं दो प्रकार के ट्रैक्टरों की ओर देना चाहिये।

एक उपयुक्त ट्रैक्टर चुनने के लिये इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि दोनों ट्रैक्टर सब कामों में बराबर उपयुक्त नहीं होते। हर एक में अच्छाई या बुराई है। इसीलिये ग्राहकों को कई प्रकार से देख कर इस बात का निश्चय कर लेना चाहिये कि कौन सा ट्रैक्टर उनकी आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है।

चार पहिये वाले ट्रैक्टर सब साधारण कामों में लगाये जा सकते हैं और नीचे लिखे हुए कामों को पूर्ण कर सकते हैं।

(क) जोतना—जिसके लिये लोग साधारणतः ट्रैक्टर काम में लाते हैं।

(ख) (dise-harrows) डिसहैरो (cultivators) कल्टी वेटरस (spring-tooth harrows) स्प्रिङ्ग टूथ हैरो (rollers) रोलर (seed-drills) सीड ड्रिलस आदि के द्वारा काश्त के समस्त काम।

(ग) (Reapers) रीपर्स द्वारा खेत काटना और बोझ बाँधना इत्यादि।

(घ) फुटकर काम करना, जैसे पम्प खींचना, कुट्टी काटना, दाना दरना, गिनिङ्ग मशीन, ऊख पेरना इत्यादि ।

(ङ) खिंचाई आदि का काम, खेत की पैदावार को एक जगह से दूसरी जगह ले जाना इत्यादि ।

ज़मीन पर चलाने के सब काम करते समय पहियों में बड़े-बड़े छड़ लगा देना चाहिये, जिससे पहिये का फिसलना बन्द हो जाय । जब ज़मीन कड़ी होती है तो छड़ इसे पकड़ लेता है और फिसलन बहुत कम हो जाती है । किन्तु जहाँ पर पृथ्वी पोली और बलुई होती है, वहाँ फिसलने ही में बहुत सी शक्ति नष्ट हो जाती है । इसलिये ऐसे ट्रैक्टर ज़मीन जोतने के बाद के कामों के लिये उपयुक्त नहीं होते । पक्की सड़कों पर चलाने के कामों में छड़ को निकाल लेना चाहिये । किसी २ ट्रैक्टर में छड़ में लगाने के लिये हाशीया होता है । इससे एक खेत से दूसरे खेत में जाने में समय और परिश्रम की बहुत कुछ बचत होती है । झांझा के समान वाले ट्रैक्टर पक्की सड़कों पर चलाने के अतिरिक्त साधारणतः सब कामों के लिये जा सकते हैं । यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि इसमें पहिये नहीं होते । किन्तु जब यह चलाये जाते हैं तो लम्बी २ दो ज़ंजीरों का एक विशेष रास्ता बनाया जाता है । खींचने के कामों में यह चार पहिये वाले ट्रैक्टर से बहुत अच्छे होते हैं । यह चार पहिये वाले ट्रैक्टर की भांति और सब कामों में लाये जा सकते हैं । किन्तु विशेषता यह है कि यह कड़ी और पोली दोनों प्रकार की ज़मीन में अच्छी तरह काम में लाये जा सकते हैं ।

(४) जंजीर के रास्ते के कारण इसमें फिसलन नहीं होती और यह ज़मीन जोतने के बाद के कामों के लिये बहुत ही उपयुक्त ट्रैक्टर है। इसके अतिरिक्त इसके बड़े होने के कारण इसके बोझ से मिट्टी चलाते समय दब कर गड़ नहीं जाती, जैसे चार पहिये वाले ट्रैक्टरों में होता है। लायलपुर के अनुभव से यह मालूम होता है। कि जहाँ पोली पृथ्वी पर पहिये वाले ट्रैक्टर के द्वारा काम नहीं हुआ वहाँ इसके द्वारा बड़ी सरलता से काम हो गया।

पंजाब के अधिकतर भागों में नहर तथा कुएं के द्वारा सींचे जाने वाले पृथ्वी की नाप जानना आवश्यक है, बहुत से पहिये वाले ट्रैक्टर के लिये बड़े लम्बे-चौड़े खेतों की आवश्यकता होती है। ऐसे ट्रैक्टर के लिये कैटर-पिलार से अधिक की आवश्यकता होती है। जहाँ खेत छोटे होते हैं, वहाँ उपज की बात आ ही जाती है। क्योंकि ऐसे खेतों में कैटर पिलार पहिये वाले ट्रैक्टर से अधिक लाभदायक होता है। यह अपनी हद ही में जोत सकता है और यह भी देखा गया है कि इसके द्वारा चार गज़ के टुकड़े भी जोते गये हैं। इसीलिये जहाँ दूसरे प्रकार के ट्रैक्टर उपयुक्त नहीं होते यह बहुत ही उपयुक्त होते हैं।

कैटर-पिलार कितने दिन तक चल सकता है, इस प्रश्न पर बहुत कम सूचना मिली है। यह बात लगभग सभी को विदित है कि यह चार पहिये वाले ट्रैक्टर से घिस कर अधिक क्षय होता है। किन्तु इससे सभी सहमत है कि एक ट्रैक्टर कितने दिन तक चल सकता है। इसे जानने के लिये अभी तक कोई

अनुभव प्राप्त नहीं है। यद्यपि यह सभी की सम्मति है कि वह पहिये वाले ट्रैक्टर से कम चलता है। किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं है। कोयले का खर्च लगभग समान ही होता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि यदि कोई सस्ता और काम चलाऊ ट्रैक्टर न रखना हो तो कड़ी ज़मीन में पहिये वाले ट्रैक्टर सस्ते और अच्छे पड़ते हैं और यदि बलुई और जोतने के बाद वाली पृथ्वी में काम करना हो तो कैटर-पिलार बहुत अच्छा होता है।

स्थगित काम के लिये दोनों प्रकार के ट्रैक्टर उपयुक्त होते हैं। किन्तु इसमें एक विशेष बात आ जाती है। किसी-किसी ट्रैक्टर में चाहे वह जिस प्रकार का हो चलाने की गड़ारी मशीन के समान आड़ी लगा दी जाती है चलाने वाला पीछे की ओर बैठता है इसलिए पेटी को ठीक २ भाँति से लगाना बहुत कठिन हो जाता है और यदि हो जाय तो सरलता से चलाया नहीं जा सकता। आज कल कुछ ट्रैक्टर इसी दोष से दूषित हैं। गड़ारी ऐसे स्थान में रखना चाहिये कि चलाने वाली पेटी ट्रैक्टर की छुरी के समानान्तर काम करे। गड़ारी और इंजन के बीच में क्लच लगा देना चाहिये, नहीं तो पेटी के साथ इंजन किसी स्थान से लाना बहुत कठिन हो जाता है, बहुत से ट्रैक्टर की गड़ारी छुरी की मोड़ या जमी रहती है। यह बड़ी भारी भूल है बहुत से ट्रैक्टर मामूली खेत की मशीनों को चला सकते हैं।

ट्रैक्टर की क़िस्मों को निश्चय करने के पश्चात् ग्राहकों को यह देखना चाहिये कि यह भारतवर्ष की दशा से मिलान करतेहुये सन्तोष-जनक कार्य कर सकता है। इसलिये नीचे लिखी हुई चीज़ें लगी होनी चाहिये।

(क) कम से कम आठ से लेकर दस गैलन की नाप की एक नली या (honey comb radiator.) हनी कम्ब रेडियेटर।

(ख) रेडियेटर में से तेज़ी से हवा खींचने के लिये एक अच्छा पंखा।

(ग) रेडियेटर में से तेज़ी से पानी ढकेलने के लिये एक चक्करदार पम्प, 'थरमोसिफोन सिस्टम' (Thermo syphon syofom) गर्म जल-वायु के लिये बहुत ठीक है और स्थगित काम के लिये व्यर्थ है। देश में आज कल के बहुत से रेडियेटर के ट्रैक्टर में पानी आदि का बोझ बहुत भारी हो तो इंजन के थोडी देर चलने के पहिले से ही उबलते हुये रखना चाहिये। यह इंजन के लिये बहुत हानिकारक होता है, इसके अतिरिक्त कोयला भी प्रति एकड़ के हिसाब से अधिक जलता है। यदि मामूली मोटरकार बहुत से ट्रैक्टर की भाँति गरम हो जाँय तो चलाने वाला इसे ठण्डा कर लेता है क्योंकि ट्रैक्टर मोटरकार की भाँति अच्छा यन्त्र नहीं लगाता है और यह विचार कैसे किया गया है कि अधिक गर्म करने से कोई विशेष लाभ नहीं है। ट्रैक्टर का इञ्जन सदैव बड़े वेग से चलता है। इसलिये इसमें मोटरकार की अपेक्षा अधिक

ध्यान देने की आवश्यकता है। अतएव यदि ट्रैक्टर से सन्तोष जनक कार्य लेना है, तो बहुत गर्म करने पर भी ध्यान देना चाहिये।

कारबोरिटार (Carburettor) को स्वाभाविक तौर पर चलना चाहिये और एक पत्थर में लगा रहना चाहिये। यह भाँति २ के मिट्टी के तेल के काम में लाने के लिये आवश्यक है।

पञ्जाब में अधिक गर्मी और सर्दी पड़ने के कारण तेल के द्वारा चलाये जाने वाले इञ्जन के लिये जैसे ( austin ) में 'हाट स्पोट' के साथ पहले से गरम की हुई वायु बहुत ही आवश्यक है। इससे कोयला कम खर्च होगा और इञ्जन अच्छी तरह चलेगा और काले डाट से होने वाली कठिनाई कम हो जायगी।

भारतवर्ष की अवस्था के अनुसार ट्रैक्टर मिट्टी के अणु से भरी हुई वायु में अधिकतर काम करता है। यह मिट्टी यदि वायु के साथ सिलेन्डर (cylinders) में चली जाय तो यह वाल्व (valve) में बैठ जाती है। इससे उसमें छेद हो जाता है और इसीसे इमेरी की भाँति पिस्टन (pistons) और सिलेन्डर (cylinder) घिसने लगता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये एक वाटर-एअर-कलैरिफियर (water air clarifier) लगा दिया जाता है। थोड़े ही दिनों की बात है कि मिट्टी के वायु के साथ चले जाने से पिस्टन (piston) घिस गया और तीन ही महीने बाद बदला गया।

प्रायः इञ्जन चलाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है यदि इमपुल्स स्टारटर्स (impulse starters) लगा दिये जायँ। तो यह दूर हो

सकती है और बैकफिरिङ्ग (back firing) और काम में हानि होने का भय कम हो जायगा।

ट्रैक्टर को ठीक दशा में रखने के लिये और उनके पुर्ज़ों को कम बदलवाने के लिये उसे साफ़ चिकना रखना आवश्यक है। इसके सब पुर्ज़ों का बड़ी सरलता से स्वाभाविक चलना पम्प के द्वारा साफ़ सुथरा करना बहुत अच्छा होता है। प्रस्योरगेज (pressure gauge) लगाना चाहिये, जिससे वापरेटर (operator) देख सके कि कल में ठीक तौरसे तेल दिया गया। चलने वाले सब पुर्ज़ों पर चर्बी लगा हुआ ढकन होना चाहिये और उन्हें एक दिन के लिये चिकना करने के लिये पर्याप्त शक्ति होनी चाहिये। अनुभव से मालूम होता है किमिट्टी के तेल छोड़ते ही गर्द तुरन्त बैठ जाती है किन्तु अधिकतर आपरेटर ( operator ) उसे साफ़ नहीं करते।

अधिकतर विद्वानों ने बतलाया है कि एक ट्रैक्टर पाँच वर्ष तक चलता है, किन्तु इसका कोई भी प्रमाण नहीं है कि यह इससे भी अधिक चल ही नहीं सकता। बहुत से ट्रैक्टर के इञ्जन एक मिनट में १,००० चक्कर लगाते हैं। यदि इसकी तेज़ी आधी हो जाय और वही ट्रैक्टर आधा हो जाय तो यह सम्भव है कि वह ५० प्रति सैकड़ा इञ्जन अधिक चल सके। क्योंकि यही अधिकतर घिसता है ट्रैक्टर का बोझ ज़्यादा करने से इञ्जन की तेज़ी कम हो जाती है। किन्तु भारतवर्ष के ऐसे गर्म जल-वायु के कारण इसमें बहुत कम अन्तर पड़ता है। इससे इसका मूल्य बढ़ जाता है। किन्तु यदि ट्रैक्टर पाँच की अपेक्षा साढ़े सात वर्ष चले तो

इससे भी अधिक क्षति की पूर्ति होगी। मूल सम्पत्ति की इतनी आवश्यकता नहीं है कि उसकी अनिवार्यता के अनुसार चलने और उसके पुर्जों के बदलने के खर्च को कम करने की आवश्यकता है।

भारतवर्ष में ट्रैक्टर द्वारा काम बढ़ाने के लिये पुर्जों का बदलना ही विशेष कठिनाइयों को उपस्थित करता है। आज कल कई एक प्रकार के ट्रैक्टर भारत की बाज़ारों में मिलते हैं। किन्तु कुछ ही एजंट इसकी लिखित गारंटी दे सकते हैं। कि देश में सब प्रकार के पुर्जे मिल सकते हैं। जब तक कि यह सम्भव न हो जाय। तब तक कोई भी निश्चित रूप से कृषकों को सम्मति नहीं दे सकता। कि वे बैलों की अपेक्षा मोटर से चलाये जाने वाले हल को काम में लावें। इसका एक प्रमाण यह है कि पंजाब में ट्रैक्टर के रेडियेटर की कुछ नलियां अकस्मात् टूट गईं। भारतवर्ष में उसका पुर्जा नहीं मिला और छः मास के बाद इङ्गलैण्ड से पुरज़ा आया। इतने समय तक ट्रैक्टर बेकाम पड़ा रहा। ऐसी अवस्था में यदि कोई भारतीय इसी पर निर्भर रहता तो उसकी बड़ी हानि होती। आज कल थोड़े-बहुत पुर्जे मिलने लगे हैं। किन्तु यह अभी संतोष जनक नहीं है और केवल इतनी ही आशा की जा सकती है। कि ट्रैक्टर के समान भारी यन्त्र में टूटना-फूटना आवश्यक होगा। अलग अलग पुर्जे न मिलने के कारण कई प्रकार के ट्रैक्टरों का नाम भी नहीं लिया जा सकता है। यह कोई विशेष बात कहने कि नहीं है कि ट्रैक्टर

ख़रीदने के पहिले ग्राहक को लिखित सार्टिफ़िकेट ले लेना चाहिये कि मशीन के सब पुर्ज़े भारतवर्ष में मिल सकते हैं।

भारतवर्ष में ट्रैक्टर को काम में न लाने का एक यह भी कारण है कि उनकी देख-रेख करने के लिये योग्य "मेकैनिक्स" नहीं हैं. जैसे ही एक ट्रैक्टर बेचा जाता है। उसी समय ग्राहक के पास एक आदमी कुछ दिन के लिये इसके चलाने की रीति बतलाने के लिये भेजा जाता है। किन्तु कोई भी केवल इतनी ही सहायता से, विना पहिले के कुछ अनुभव के इस योग्य नहीं हो सकता कि वह ठीक तौर से ट्रैक्टर की देख-भाल कर सके। किन्तु वह मनुष्य जो कि मोटर इञ्जन तथा उसकी देख-भाल के विषय में अच्छी तरह जानता है के अतिरिक्त कोई भी मनुष्य व्यर्थ है। यदि ट्रैक्टर को चलाना हो तो इसलिये जब तक योग्य 'मेकैनिक्स' न हो तब तक ट्रैक्टर के चलाने की आशा करना निर्मूल है। पूर्वी देशों में यह बहुत ही कठिन है अशिक्षित लोग कल के पुर्ज़ों को लगाना तक भी नहीं जानते और अधिकतर वे हथौड़े और छेनी से उछलते हुये काग को पकड़ते हैं। ट्रैक्टर के सम्बन्ध में अधूरे शिक्षित मनुष्य को रखना भूल है, क्योंकि उसकी अज्ञानता तथा लापरवाही के कारण कुछ हिस्से टूट या घिस सकते हैं। जिसके बदलने में बहुत ख़र्च पड़ता है। कोयला कम ख़र्च करने तथा पुर्ज़ा बदलाने आदि का ख़र्च कम करने के लिये एक योग्य 'मेकैनिक्स' आवश्यक है।

यदि मोटर ट्रैक्टर को अच्छी तरह चालू करना है। तो

जावे, देखना चाहिये कि उसके योग्य है अथवा नहीं। उसी काम से निर्णय करना चाहिये कि किस क़िस्म का ट्रैक्टर ख़रीदना चाहिये।

(२) इसके साथ एक बड़ा 'रेडियेटर' एक बड़ा पंखा एक ठंडा. करने के लिये 'फोर्स पम्प' होना चाहिये।

(३) इसमें एक मिट्टी के तेल का "वेपोराइज़र" होना चाहिये

(४) एक 'वाटर एअर फ़िल्टर' होना चाहिये।

(५) 'इम्पलस स्टारटर' होने से बड़ा लाभ होता है।

(६ ख़ास-ख़ास पुर्ज़ों के लिये "ल्युबरी केशन" स्वाभाविक होना चाहिये।

(७) लगभग सब पुर्ज़े मिट्टी और गर्द से बचाने के हेतु ढके हुये—यानी बन्द रखना चाहिये।

(८) भारतवर्ष में फ़ुटकर पुर्ज़े सभी मिलने चाहिये।

(९) ३ से ६ महीने के लिये एक चतुर 'मैकनिक' कम्पनी से बुलाना चाहिये।

(१०) पुर्ज़ों की सूची और उनके चित्रों से युक्त एक छोटी पुस्तिका लेनी चाहिये, जिसमें कल चलाने की रीति-रिवाजों, नियमों का वर्णन होना चाहिये।

(११) २½ से ४ मील प्रति घंटे, आगे चलाने के लिये दो, और पीछे चलाने के लिये एक यंत्र होना आवश्यक है।

(१२) ट्रैक्टर को विना जुती हुई धरती पर चलाने के लिये

"ड्रा-बार" में घटाने और बढ़ाने का यन्त्र होना चाहिये ।

(१३) कम से कम ६ इञ्च चौड़ी और १८ इञ्च व्यास वाली गड़ारी को 'पेटी' के आगे और पीछे चलाने के लिये ट्रैक्टर की धुरी के समान्तर होना चाहिये ।

(१४) ट्रैक्टर को चलाने के लिये इञ्जन और पेटी वाले गड़ारी के बीच में 'क्लच' लगा देना चाहिये ।

(१५) इञ्जन को 'गवर्नर' के द्वारा साधना चाहिये ।

जुताई का ख़र्च:—निम्न लिखित व्यय का व्योरा जो कि लायलपुर ( पंजाब ) में पाया गया है । जहाँ कि भूमि 'एल्युवियल' है ।

(अ) जुताई—कैटर-पिलार की क़िस्म के हल द्वारा जिसमें ३ "कूंढ़" थे और हल "सेल्फ लिफ्ट" की क़िस्म का था ।

| | | |
|---|---|---|
| जुते हुये खेत की गहराई | औसतन | ६ इञ्च |
| हरेक कूंढ़ की चौड़ाई | " | १२ " |
| काम जो कि किया गया | " | ०.८२ एकड़ प्रति घंटा |
| क्षेत्रफल जो जोता गया | " | ५.० एकड़ प्रति दिन |
| कोयला | " | २.२ गैलन प्रति एकड़ |
| ल्युब्रीकेटिङ्ग तैल | " | ०.२ गैलन प्रति एकड़ |

## प्रति एकड़ पर ख़र्च

| | |
|---|---|
| मज़दूरी | ॥=) |
| कोयला | २॥≡) |
| ल्युब्री-केटिङ्ग तैल और चरबी | १) |

| | |
|---|---|
| मूलधन पर सूद और मूल्य में कमी | ।।।≡) |
| | योग ५।।) |

(ब) जुताई—कैटर-पिलार के क़िस्म का ट्रैक्टर जिसमें दो कूंढ़ थे, सेल्फ़ लिफ्ट' हल।

| | | |
|---|---|---|
| जुते हुये खेत की गहराई | औसतन | ६ इञ्च |
| हरेक कूढ़ की चौड़ाई | " | १२ " |
| काम जो किया गया | " | ०·५२ एकड़ प्रति घंटा |
| क्षेत्रफल जो जोता गया | " | ३·३ एकड़ प्रति दिन |
| कोयला | " | २·६ गैलन प्रति एकड़ |
| ल्युबरीकेटिङ्ग आयल | " | ०·३६ " " |

## प्रति एकड़ पर ख़र्च

| | |
|---|---|
| मज़दूरी | १) |
| कोयला | ३।।) |
| ल्युबरी-केटिङ्ग-तैल और चरबी | १।।।=) |
| मूल धन पर व्याज और मूल्य में कमी | १।≡) |
| | योग ७।।।–) |

(स) डिस्क हैरो द्वारा हैरोइङ्ग, कैटर-पिलार क़िस्म के ट्रैक्टर द्वारा।

| | | |
|---|---|---|
| गहराई | औसतन | ४ इञ्च |

| | | |
|---|---|---|
| चौड़ाई | औसतन | ९ फ़ीट |
| काम जो किया गया | " | २·६ एकड़ प्रति घंटा |
| " " प्रति दिन | " | १२ एकड़ |
| कोयला | | ०·९६ गैलन प्रति एकड़ |
| ल्युबरी-केटिङ्ग-तैल | | ०·१ गैलन प्रति एकड़ |

## प्रति एकड़ ख़र्च

| | |
|---|---|
| मज़दूरी | ।) |
| कोयला | १-) |
| ल्युबरी-केटिङ्ग-आयल और चरबी | ≡) |
| मूलधन पर व्याज और मूल्य में कमी | ।≈) |
| योग | १।॥≈) |

'कल्टीवेटर यंत्र' के द्वारा जो जुताई की जाती है वह लगभग साढ़े सात फ़ीट लम्बाई में खेतों की जुताई करता है और जिसमें ४ स्प्रिङ्ग-टूथ हैरो एक दूसरे के साथ जुड़े रहते हैं। जो कि चौड़ाई में १२ फ़ीट तक भूमि घेरे रहते हैं। इसके विषय में अभी तक ख़र्च की कोई अन्दाज़ नहीं लगाई जा सकी है।

मूलधन पर सूद निकालने तथा मूल्य की कमी की व्याख्या करना यहाँ पर आवश्यक है।

मूल्य में कमी २० प्रति शत के हिसाब से १,०४०) प्रति वर्ष

ब्याज मूलधन पर ५ प्रति सैकड़े के हिसाब से २६०) " "

योग १,३००)

मूल्य में प्रति दिन की औसतन कमी ३॥-)

कुल समय का चौथा भाग ट्रैक्टर के खाली पड़े रहने के लिये निकाल देने पर प्रति दिन की औसतन मूल्य में कमी ४॥।) होती है। तीन कूंढ़ वाले हल से एक दिन का औसतन ५ एकड़ होता है। इसके हिसाब से ।॥≡) प्रति एकड़ हुआ। ३·३ एकड़ प्रति दिन के हिसाब से दो कूंढ़ वाले हल से १।≡) प्रति एकड़ पड़ा, और डिस्क हैरो से १२ एकड़ प्रति दिन के हिसाब से ।=) प्रति एकड़ पड़ा।

(द) जुताई—पहिया वाले ट्रैक्टर से—सेल्फ तीन कूँढ़ वाले लिफ्टहल

| | | |
|---|---|---|
| जुते हुये खेत की गहराई | औसतन | ५½ इञ्च |
| हरेक कूंढ़ की चौड़ाई | | १२ " |
| काम जो कि किया गया | " | ०·७९ एकड़ प्रति घंटा |
| कोयला | " | २·४५ गैलन प्रति एकड़ |
| ल्युबरी-केटिङ्ग-आयल | " | ०.१५ गैलन प्रति एकड़ |

## प्रति एकड़ खर्च

| | |
|---|---|
| मजदूरी | ॥।) |
| कोयला | २॥।) |
| ल्युबरी-केटिङ्ग-आयल और चरबी | ।=) |

मूलधन पर व्याज और मूल्य में कमी १।)

योग ५॥=

मूलधन का सूद और मूल्य में कमी करने की रीति वही है जो कि कैटर-पिलार' क़िस्म के ट्रैक्टर के सम्बन्ध में आगे बताई गई है और यह इस प्रकार से निकाला जाता है।

| | |
|---|---|
| मूल्य में २० प्रतिशतक | १,३७०) रुपया प्रतिवर्ष |
| व्याज ५ प्रतिशतक | ३४२) ” |

योग १७१२)

औसतन प्रति दिन का सूद और मूल्य में कमी ४॥=) समय का चौथाई भाग ट्रैक्टर के खाली रहने के कारण निकाल देने पर प्रति दिन मूल्य में कमी ६।) या १।) प्रति एकड़ पड़ी। इस ख़र्च में फुटकर पुरज़ों की गिनती नहीं हुई है। क्योंकि अभी तक यह नहीं मालूम हुआ कि किस तरह से यह निकालना चाहिये। कोयले के ख़र्च में पेट्रोल और मिट्टी के तेल का ही ख़र्च है। ट्रैक्टर को चलाने के लिये जब तक कि वह गर्म न हो जाय। तब तक कुछ समय तक के लिये पिट्रोल ख़र्च करना आवश्यक है ? इसके पश्चात् तेल ख़र्च किया जाता है !

यह ज्ञात हुआ है कि यदि गहराई ५३/४ इञ्च से अधिक हो जाय तो तीन 'कूढ़' वाले पहिया वाले ट्रैक्टर को ऐसी मिट्टी में जिसमें कि परीक्षण किया गया है नहीं चला सकते। इसलिये यदि

अधिक गहराई की आवश्यकता हो तो इसमें दो कूढ़ वाले या कैटर-पिलार में तीन कूढ़ वाले हल लगाने चाहिये। फिसलने के कारण पहिया वाले ट्रैक्टर जोतने के बाद और अधिक गहराई में "डिस्कहैरो" को नहीं चला सकते। इसलिये यह सारे काम कैटर पिलार क़िस्म वाले ट्रैक्टर से होता है। ट्रैक्टर से जोतने के औज़ार:—

[अ] हल—ट्रैक्टर द्वार दो प्रकार के हल जोते जा सकते हैं।

[१] मोल्ड-बोर्ड प्लाऊ।

[२] डिस्क प्लाऊ।

पहिले भांति के हल पुराने और अधिक चालू हैं। किन्तु यह केवल अंग्रेज़ी 'फार' और देशी राजा हल के समान उससे बड़ा होते हैं। इसमें एक फार के स्थान में दो तीन या चार फार पहिया के ऊपर एक लकड़ी में लगे हुये होते हैं, और एक ही साथ चलाये जाते हैं। हल में भिन्न संख्या के फार रहने के कारण ग्राहकों को यह देख लेना चाहिये। कि उसे कितने फार की आवश्यकता है। इसकी संख्या ट्रैक्टर के "ड्रा-बार" बी० एच०पी पर निर्भर रहती है। जो ८ से १२ तक के बीच में होते हैं और यह पञ्जाब में तीन कूढ़ वाले हल के लिये बहुत ही उपयुक्त होते हैं। लायलपूर में अनुभव से मालूम होता है कि कैटर-पिलार या पहिया वाले ट्रैक्टरों में दो कूढ़ के हल लगना बिलकुल व्यर्थ है। दोनों ट्रैक्टर तीन कूढ़ के हल को दो कूढ़ के हल के समान वेग से चला सकते हैं। लायलपुर में जहां कि ५½ इञ्च गहरा हल चलाना

पड़ा। वहां पहिये वाले ट्रैक्टर में दो कूढ़ लगाना पड़ा। भिन्न भिन्न प्रकार की मिट्टी के लिये मोल्डबोर्ड हल डिस्क से अच्छा है और लायलपुर में यह देखा गया है। कि यह पृथ्वी की समतलता को बहुत कम नष्ट करता है।

सिंचाई वाले खेतों में समतलता का ध्यान देना बहुत आवश्यक है। अनुभव के कारण ही हम मोल्डबोर्ड का पक्ष ग्रहण करते हैं। मोल्बोर्ड हल कई प्रकार के बिकते हैं। किसी में कुछ किसी में कुछ विशेषता रहती है। इसको खरीदते समय निम्न-लिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये।

अ—तीन कूढ़ वाले हल में तीसरा फार निकालने और फिर लगाने वाला होना चाहिये। कि जिसमें यदि कड़ी ज़मीन हो या अधिक गहरा जोतना हो तो जहां ट्रैक्टर ३ कूढ़ नहीं चला सकता, वहाँ दो कूढ़ का बना लिय जाय। ऐसे हल कई प्रकार के होते हैं।

[ब] फार की नोक घटाने और बढ़ाने योग्य होनी चाहिये। लायलपूर में यह में भी देखा गया है कि थोड़ी देर काम करने के बाद नोक घिस कर खूंटे की तरह हो जाती है और कड़ी मिट्टी में बहुत गहरा नहीं जोता जाता। जिस हल में नोक घटाई या बढ़ाई नहीं जा सकती। नई नोक बदलने या उसी को फिर से तेज़ करने की आवश्यकता पड़ती है।

स—कूढ़ों की चौड़ाई और गहराई बदलने के लिये स्थान होना चाहिये।

द—हल में स्वाभाविक "सेल्फ लिफ्ट" होना चाहिये। किसी किसी हलों को चलाने, उठाने और नीचा करने के लिये एक आदमी होता है। यह नितान्त अनावश्यक है। इससे केवल मज़दूरी बढ़ जाती है। किसी २ उन्नति-प्राप्त हलों में 'लीवर' को या रस्सी को जो कि ट्रैक्टर में लगी होती है। खींचने का यह काम "आपरेटर" के द्वारा होता है। लायलपूर में ऐसे ही हलों द्वारा बड़ा संतोषजनक काम हुआ है। डिस्कहल में 'फार' के स्थान में दो तीन या चार थाली के समान २४ इञ्च व्यास के लगभग 'डिस्क' होते हैं। पर २½ इञ्च की लकीर से १२० का कोण बनाते हैं जिसका खोखला हिस्सा आगे की ओर रहता है। चलाते समय 'डिस्क' घूमते हैं और फार की भांति कूढ़ बनाते हैं। किन्तु इससे बने हुये कूढ़ अलग-अलग और सीधे रहते हैं। इससे खेत की समतलता मोल्डबोर्ड हल की अपेक्षा अधिक नष्ट हो जाती है। जिससे सिंचाई वाले खेतों के लिये लाभदायक नहीं होते। जिस पृथ्वी से काटकर कूढ़ें बनाई जाती हैं। वह कुछ गोलाई लिये हुये रूप का हो जाता है। इसलिये जहां बहुत से कूढ़ एक दूसरे से मिल जाते हैं। वहां ढालू डीहा सा बन जाता है और पृथ्वी समान गहराई से नहीं जोती जा सकती। किन्तु गन्ने की जड़ वाली ज़मीनों को खोदने के लिये 'डिस्क' हल अत्यन्त ही लाभदायक है। कड़ी ज़मीन में हल को ज़मीन पर लगा रखने के लिये अधिक बोझ की आवश्यकता होती है।

क—चाहे मज़दूर बहुत हों, और उनकी मज़दूरी कितनी ही सस्ती

क्यों न हो। किन्तु "सेल्फलिफ्ट" हल बहुत अच्छा होता है। इसमें समय की बहुत बचत होती है। क्योंकि ट्रैक्टर कूँढ में घुसते या निकलते समय नहीं रुक सकता। ट्रैक्टर के लीवर को घुमाने से ही फार ऊँचा या नीचा किया जा सकता है। इसका चलाने वाला ही हल और ट्रैक्टर का काम करता है। जिसमें स्वयं घूम जाने वाले फार नहीं होते उसमें तीन लीवरों की आवश्यकता पड़ती है दो 'लीवर' फार को ऊँचा और नीचा करने के लिये और एक उसे चलाने के लिये। केवल इतना ही काम एक चतुर आदमी के करने के लिये पूर्णतः पर्याप्त है। इसलिये जैसे ही आवश्यक काम पूरा हो जाय। तुरन्त ही ट्रैक्टर को बन्द बर देना चाहिये। एक दिन कई बार बन्द करने में समय बहुत नष्ट होता है।

बहुत से हलों में हुकदार लोहे की छड़ें रहती हैं। इसके द्वारा हल को कूढ में लगाना या नोक पर इसे साधना बिल्कुल असम्भव है। हल नोक के चारों ओर घूमने के लिये टेढ़ा लगा रहता है। और ट्रैक्टर के एक दम ठहर जाने से, उसके पिछले हिस्से में रगड़ खाता है। त्रिकोण ड्रा-बार हुक इसे साधने के लिये बहुत अच्छा होता है।

खः – कल्टीवेटरस्—इस यन्त्र में १० से १५ तक दांत दो पंक्तियों में लगे रहते है। लायलपुर के कल्टीवेटरों में ११ दांत थे। जिसमें ५ आगे और छः पीछे लगे थे। जिसकी चौड़ाई ७½ फीट है। गहराई के हिसाब से यह घटाया और और बढ़ाया भी जा सकता है।

यह एक मामूली ट्रैक्टर के लिये काफ़ी बड़ा होता है। इसका काम देशी हल की भाँति होता है। इसके द्वारा ऊसर खेत की मिट्टी गोड़ने में बहुत कम ख़र्च होता है। किसी-किसी बरसाती बलुई मिट्टी में जहाँ केवल चारा ज्वार वग़ैरह पैदा हो सकता है। 'कल्टीवेटर' ही हल की जगह काम करता है और इसने बहुत अच्छा काम दिए हैं।

गः—डिस्कहैरो—यह यन्त्र दो प्रकार के होते हैं। किसी में डिस्क की एक और किसी में दो पंक्तियां होती हैं। दूसरे प्रकार का "टैनडेन" क़िस्म कहा जाता है और पहिले की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है। डिस्क की हरेक पांति बीच से टूटी होती है और दोनों भाग एक दूसरे के आधार पर रहते हैं। इसलिये दोनों अर्द्ध भाग न्युनाधिक टेढ़े किये जा सकते हैं। बहुत अच्छे काम के लिये कोण कम होने चाहिये। एक पाँति वाला यन्त्र पृथ्वी की समतलता को बिगाड़ देता है और दूसरा आवश्यक है। क्योंकि यह पहिले के द्वारा नष्ट किये हुये मुख्यतया सिंचाई वाले खेतों में रोकता है। इसके अतिरिक्त इससे बहुत ही अच्छा काम होता है इस यंत्र के द्वारा बोझ भी ले जाया जा सकता है। यदि वे खाली रहने पर पृथ्वी में धँस न जांय। तो पहिले वाला डिस्क हैरो लायलपूर में किये गये जांच करने वालों में सबसे अच्छा मिट्टी चूर-चूर करने वाला यन्त्र है।

घः—स्प्रिङ्ग-टूथहैरो—बैलों से खींचे जाने वाले उक्त हैरो के जोतने का भी प्रयत्न किया गया। ऐसे चार यन्त्र साथ ही साथ

लगा दिये गये थे। यह तजुरबा बहुत ही सफल हुआ इसे खींचने में कम ताक़त लगानी पड़ती है और हरेक बार में ११ फ़ीट जोता जा सकता है। एक बड़ा सोहागा पीछे की ओर लगा रहता है और एक ही बार जोतने से खेत बोने योग्य हो जाता है।

इस देश के लिये एक उपयुक्त यन्त्र खोज निकालने की बड़ी आवश्यकता है। आज कल यह विचारा जाता है कि विदेशी भारी यन्त्र जो कि बाहर से मंगाये जाते हैं। पंजाब की मिट्टी के लिये अनावश्यक है। वहाँ इतना ही अच्छा काम एक हल्के यन्त्र से भी चल सकता है। सैकड़ों वर्षों से ज़मीदार अपने देशी हल से ही जोत कर अच्छी फ़सल तैयार करते थे! प्रश्न अभी हल करने के लिये शेष रह गया है कि भारी ट्रैक्टरों की अपेक्षा हल्के यन्त्रों का आविष्कार करना चाहिये। जिससे जुताई का ख़र्च कम हो किन्तु उपज उतनी ही बनी रहे।

### डिस्क-प्लाऊ

अनेकों स्थानों के और विशेषतया अग्रीकल्चरल इंस्टीट्यूट इलाहाबाद के फार्म पर इस हल का प्रयोग अधिकता से करके निम्न-लिखित फल प्राप्त किया गया है। डिस्कप्लाऊ मोल्डबोर्ड हलों की अपेक्षा कड़ी भूमि के लिये अत्यन्त उपयोगी है, क्योंकि ऐसी भूमि में यह कूढ़ औरों की अपेक्षा आसानी से काट सकता है और घास, फूस, खर पतवार को भली भांति दबा सकता है। बोने के लिये मिट्टी की तैयारी भी अच्छी कर सकता है। जुताई के लिये हरेक दृष्टि से इससे उत्तम कार्य्य होता है। इसके अतिरिक्त यह कड़ी घासों को जैसे बरकटा
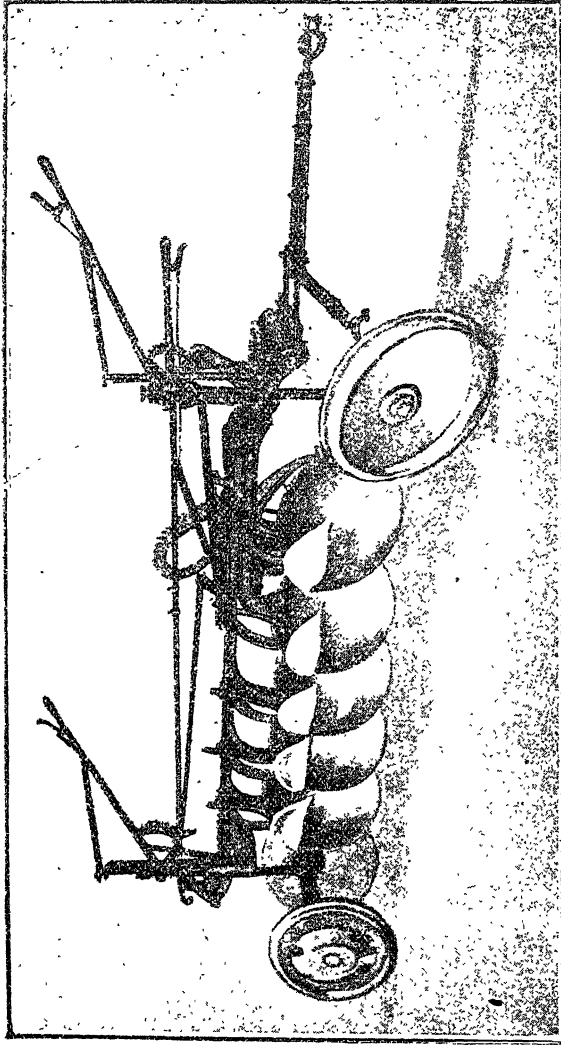
डिस्क-प्लाऊ
मटियार तथा जङ्गली भूमि के लिए अत्यन्त उपयुक्त है।

इत्यादि कँटीली झाड़ियों के काटने में इसने विशेष कामयावी पायी है। इससे जंगली भूमि के साफ़ करना अत्यन्त उपयुक्त है। किन्तु मोल्डबोर्ड हलों में तेज़ फार के बिना उक्त बातों का होना असम्भव है। कांस और इसी प्रकार की अनेकों घासों को काटने के हेतु डिस्क-हल के काम में लाने से उक्त इन्स्टीट्यूट को विशेष सफलता प्राप्त हुई है और जब कि जाड़े के दिनों में भूमि कड़ी होने के पहले ही जुताई करने से भी सफलता प्राप्त हुई है। इसमें सन्देह नहीं है कि अन्य हलों की अपेक्षा यह हल व्यय-साध्य है। लेकिन इसकी टिकाऊ शक्ति अधिक है और इसमें उपरी खर्च अधिक नहीं पड़ता। दूसरे यंत्रों के ख़रीदने की भाँति इसके ख़रीदते के समय भी इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि इससे कितना काम होगा और कितनी शक्ति की आवश्यकता है। मामूली कामों में जब कि बैलों द्वारा चलाया जाय, एक डिस्क की आवश्यकता है। उक्त संस्था में विशेष प्रकार की फ़सलों की जुताई के लिये विशेष विशेष प्रकार के हल प्रयोग किये गये हैं। इसलिये वे मामूली कामों के लिये लाभकारी नहीं है। इससे कोई वास्तविक लाभ नहीं हुआ जैसी कि उनसे आशा की जा सकती है। बहुत ही हलका हल मिल जाना भी संभव है। मामूली हल लगभग तीन सौ रुपये में मिल सकते हैं।

गवर्नमेंट-डिपार्ट में और देश के काम करने वाले व्यक्तियों के प्राप्त किये फलों को ध्यान में रख कर यह प्रश्न पूछा जाता है कि उन्नति—प्राप्त-हल काम में क्यों नहीं लाये जाते।

इसके बहुत से उत्तर हैं। मनुष्यों की निर्धनता भी एक कारण है किन्तु यह उत्तर दूसरे उत्तर के मुक़ाबिले में ठीक नहीं जँचता इसके मुख्यतया ये कारण हैं। पाँच या दस एकड़ की काश्तकारी के लिये इतना व्यय करना लाभदायक नहीं और ऐसी दशा में किसान इसको क्रय करने में अवश्य हिचकेगा। परन्तु भारत में यदि सहयोग समितियों द्वारा यह काम हाथ में लिया जाय तो तो सफलता हो सकती है, वे मनुष्य जो कि गांवों की हालत से परिचित हैं—इस सहयोग के स्थापित करने में कितनी कठिनाइयाँ पड़ती हैं, जानते हैं। जैसे राम, श्याम और चन्द्र दो या तीन और मिलकर अपना धन एकत्रित करते हैं और एक हल ख़रीदते हैं, तब यह निर्णय करते हैं कि कौन इसके द्वारा जोतेगा और बनवाई का खर्च सहन करेगा। ऐसी प्रथा प्रचलित का करना अभी असंभव सा है। परन्तु सरल रीति यह सफल हो सकती है कि गांव का कोई धनी—मानी पुरुष ऐसे यंत्रों को ख़रीद ले और किराये पर दिया करें क्योंकि ऐसी घटना उक्त इंस्टीट्यूट के आस पास से किसानों द्वारा चरितार्थ हुई, वह हल किराये पर लेकर जुताई करने और किराया देने के लिये तय्यार थे। किन्तु इतना प्रबन्ध उक्त संस्था नहीं कर सकती थी।

इसी प्रकार अनेकों प्रकार की कठिनाइयां अभी भारतीय किसानों में पाई जाती है जो कि कृषि सम्बन्धी मशीनों के प्रचार में रुकावट डाल रही है। परन्तु लोगों का रुझान उनकी ओर दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा है, जिससे थोड़े ही दिनों में भारतबासी भी इन मशीनों को ख़रीद कर अपने प्रयोग और व्यवहार में आप से ही आप लाने लगेंगे।

पाठको ! इस प्रकार से अब तक मैं ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भूमि की जुताई के हेतु देश-कालानुसार सारे वैज्ञानिक कृषि-यन्त्रों और रीति-रिवाजों का वर्णन भारतीय किसानों के लाभ को दृष्टिगत रखते हुए किया ; इसके अतिरिक्त यहां पर इतना यह और कह देना चाहता हूँ—कि वर्तमान काल में कृषि-व्यवसाय को हरेक देश वैज्ञानिक सिद्धान्तों द्वारा कर रहे हैं। इसलिए संसार के हरेक देशों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जुताई के लिए अनेकों प्रकार के हल तैयार हो गए हैं—और होते जा रहे हैं। जिन सबों का इसमें वर्णन न करके केवल जो प्रयोग और व्यवहार से भारत के लिए उपयुक्त सिद्ध हो चुके हैं, उन्हीं का वर्णन दिया गया है। परन्तु सभी हलों का लक्ष्य वही है जो कि इन हलों का है। इसलिए अब इस विषय का वर्णन यहीं पर समाप्त किया जाता है और दूसरे भाग में बुआई के विषय से आरम्भ किया जायगा।